थोर समाज सुधारक
क्रांतिगुरू लहुजी सालवे

डॉ.राज ताडेराव

शिवानी प्रकाशन, पुना

थोर समाज सुधारक
क्रांतिगुरू लहुजी साल्वे
लेखक- डॉ. राज भुजंगराव ताडेराव
निडर
घायलरपींसरीरी रर्हीक्षळ भयः श्रींशी
- उई। ठरक्ष इरहीक्षरपसीरे ढरवशीरे
सर्वाधिकार सुरक्षित
पहला संस्करणः १४ नवंबर, २०२०
प्रकाशकः
शिवानी प्रकाशन
डी-८, पंकज पार्क, सर्वे नं. १६६,
मालवाड़ी, हडपसर, पुना।
मोनो। ९०११३२०६५९
मुद्रणः
विजन ग्राफिक्स, पुना
खड़ा हैः ९७८-९३-८५४२६-५९-९
मुखपृष्ठः
श्री ग। संतोष घोंगडे, पुना
वर्तनीः
श्री ग। संतोष राणे, कंकावली
कीमतः रू. २५०/-

सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन में
अपना पूरा जीवन बिता रहे हैं
सभी महापुरूषों का संघर्ष
जीवन के काम के लिए समर्पित

लेखक की भूमिका

पाठकों को अपनी तीसरी पुस्तक 'थोर समाज सुधारक क्रांतिगुरू लहुजी साल्वे' सौंपते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन आंदोलन और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में लहूजी साल्वे का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन पूरे इतिहास में उनके काम की उपेक्षा की गई है। इसलिए, यह पुस्तक क्रांतिगुरू वस्ताद लहूजी साल्वे, जो इतिहासकारों द्वारा अन्याय किया गया था, के वास्तविक इतिहास को सामान्य पाठकों और छात्रों के लिए उपलब्ध कराने के उद्देश्य से लिखी गई है। इससे पहले, एक छात्र के रूप में अध्ययन करते हुए, मेरी पहली पुस्तक 'हैदराबाद मुक्तिसंग्रामातील हदगांव' निर्मल प्रकाशन, नांदेड़ द्वारा प्रकाशित की गई थी। पाठकों ने पुस्तक श्रृंखला 'अंडरस्टैंडिंग ग्रेट मैन' में लघु पुस्तक 'क्रांतिगुरू वस्ताद लहुजी साल्वे जीवन और कार्य' का जवाब दिया। मुझे यह भी आशा है कि इस नई पुस्तक के पाठक मेरा स्वागत करेंगे।

ई. १७९४ से १८८१ तक की अवधि भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण के लिए प्रसिद्ध है। अन्य क्रांतिकारियों ने न केवल देश के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया बल्कि लहूजी साल्वे को राष्ट्रीय और सामाजिक दोनों स्तरों पर लड़ना पड़ा। क्योंकि न केवल देश स्वतंत्र होगा और सभी समस्याओं का समाधान होगा, बल्कि साथही सामाजिक और आर्थिक समानता की भी आवश्यकता होगी। लहूजी साल्वे का क्रांतिकारीवाद दो धारी तलवार की तरह था। जिन्होंने विदेशी और भारतीय दोनों कर्मठ समाजों पर हमला किया। इस समय लहूजी साल्वे ने अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए एक सेना तैयार की थी। जो आगे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में देखने को मिलता है। इसकी नींव लहुजी साल्वे की कुश्ती में देखी जा सकती है। ई. १८४७ में, महात्मा ज्योतिराव फुले ने हथियारों का अध्ययन करने के लिए लहुजी के प्रशिक्षण विद्यालय में प्रवेश लिया था। उनके साथ उच्च जाति ब्राह्मण जाति सदाशिव गोवंडे, सखाराम परांजपे, मोरो विठ्ठल वाल्वेकर के उनके दोस्त थे। उन्होंने लहुजी साल्वे को अपना गुरू माना और अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में कुश्ती के साथ-साथ सामाजिक समानता का पाठ भी लिया। ऐसे समय में जब पुना जैसे समाज में अस्पृश्यता व्याप्त थी, जो पेशवा के निधन के बाद भी मानवता के लिए कलंक था, लहूजी साल्वे उपेक्षित समाज को अपने साथ ले गए और सनातन साजिश का भुगतान किया और सामाजिक और शैक्षिक सुधारों को पुरस्कृत किया। अगर लहुजी जैसा

आदमी वस्ताद न होता तो वह स्वतंत्रता आंदोलन का देशभक्त कैसे होता? भारतीय इतिहास की त्रासदी यह है कि उपेक्षित समाज में चाहे कितने भी महापुरूष पैदा हों, उन्हें जानबूझकर इतिहास से दूर रखा जाता है। ऐसा लगता है कि क्रांतिकारी लहूजी साल्वे को भी उनकी जाति के कारण दूर रखा गया था।

भ्महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले ने भारत के इतिहास में आम आदमी को शिक्षित करके क्रांति कर दी। महिलाओं को शिक्षा देने के लिए प्रयास किया। इसमें लहुजी साल्वे का समर्थन शिक्षा क्रांति के मूल था। क्योंकि लहुजी साल्वे ने अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में एक सेना का गठन किया और जोतीराव फुले और सावित्रीबाई फुले को संरक्षण प्रदान करके युवाओं को उनके पीछे खड़ा किया। इसीलिए महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले को पुना जैसे शहर में एक कर्मठ विचारधारा रखनेवाले समाज में महिलाओं की शिक्षा को मजबूती से चलाने में सक्षमता मिली। लहूजी साल्वे ने कर्मठ विचारधारा की व्यवस्था के खिलाफ महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले के शैक्षिक और सामाजिक कार्यो का समर्थन किया और अछूतों से शिक्षा का अधिकार प्राप्त करने का आग्रह किया। उन्होंने अछूतों को भी पड़ोस में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। इसलिए लहुजी साल्वे सामाजिक और क्रांतिकारी विचारों से अभिभूत थे और उनके सशस्त्र प्रशिक्षण में सभी जातियों के युवा सैन्य शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। लहुजी साल्वे इन युवाओं को सशस्त्र शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा और सामाजिक समानता का पाठ पढ़ाया करते थे।

क्रांतिगुरू लहूजी साल्वे ने आधुनिक भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। लेकिन कुलीन इतिहासकारों ने अपने इतिहासलेखन में उनके काम का एक साधारण जिक्र भी नहीं किया गया। उनके कार्य को छिपाने की कोशिश की, उनके ऐतिहासिक कार्य को नजर अंदाज किया गया। इसलिए इतिहास से उपेक्षित रहे महान समाज सुधारक क्रांतिगुरू लहुजी साल्वे का इतिहास लोगों के सामने लाने के लिए मैंने स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा, विश्वविद्यालय, नांदेड द्वारा डॉ. उत्तम हनवते और डॉ. राजू कोंडेकर के मार्गदर्शन में शोध कार्य को पूरा करने और इसे एक पुस्तक के रूप में आपके सामने प्रस्तुत करने में प्रसन्नता हो रही है। मैं इसके लिए उनका लगातार उनकी आज्ञा में रहना पसंद करूंगा।

साथ ही इस शोध कार्य के लिए मुझे अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी, दुर्लभ साहित्य और ग्रंथ, माननीय महोदय द्वारा उपलब्ध कराए गए साक्ष्य दिए गए। शंकर तडाखे के बहुमूल्य समर्थन के लिए मैं उनका बहुत आभारी हूं। इसी तरह लहुजी साल्वे के माननीय भतीजे किशन निवृति जाधव ने प्रत्यक्ष साक्षात्कार के माध्यम से जानकारी प्रदान की और कई दुर्लभ दस्तावेज उपलब्ध कराने में मदद की। उसीप्रकार से माननीय मधुकर जाधव और माननीय वरिष्ठ विचारक रमेश रक्षे, मान. मैं सुरेश पवार और पुना का हमेशा आभारी रहूंगा। इसी प्रकार, क्रांतिगुरू लहुजी साल्वे के विषय पर शोध करते हुए, माननीय अनंत घोड़े, माननीय बनाम बी विटेकर, मान. नरेंद्र मारवाडे, माननीय. शंकर तडाखे, माननीय नाना क्षीरसागर, आई. खुशाल खडसे, मान. योगेश शाहिर, मान. बनाम दा. पिंगले, माननीय. गणपत वाघमारे, माननीय. अंकुश सिंदगीकर, चंद्रकांत वानखेड़े इनके द्वारा लिखित पुस्तके क्रांतिगुरू लहूजी साल्वे के बारे में शोध कार्य के लिए मेरे बहुत काम आई। इसके लिए मैं इन सभी लेखकों और विचारकों का तहे दिल से शुक्रिया अदा करता हूं।

साथ ही इस विषय पर शोध करते हुए शासकीय पुस्तकालय पुना, सावित्रीबाई फुले विश्वविद्यालय पुस्तकालय पुना, अहमदनगर कॉलेज पुस्तकालय, मधु मंगेश कार्णिक पुस्तकालय करूल, नगरवाचनालय कंकावली, अभिलेखागार पुस्तकालय मुंबई, राम मनोहर लोहिया पुस्तकालय नांदेड़ आदि ने अध्ययन के लिए अत्यंत दुर्लभ पुस्तकें उपलब्ध कराईं। उन सभी पुस्तकालयों का शुक्रीया अदा करता हूं।

महान समाज सुधारक क्रांतिगुरू लहूजी साल्वे, एक वरिष्ठ विचारक, जिन्होंने पुस्तक को पढ़ा और उसका अनुसरण किया। संभाजी बिरंजे, कोल्हापुर का तहे दिल से शुक्रिया। इसी प्रकार मुझे समय-समय पर आदरणीय डॉ. विठ्ठल भंडारे, प्रा. सी। एल कदम, श्री. दिगंबर घंटेवाड़, डॉ. गणेश देवडे, डॉ. मधुसूदन राजे, डॉ. ई.एस. जी डॉ. जाधव और मेरे मित्र जो समय-समय पर मुझे सहयोग करते रहे हैं और इस शोध के लिए महत्वपूर्ण सुझाव देते रहे हैं। सोमनाथ कदम, डॉ. संतोष रायबोले, प्रा. संतोष अखाड़े, डॉ. मोहन लोंधे, डॉ. हर्षानंद खोबरागड़े, डॉ. सतीश कामत, डॉ. देवीदास हरगिले, प्रा. विनोद सिंह पाटिल, श्री. दीपक सावंत, डॉ. संजय गायकवाड़, डॉ. किशोर जोगदंड, प्रा. दशरथ रसाल, डॉ. रविकुमार राठौड़, श्री. बालासाहेब खानजोड़े, श्री. गुणवंत काले, श्री. मनोज पाटिल, प्रा. गजानन गिरी, डॉ. विद्या मोदी, प्रा. जगदीश राणे, श्री. बालाजी गाडेवाड़, प्रा. ज्ञानेश्वर भोसले, श्री. तुकाराम

एंगंडलवाड़, डॉ. प्रशांत ढेपे के साथ-साथ मेरे सभी मित्र और सभी पाठक जिन्होंने मुझे प्रकाशन के पूर्व तहेदिल से हार्दिक धन्यवाद दिया।

मेरे पिता, डॉ. जिन्होंने हमेशा मेरे शोध कार्य के लिए मुझे समर्थन और प्रेरित किया। भुजंगराव और मेरी माता श्रीमती लक्ष्मीबाई, भाई डॉ. माधव और केशव, मेरी पत्नी मनीषा, बेटा कु. संभव हमारे परिवार का एक महत्वपूर्ण तत्व होने के साथ-साथ डॉ. मीरा, सौ. ज्योति, हमारे प्यारे कु. चिन्मयी, जयेश, साथ ही मेरे जीजा डॉ. रविराज दुधकवड़े, बहन तीर्थमाला, उसके साथ-साथ पंकज और धीरज, मेरे चाचा श्री। शेषराव ताडेराव का अमूल्य समर्थन उन्हें मेरी हर सफलता में एक मानक वाहक बनाता है।

मेरे मित्र संतोष घोंगडे जिन्होंने इस पुस्तक के मुखपृष्ठ को बहुत आकर्षक बनाया है, उसके बाद मेरे मित्र संतोष राणे ने सुव्यवस्थीत शब्दरचना की। साथ-साथ व्याकरणिक रूप से प्रा. सीमा हाडकर और डॉ. पी.जी. कांबले इनकी सहायता से यह पुस्तक बहुत ही उच्च कोटि की बनी। इसके लिए मैं इन सभी का शुक्रीया अदा करता हूं। शिवानी प्रकाशन, पुना ने इस बहुमूल्य पुस्तक को अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी ली और कोरोना वायरस के संकट के बावजूद इस पुस्तक को बड़े परिश्रम से प्रकाशित किया। इसके लिए मैं प्रकाशक को धन्यवाद देता हूं।

इस पुस्तक को लिखते समय मैंने प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के जो उपकरण मुझे मिले थे, उन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें कोई कसर नहीं छोड़ी। पाठकों को चाहिए कि वे मुझे बताएं कि क्या उन्हें इस पुस्तक में कोई त्रुटि मिलती है या यदि उनके पास कोई सबूत है। ताकि इतिहास के नए साक्ष्य उपलब्ध हो सकें।

डॉ. राज तडेराव

अनुक्रमणिका

अध्याय १: लहूजी साल्वे की शर्तें (पृ.क्र. १२ से पृष्ठ ४९)

१.१ प्रस्तावना / १.२ सामाजिक स्थितियां / १.२.१ पारिवारिक संस्थाएं / १.२.२ धार्मिक जीवन / १.२.३ ग्रामीण व्यवस्था / १.२.४ खानाबदोश वंचित जातियाँ और जनजातियाँ / १.२.५ बलुतेदारी और अलुतेदारी प्रणाली / १.२.६ जातीयता / १.२। ७ अस्पृश्यता / १.२.८ गुलामी / १.२.९ गुलामी / १.२.१० ब्रिटिश शासन के दौरान आपराधिक जाति / १.२.११ महिलाओं की स्थिति / १.२.१२ विवाह / १.२.१३ वस्त्र और घर / १.२.१४ त्यौहार, समारोह और मनोरंजन / १.३ शैक्षिक शर्तें / १.३.१ पेशवा शिक्षा / १.३.२ ब्रिटिश शिक्षा / १ .३.३ ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य / १.३.४ समाज सुधारकों के शैक्षिक कार्य / १.३.५ अछूतों का शैक्षिक कार्य / १.३.६ महिलाओं का यात्रा कार्य / सन्दर्भ।

अध्याय २: साल्वे परिवार का इतिहास और लहुजी साल्वे का उदय (पृ.क्र. ५० से पृष्ठ ७१)

२.१ परिचय / २.२ साल्वे परिवार का इतिहास / २.२.१ बड़े लहुजी साल्वे / २.२.२ यशवंत साल्वे / २.२.३ राघोजी साल्वे / २.३ लहूजी साल्वे का जन्म और बचपन / २.४ लहूजी साल्वे की कुश्ती / २.५ पेशवा की सेना में नौकरी / २.६ लहूजी की शादी तैयारी और माता की मृत्यु / २.७ खड़की युद्ध और राघोजी का बलिदान / २.८ स्वराज्य को बहाल करने की प्रतिज्ञा / २.१० मृतक सौनिकों के रिश्तेदारों को सांत्वना और पुना में निवास / संदर्भ।

अध्याय ३: भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए लहूजी साल्वे का पूरक कार्य (पृ.क्र. ७२ से पृष्ठ ९५)

३.१ परिचय / ३.२ लहूजी साल्वे का क्रांतिकारी कार्य / ३.२.१ सशस्त्र प्रशिक्षण की स्थापना / ३.२.२ लहूजी साल्वे का गुप्त सैन्य प्रशिक्षण केंद्र / ३.३ ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह और लहुजी साल्वे की भागीदारी / ३ .३.१ रामोशी विद्रोह सहायता / ३.२.२ आदिवासी विद्रोह मार्गदर्शन / ३.२.३ किसान विद्रोह प्रोत्साहन / ३.४ १८५७ के विद्रोह में लहुजी साल्वे की भागीदारी / ३.४.१ पुना में विद्रोह में भागीदारी / ३.४.२ सातारा में विद्रोह के लिए समर्थन / ३.४.३ उत्तर भारत में विद्रोह में योगदान / संदर्भ।

अध्याय ४: सामाजिक क्षेत्र में लहूजी साल्वे की भागीदारी (पृ.क्र. ९६ से पृष्ठ ११२)

४.१ परिचय / ४.२ अस्पृश्यता की रोकथाम / ४.३ सामाजिक कांटों से फुले दंपति की सुरक्षा / ४.४ मानवीय धर्म की वकालत / ४.५ अवांछनीय प्रथाओं के खिलाफ लड़ाई / ४.६ पुरोहित और विधर्म का विरोध / ४.७ अछूतों के एकीकरण के लिए प्रयास / ४ ८. महिला सुधारों के बारे में जागरूकता / ४.९ अछूतों के लिए सार्वजनिक कुओं का निर्माण / ४.१० शिवाजी महाराज और लहुजी साल्वे की समाधि / संदर्भ

अध्याय ५: शिक्षा के क्षेत्र में लहूजी साल्वे का योगदान (पृ.क्र. ११३ से पृ.१२९)

५.१ प्रस्तावना / ५.२ अछूतों के लिए शिक्षा / ५.३ अछूतों के स्कूल के लिए प्रचारक / ५.४ महिला शिक्षा के लिए प्रोत्साहन / ५.५ प्रशिक्षण स्कूलों की स्थापना / ५.६ शैक्षिक विरोधियों के समाचार / ५.७ शिक्षकों के लिए अभय / ५.८ सहायता और पुस्तकालय भवन / ५.९ / प्रारंभ अछूतों के लिए प्रौढ़ शिक्षा / संदर्भ ढदृद्ध

अध्याय ६: लहुजी साल्वे और सत्यशोधक समाज (पृ.क्र. १३० से पृष्ठ १३७)

६.१ / परिचय / ६.२ सत्यशोधक समाज की स्थापना में भागीदारी / ६.३ सत्यशोधक समाज के प्रवर्तक और संरक्षक / ६.४ अछूत समाज में सत्यशोधक समाज का प्रचार / ६.५ स्वामी दयानंद सरस्वती का संरक्षण / ६.६ अंतिम संस्कार / सत्यशोधक पद्धति

अध्याय ७: लहूजी साल्वे और महाराष्ट्र में समाज सुधारक संबंध (पृ.क्र. १३८ से पृष्ठ १५५)

७.१ प्रस्तावना / ७.२ महात्मा ज्योतिराव फुले / ७.३ सावित्रीबाई फुले / ७.४ सदाशिव गोवंडे / ७.५ सखाराम परजम्पे / ७.६ मोरो विट्ठल वाल्वेकर / ७.७ रानबा गायकवाड़ (महार) / ७.८ उस्मान शेख / ७.९ फातिमा शेख / ७.१० गानू शिवाजी ७.११ (मंग) अपाजी (चंबर) / ७.१२ मुक्ता साल्वे / संदर्भ

अध्याय ८: लहूजी साल्वे और समकालीन क्रांतिकारी और शिष्य

(पृ.क्र. १५६ से पृष्ठ १७५)

८.१ प्रस्तावना / ८.२ सत्तू नाईक / ८.३ आदिक्रांतिकारी उमाजी नाईक / ८.४ राघोजी नाईक / ८.५ भगोजी नाईक / ८.६ नानासाहेब पेशवा / ८.७ तात्या टोपे / ८.८ रंगो बापू / ८. ९ वासुदेव बलवंत फड़के / ८.१० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक / संदर्भ

अध्याय ९: लहूजी साल्वे के कार्यो का महत्व और वर्तमान स्थिति

(पृ.क्र. १७६ से पृष्ठ १८६)

परिशिष्ट (पृ.क्र. १८७ से पृष्ठ २००)

१. साल्वे परिवार की वंशावली

२. लहुजी राघोजी साल्वे की जीवनी

३. लहुजी साल्वे के सामाजिक और शैक्षिक कार्यो का निर्देशन करते हुए ज्ञानोदय में उल्लेखीत मूलवृत्तांत (१५दिसंबर १८५३)

४. (ए) मांग-महारों के दुःख पर निबंध
(निबंध के पहले भाग का ज्ञानोदय (१५ फरवरी, १८५५)

(बी) मांग-महारों के दुः ख पर निबंध
(निबंध का स्वर्गीय ज्ञान (१ मार्च, १८५५)

५. चयनित तस्वीरें

ग्रन्थसूची

अध्याय एक

लहुजी साल्वे कालीन स्थितियां

१.१ प्रस्तावना

१.२ सामाजिक स्थितियां

१.२.१ परिवार

१.२.२ धार्मिक जीवन

१.२.३ ग्राम व्यवस्था

१.२.४ खानाबदोश वंचित जातियां और जनजातियां

१.२.५ बालुतारी और अलुतेदारी विधि

१.२.६ जातीयता

१.२.७ अस्पृश्यता

१.२.८ गुलामी

१.२.९ अधिभोग

१.२.१० ब्रिटिश काल की आपराधिक जातियाँ

१.२.११ महिलाओं की स्थिति

१.२.१२ विवाह संस्थाएं

१.२.१३ कपड़े और मकान

१.२.१४ त्यौहार और मनोरंजन

१.३ शैक्षिक स्थितियां

१.३.१ पेशवा शिक्षा

१.३.२ ब्रिटिश काल की शिक्षा-

१.३.३ ईसाई मिशनरियों का शैक्षिक कार्य

१.३.४ समाज सुधारकों के शैक्षिक कार्य

१.३.५ अछूतों की शैक्षिक यात्रा

१.३.६ महिला शिक्षा का मांग

संदर्भ

अध्याय १
लहुजी साल्वे कालीन स्थितियां

१.१ प्रस्तावना

१७ वीं शताब्दी में छत्रपति शिवाजी महाराज ने शक्तिशाली मुगल, आदिलशाही और कुतुबशाही शक्तियों से लड़कर सही दिशा में स्वराज्य की स्थापना की। जिसमें मराठा मावलों ने अहम योगदान दिया। क्योंकि शिवराय की सेना में सभी जाति और धर्म के सैनिक थे। उन्हें मावले कहा जाता है। कुनाबी, मराठे, ब्राह्मण, प्रभु, भंडारी, महार-मंग, चंबर, कोली, रामोशी, नवी, धनगर, आदिवासी आदि ५६ जातियों के लोग थे। इसलिए शिवराय ने जाति से अधिक व्यक्ति के कर्मों और निष्ठा को प्राथमिकता दी। प्रत्येक जाति के विशिष्ट लक्षणों का अधिकतम उपयोग करने का प्रयास किया गया। इसलिए सेना और प्रशासन व्यवस्था में सभी जातियों और धर्मोके सैनिकों को सहजता और पराक्रम के बल पर महत्वपूर्ण पद मिलते थे। इससे किलों की सुरक्षा की जिम्मेदारी अछूत जाति मांग, महार के साथ-साथ उपेक्षित जाति के युवकों जैसे रामोशी, बढ़ई, लोहार आदि पर महत्वपूर्ण थी।

शिवराय ने अपने शासन काल में कभी जाति की राजनीति नहीं की। निर्णय में यदि ब्राह्मण जाति का व्यक्ति अपराधी के रूप में सामने आयो तो भी उसकी नीति थी। 'जो ब्राह्मण के रूप मंश मुलहिजा करना चाहता है'। यही नीति बाद में छत्रपति संभाजी महाराज द्वारा लागू की गई। लेकिन उनकी हत्या के बाद प्रशासन और प्रशासन में पेशवाओं का प्रभुत्व बढ़ गया। पुना से आठ मील दक्षिण में मंजरी गांव में १७ नवंबर, १७१३ को बालाजी विश्वनाथ को पेशवा बनाया गया था। इसी पेशवा, बालाजी विश्वनाथ ने कूटनीतिक रूप से छत्रपति शाहू का पक्ष लिया था और पेशवा का पद उनके परिवार के पास ही रहेगा ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी।

ई. १७४९ में छत्रपति शाहू की मृत्यु के बाद, छत्रपति वंश के पास उपयुक्त छत्रपति नहीं था। ४ जनवरी १७५० को रामराजा का राज पद दिया गया। लेकिन पेशवा सर्वोच्च और संप्रभु बन गए क्योंकि उनके हाथों में सारी शक्ति थी। सदाशिवराव भाऊ और रामचंद्रबाबा ने छत्रपति के आदेश से शासन, पद, मुलुख, महल आदि बनाए रखा और छत्रपति शाहू से लिखवा लिया कि, पेशवाओं को छत्रपति के नाम पर मराठी धन की

देखभाल करनी चाहिए और छत्रपति की संपत्ति को उनके सम्मान के लिए काट देना चाहिए। इस समझौते को 'संगोला की संधि' कहा जाता है। इससे पेशवा शासक बना और छत्रपति नाममात्र बन गए।[१] १७६१ में पानीपत की लड़ाई ने पेशवाओं को परास्त कर दिया। यह इस तथ्य के कारण है कि पेशवा काल के दौरान, महाराष्ट्र में स्वार्थ, विश्वासघात, बेईमानी, लूटपाट, गुलामी, आगजनी, अस्पृश्यता, जातिवाद और महिला दासता में वृद्धि हुई। ई. १८०२ में, एक पेशवा बाजीराव द्वितीय ने ब्रिटिश सेना की तैनाती को स्वीकार कर लिया, जिसने सेना में कई जातियों के युवाओं पर बेरोजगारी की कुल्हाड़ी मारी। नतीजतन, भूख के कारण समाज में डकैती की दर में वृद्धि हुई।

अपने समय में पेशवाओं द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों, प्रथाओं और अंधविश्वासों के कारण, जातिवाद और अस्पृश्यता की जड़ें महाराष्ट्र में इतनी गहरी थीं कि वे नए ब्रिटिश युग में भी वही रहीं। लेकिन इस अशांत समय में भी, छत्रपति शिवाजी महाराज के समय से सेना में सेवा कर रहे लहूजी साल्वे और उमाजी नाईक इन कार्यक्षम लोगों ने पेशवा और अंग्रेजों के प्रभाव के बावजूद भी अपना अस्तित्व निर्माण किया था। क्योंकि इस जाति के युवाओं के पास सैन्य हथियार जैसे दाण्डपात्ता, घुड़सवारी, गामिनिकावा आदि थे। इसलिए समाज में उनका सम्मानजनक स्थान है। यद्यपि लहुजी साल्वे अछूत जाति के थे, फिर भी बड़ी संख्या में उच्च जाति के युवा उनके पास कुश्ती के साथ-साथ सैन्य शिक्षा के लिए आते थे। उस समय उनकी जाति क्षैतिज नहीं थी। क्योंकि जातीय पहचान और जातीय घृणा की खेती अपनी सुविधा के अनुसार की जा रही थी।

लहूजी साल्वे यह शरीर से बलदण्ड, वृत्ती से कार्यक्षम, एक मजबूत इरादों वाले, देशभक्त और सामाजिक रूप से जागरूक व्यक्तित्व थे, जिन्हें उच्च जाति के युवाओं द्वारा महत्व दिया जाता था। लहूजी साल्वे का बचपन समय पेशवाई का उत्तरार्ध और उनकी युवावस्था का कार्य ब्रिटिश काल में था। उस काल की समग्र सामाजिक स्थिति का वर्णन निम्न प्रकार से की जा सकता है।

१.२ सामाजिक स्थितियां

ई. १७९४ से १८८१ की अवधि को महाराष्ट्र के इतिहास में 'पुनर्जागरण काल' के रूप में जाना जाता है। जब अनेक जातियों, अनेक जातियों, अनेक धर्मों, अनेक जातियों, अनेक कुलों, अनेक सम्प्रदायों के लोग एक साथ आते हैं तो एक समाज का निर्माण होता

है। लेकिन इस समाज में ब्राह्मणी व्यवस्था की कूटनीति के कारण जाति व्यवस्था से भारतीय समाज दुषीत हो गया और इससे समाज में असमानता पैदा हो गई। मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने के लिए जो कहा जाता है उसे धर्म कहते हैं। इस धर्म और इसके सिद्धांतों, नियमों, नैतिकता के निर्माण के हजारों साल बीत चुके हैं, लेकिन उसके बाद में, हिंदू धर्म में कई अवांछित मानदंडों की घुसपैठ हुई। इससे पुरोहितों का महत्व बढ़ गया। जो कहेंगे वहीं समाज का धर्म बन गया। वहीं समाज के रितीरिवाज बन गए। लेकिन प्राचीन काल में इस ब्राह्मणी व्यवस्था के खिलाफ ई.पू. छठी शताब्दी में बौद्ध और जैन धर्म ने भारतीय समाज में असमानता को दूर कर समानता स्थापित करने का प्रयास किया। बाद में मध्यकाल में, वारकरी संप्रदाय और लिंगायत संप्रदाय ने महिला दासता और जातिवाद पर हमला किया।

छत्रपति शिवाजी महाराज ने जाति-धर्म पर विचार किए बिना उनकी पीढ़ीगत विशेषताओं को पहचानते हुए सभी जातियों और धर्मों के लोगों को स्वराज्य में सम्मान का स्थान दिया। लेकिन बाद के समय में पेशवाओं ने जाति व्यवस्था के आधार पर शूद्रों, अतिशूद्रों और समाज के अन्य वर्गो पर दासता और दासता थोप दी। लहुजी साल्वे काल की समग्र सामाजिक स्थिति को देखते हुए उस काल के भारतीय समाज की स्थिती इस प्रकार है।

१.२.१ पारिवारिक संस्थाएं

पेशवा और ब्रिटिश काल में महाराष्ट्रीयन समाज में संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। एक ही परिवार में दो से तीन पीढ़ीयों के लोग एक साथ रहते थे। परिवार का सबसे बड़ा सदस्य परिवार का मुखिया होता था। परिवार में एक जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में, उसे परिवार की सभी जरूरतों और कार्यो को साझा करना पडता था। परिवार के सभी सदस्यों ने उसकी आज्ञा का पालन किया। चूंकि कृषि मुख्य व्यवसाय था, कृषि में विभिन्न फसलें उगाई जाती थीं। कृषि काफी हद तक प्रकृति पर निर्भर थी, कभी-कभी गीले और सूखे से किसानों की हालत खराब हो जाती थी।

परिवार में पूजा-अर्च, देव-धर्म, कुलचर, सामाजिक, धार्मिक संस्कार परिवार के मुखिया की अनुमति के बिना नहीं किए जा सकते थे। पुरूषों के पास सम्मान का स्थान था। इसलिए, बच्चे का जन्म इस अवधारणा के अनुसार शुभ माना जाता था कि बच्चा वश का चिराग माना जाता था।

१.२.२ धार्मिक जीवन

पेशवा और ब्रिटिश शासन काल में महाराष्ट्र का समाज, धर्म और जाति पर आधारित था। इस काल के में हिंदू, इस्लाम, जैन, ईसाई, पारसी और सिख धर्म प्रमुख धर्म थे और हिंदू धर्म में कई जातियों और उप-जातियों का गठन किया गया था। उस समय महाराष्ट्र में बड़ी संख्या में हिंदू थे और इस धर्म में जाति किसी व्यक्ति के कर्म पर नहीं बल्कि व्यक्ति के जन्म पर आधारित थी। इसलिए, चूंकि जाति को आवंटित व्यवसाय सनातन व्यवस्था के द्वारा तय किया गया था, 'जाति के भीतर जन्म और जाति के भीतर मृत्यु' यह प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा बन गया था। इसलिए, हिंदू धर्म में अछूत जातियों में बड़ी संख्या में ईसाई और इस्लाम में धर्मांतरित होने वाले लोग सामील थे। इस प्रकार महाराष्ट्र में निम्नलिखित धर्म और उनकी स्थिति देखी जा सकती है।

हिंदू धर्म

हिंदू धर्म प्राचीन वैदिक धर्म से अस्तित्व में आयो था। हिंदू धर्म यह जाति पर आधारित था। इसलिए, समाज में एक व्यक्ति की स्थिति उस जाति पर निर्भर करती थी, जिसमें वह पैदा हुआ था।[२] महाराष्ट्र में हिंदुओं की संख्या सबसे अधिक थी। प्राचीन काल में यह धर्म जाति व्यवस्था पर आधारित था। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों की जाति व्यवस्था के अनुसार, उन जातियों को कार्य सौंपे गए थे। ब्राह्मणों को धार्मिक अनुष्ठान, पूजा, अध्ययन, शिक्षण, यज्ञ आदि करना पड़ता था। राज्य संरक्षण, राज्य रक्षा, शासन, वेश्यावृत्ति, व्यापार और कृषि की जाति व्यवस्था में क्षत्रियों का कोई स्थान नहीं था। और जाति व्यवस्था में शूद्र जाति का कोई स्थान नहीं था। शूद्र समाज में ब्राह्मणों को छोड़कर सभी जातियों के लोग सम्मिलित थे।

ईसा पूर्व १८५ में, पुष्यमित्र शुंग, एक सेनापति ने मौर्य सम्राट ब्रहद्रथ की हत्या कर दी। इस घटना को प्रतिक्रांति के रूप में जाना जाता है। इस प्रतिक्रांति ने जाति व्यवस्था में क्षत्रिय वर्ग को नष्ट कर दिया। इसलिए ब्राह्मण वर्ग को क्षत्रियों का अधिकार मिला। हिंदू धर्म में वर्ण व्यवस्था को बाद में एक जाति व्यवस्था में बदल दिया गया था। इस जाति व्यवस्था में पेशवा काल में कई उपजातियों की उत्पत्ति हुई थी। गाँव में जाति व्यवस्था में बलुतेदारी और अलुतेदारी समाज का गठन हुआ। हिंदू धर्म जाति पर आधारित था। लहूजी साल्वे के कालखंड के दौरान, हिंदू धर्म में जातिवाद, अस्पृश्यता और कई अन्य

अवांछनीय प्रथाओं को पेश किया गया था। लेकिन अंग्रेजों की समानता और शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज के माध्यम से हिंदू धर्म में सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन शुरू हुए।

इस्लाम

ई. ७ वीं शताब्दी के बाद भारत में इस्लाम की शुरूआत हुई थी। उसके बाद दिल्ली में सल्तनत और मुगल काल के दौरान महाराष्ट्र में मुसलमानों की संख्या में वृद्धि हुई। पूर्व पेशवा काल में, महाराष्ट्र के अधिकांश क्षेत्र पर बीजापुर के आदिलशाही, अहमदनगर के निजामशाही, गोवलकोंडा के कुतुबशाही, विदर्भ के इमादशाही और बीदर के बारीदशाही का शासन था। लेकिन छत्रपति शिवाजी महाराज ने भी अपनी सेना में मुसलमानों को सम्मान का स्थान दिया था। इसलिए छत्रपति शिवाजी महाराज की सेना में बड़ी संख्या में मुस्लिम सैनिक थे।

मराठा और मुगल शासन के पतन के कारण पेशवा और ब्रिटिश काल के दौरान मुसलमान व्यापार और उद्योग में शामिल थे। इस धर्म में दो सम्प्रदाय थे, जिसे शिया और सुन्नी कहा जाता है। बोहरा और खोजा यह शिया संप्रदाय की दो जातियां थीं। इतिहासकार रूसेन और हीरालाल के अनुसार महाराष्ट्र के गांवों में खटीक (कसाई) और मुलाना, अत्तर, दरवेशी और भांड जैसी जातियां थीं। वेतन और मान-सम्मान को लेकर उनके बीच झगड़ा हुआ करता था। कुल मिलाकर हिंदू बड़ी संख्या में संतों और सूफी संतों के दरगाहों की पूजा करते थे। उरूस में भी बड़ी श्रद्धा के साथ शामिल हुआ करते थे। मोहर्रम में ताबूत के जुलूस में कई लोग शामिल हुआ करते थे। इस तथ्य के कारण कि इस्लाम में हिंदू धर्म जितना जातिगत भेदभाव नहीं था। इस्लाम में धर्मोन्तरित लोगों की संख्या अधिक थी। लहूजी साल्वे के समय में महाराष्ट्र में अछूत कहे जाने वाले महार, मांग, चंबर, धोर, रामोशी आदि पीर और दरगाह की पूजा करते थे।

जैन धर्म

प्राचीन वैदिक धर्म में पुरोहितों का बढ़ता प्रभुत्व, कर्मकांड, पशु वध के अलावा महँगे कर्मकाण्ड, जातीयता, लोगों को सरल आसान मार्ग देकर लोगों का उद्धार करने के लिए वर्धमान महावीर ई.पू. जैन धर्म को छठी शताब्दी में पुनर्जीवित किया गया था। लेकिन बाद में इस धर्म का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया।

पेशवा काल के दौरान, इस धर्म का स्वतंत्र अस्तित्व गायब हो गया और यह धारणा आम हो गयी की, जैन धर्म यह हिंदू धर्म के भीतर का एक संप्रदाय है। पेशवा काल में जैनियों को 'बनिया' के नाम से जाना जाता था। पेशवा और ब्रिटिश काल में इस धर्म के लोग व्यापार और उधार में शामिल थे। वतनदारों में शेटे और महाजन यह लोग जैन थे। जैन धर्म के श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदाय इस अवधि के दौरान महाराष्ट्र में मौजूद थे। इनके मंदिर भी प्रमुख स्थानों पर देखे जा सकते हैं। यह वर्ग समृद्ध था, क्योंकि इस धर्म के लोग व्यापार और उद्योग में शामिल थे।

ईसाई धर्म

ई. १७ वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरी अंग्रेजों के साथ भारत आए। उन्होंने महाराष्ट्र में सामाजिक सुधार, शिक्षा और सेवाभाव से ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य किया। धर्म के प्रचार के लिए काम करने वाले ईसाई मिशनरियों ने पुना में अमूल्य शैक्षिक और सामाजिक कार्य किए। धर्म में निहित अंधविश्वासों, मानदंडों, मिथकों आदि के खिलाफ उपदेश देकर, उन्होंने समाज में आधुनिक शिक्षा, एकेश्वरवाद, नैतिकता और मानवतावाद के महत्व के बारे में प्रबोधन ज्ञान को प्रस्तुत किया।[३]

ई. १८३० से १८४० इस काल में इंग्लैंड में व्हिग पार्टी सत्ता में थी। इस काल के दौरान, उन्होंने ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों को भारतीय लोगों को प्रबुद्ध करने का कार्य सौंपा। इसके लिए ईसाई मिशनरियों ने इस काम के लिए बाईपास, पहाड़ी इलाकों, उपेक्षित समुदाय के स्थानों को चुना। इसी तरह, महाराष्ट्र में मुंबई, पुना, अहमदनगर, जुन्नार और कोल्हापुर में धर्म प्रसार केंद्र स्थापित किए गए थे। ईसाई मिशनरियों ने उपेक्षित जातियों और जनजातियों के लोगों के साथ दया और स्नेह का व्यवहार किया। परिणामस्वरूप, महाराष्ट्र में तथाकथित अछूत ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए। उतना ही महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मुफ्त शिक्षा, चिकित्सा, अस्पताल, जरूतमंदों को वित्तीय सहायता, साथ ही ईसाई धर्म में समानता और नीति के सिद्धांतों का शिक्षित वर्ग पर प्रभाव पड़ने लगा। नतीजतन, ईसाइयों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी। इससे हिंदू धर्म खतरे में पड़ गया था।

ईसाई मिशनरियों की आलोचना का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र में उनके काम ने सामाजिक सुधार और धार्मिक सुधार आंदोलनों को जन्म दिया। इस संबंध में वसंत क्षिने ने कहा है कि 'क्ण्द्धत्न्नद्यत्दृद ध्र्त्न्नद्मत्दृदक्रुद्धत्ङ्न्न ड़दृदद्मद्यद्धुदद्य ठ्ठद्यद्धुड़त्त दृद

द्यण्ड्ड त्तन्दड्डद्व द्धड्ड्थ्त्ढ़त्दृद थ्द्दड्डड्ड द्यण्ड्ड्थ्र ड़दृदद्मड़त्दृद्वद्म दृढ द्यण्ड्डत्द्ध द्मण्दृद्धद्य ड़दृथ्थ्रन्दढ़द्म.'[४] इस अवस्था में आर्य समाज ने शुद्धीकरण की मुहिम चलाकर हिंदू धर्म में सामाजिक, धार्मिक सुधार करके पुनर्जाकरण करने का कार्य किया। हिंदू महिलाओं के मामले में समुदाय की सामाजिक स्थिति में सुधार की जरूरत थी। लेकिन हिंदू धर्म में अस्पृश्यता की जड़ें जाति व्यवस्था में इतनी गहराई से निहित थीं कि आर्य समाज के काम का प्रभाव उतना महान नहीं था जितना होना चाहिए था। इस समय महत्वपूर्ण शहरों में चर्च बनाए गए। इसी तरह, कोंकण और शेष क्षेत्र में बड़ी संख्या में ईसाई आबादी थी। ऐसा लगता है कि पुना में ईसाई मिशनरियों के ज्ञानोदय कार्य का साल्वे परिवार पर भी कुछ प्रभाव पड़ा है। इससे लहुजी साल्वे, गणु साल्वे और मुक्ता साल्वे ने खुद को सामाजिक कार्यो में समर्पित कर दिया।

सिख धर्म

गुरू नानक ने जातिवाद, वर्ग व्यवस्था, उच्च और निम्न भेदभाव, दासता और महिला दासता को मिटाकर एक समतावादी, मानवीय समाज बनाने के लिए सिख धर्म की स्थापना की, जो हिंदू धर्म के चरम पर पहुंच गया था। सिख धर्म ने बिना जाति के दर्शन की शुरूआत की। भले ही अलग-अलग शरीर, अलग-अलग जाति, धर्म, अलग-अलग देशों के लोगों की धमनियों में एक ही खून होता है। वहां से, गुरू नानक और गुरू गोबिंद सिंह के शिष्यों ने महाराष्ट्र में सिख धर्म का प्रसार और प्रचार किया। सिख धर्म के माध्यम से गुरू गोबिंद सिंह द्वारा किए गए कार्यो का प्रभाव महाराष्ट्र में सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों में देखा जा सकता है।

१.२.३ ग्राम व्यवस्था

पेशवा और ब्रिटिश काल के दौरान भी, पाटिल, कुलकर्णी, मुकदम, देशमुख, देशपांडे और महार का ग्रामीण व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था।

पाटिल

पाटिल गाँव का मुख्य अधिकारी था। ग्राम व्यवस्था में, पाटिल को खेत तय करना था, खेत की वसूली करनी थी, गाँव में न्याय करना था, गाँव की बंजर भूमि को खेती के अधीन लाना था, कुलकर्णी की मदद से गाँव का बजट तैयार करना था और गाँव में शांति और व्यवस्था बनाना था। गांव में उनका सम्मानजनक स्थान था। पाटिल के पास दण्डाधिकार की शक्तियाँ थीं। उसे छोटे-छोटे अपराधों से निपटना था और उनकी जांच

करनी थी। पाटिल ग्राम-बस्ती से जुड़ा था। गांव के पाटिल आमतौर पर मराठा जाति के थे। लेकिन ब्राह्मणों, जैनियों, लिंगायतों, धनगरों, महारों को पाटिल का वतन था, ऐसा दिखाई देता है।

कुलकर्णी

ग्राम व्यवस्था में एक अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी कुलकर्णी है। उन्हें गाँव के दफ्तर की देखभाल करनी थी, गाँव में ज़मीन का पंजीकरण करना था, पाटिल को काम में मदद करनी थी, खेत की उपज इकट्ठा करनी थी, गाँव का हिसाब रखना था। कुलकर्णी को किसानों से 'मुसाहिर' नामक सामग्री और सामग्री भत्ता प्राप्त करने का पदेन अधिकार दिया गया था। यह व्यक्ति ब्राह्मण जाति का था।

चौगुला

चौगुला यह पाटिल का सहायक था। उसे पूरे गाँव लगान दीवाना में ले जाना, लगान की पूरी वसूली और न्याय में मदद करना, गाँव में गोदामों की देखभाल करना, गोदामों की देखभाल करना, खेतों की गिनती आदि करना था। यह व्यक्ति मराठा जाति का था।

देशमुख

देशमुख यह परगणा का वतनदार और एक सरकारी अधिकारी था। देशमुखी वतन सभी वतनों से श्रेष्ठ था। जिस गांव में पाटिल नहीं है वहां पाटिलकी का काम करना था, जमीन को खेती के दायरे में लाना था, गांव की रक्षा करना था, न्याय करना था। गाँव में उनका बहुत सम्मान था। देशमुख का पद मराठा जाति के एक व्यक्ति को दिया जाता था।

देशपांडे

देशपांडे यह परगणा का वतनदार था। उन्हें गाँव के प्रशासन की देखरेख करनी थी, भूमि का रिकॉर्ड रखना था, परगणा का हिसाब रखना था, देशमुखों को उनके काम में सहायता करना और कुलकर्णी की निगरानी करना था। वह ब्राह्मण जाति का था।

शेटे-महाजन

यह गांव के वतनदार अधिकारी थे। जिस गांव में पेठ या कस्बा होता है वहां ये वतनदार अधिकारी होते थे। गांव में पेठ की स्थापना करना, उन्हें पेठ का हिसाब रखना था। उन्होंने सार्वजनिक कार्यो और न्यायिक बैठकों में भी भाग लिया था।

महार

महार यह गांव में अछूत समुदाय के एक महत्वपूर्ण वतनदार थे। यह महरकी का वतन था। लेकिन वह गांव का चौकीदार था। महाराष्ट्र रैयत और सरकार के विभिन्न कार्यो को एक सामाजिक कर्तव्य के रूप में किया जाना था। पाटिल, कुलकर्णी और गाँव के किसानों के घरों में, खेतों में और सरकारी दरबार में उन्हें चौबीसों घंटे काम करना पड़ता था। इसी तरह, उन्हें किसानों के खेत के औजारों को खेत में ले जाना था, मवेशियों को साफ करना, जलाऊ लकड़ी लाना, मरे हुए लोगों की खबर पहुंचाना, गांव में मरे हुए जानवरों को गांव के बाहर फेंकना, गांव को साफ रखना आदि।[५] महार को पूरे दिन काम करना पड़ा। बदले में उसे बासी खाना मिलता था।

१.२.४ खानाबदोश वंचित जातियां और जनजातियां

पेशवा और ब्रिटिश शासन के दौरान, महाराष्ट्र में कई खानाबदोश बेसहारा जातियाँ थीं। उन्हें जगह-जगह भटकना पड़ा था। कैकाडी, बेलदार, पत्थर फोड, फसेपार्धी, बुरूड, पाथरवट, नर्तक, गायक जैसी खानाबदोश जातियाँ थीं। इन खानाबदोश जातियों की एक स्वतंत्र जाति पंचायत थी। इनमें से कई जातियां अछूत समुदाय के संपर्क में आयी थी। इन जातियों और जनजातियों को संचार का महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता था।

पूरे भारत को जीतने के लिए आर्यो ने आदिवासी गणराज्यों के साथ जमकर लड़ाई लड़ी थी। इस संघर्ष में आर्य की दुष्टनिती के कारण जनजातीय गणराज्यों की हार हुई। इसलिए, भारत में कम आबादी वाले स्थान, पहाड़, घाटियाँ, वनाच्छादित क्षेत्र आदिवासी लोगों के द्वार बसे हुए हैं। इनमें गौंड, राजगौंड, अंध, परधान, कोलम, थाटी, वारली, कातकरी आदि जनजातीयॉ शामिल हैं। इसमें महाराष्ट्र के गढ़चिरोली, नांदेड़, ठाणे, रायगढ़, औरंगाबाद, नागपुर और सातारा इन जिलों में रहते हैं। आदिवासियों को भारत के मूल निवासी के रूप में जाना जाता है। आर्यो के बलिदानों और कर्मकांडों का विरोध करने के कारण उन्हें आर्यो ने पराजित किया। इसमें कई आदिवासी लोगों की हत्या कर दी गई। इसलिए वे जीवित रहने के लिए जंगलों पर निर्भर थे। उनका पूरा जीवन जंगल पर निर्भर था। लेकिन अंग्रेजों द्वारा वन कानून पारित करने के साथ-साथ जमींदार वर्गो से उनकी जमीनों की जब्ती के कारण उन्हें भुखमरी का सामना करना पड़ा और उन्होंने अंग्रेजों और जमींदारों का विरोध करने के लिए एक बड़ा विद्रोह शुरू कर दिया। ब्रिटिश शासन के दौरान कुछ क्षेत्रों में रामोशी, गौंड और भील जनजातियों का शासन था।

१.२.५ बलुतेदारी और अलुतेदारी विधियॉ

बलुतेदारी गाँव के कारीगरों को उनकी आजीविका के लिए दिया जाने वाला पारिश्रमिक है। महाराष्ट्र के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था और यह खेती बड़ी संख्या में मराठों और कुनाबियों द्वारा की जाती थी। इसके अलावा, गाँव की गाड़ी के अनुसार, गैर-कृषि और किसानों के लिए महत्वपूर्ण काम करने वालों को 'बलूतेदार' और अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण काम करने वालों को 'अलुतेदार' कहा जाता था। इस संदर्भ में अत्रे ने आपनी 'गावगड़ा' पुस्तक में कहते हैं, 'ग्राम व्यवस्था एक किसान के रूप में बनाई गई थी, जो काली मिट्टी की सेवा करता है और एक ग्राम सेवक जो गाँव के लोगों की सेवा करता है'। निम्नलिखित जानकारी के अनुसार ग्राम व्यवस्था में अलुतेदार और बलुतेदार के व्यवसाय, कार्य और पारिश्रमिक स्पष्ट हो जाते हैं।

बलुतेदारी

१) बढ़ई- व्यवसाय और कार्य (लकड़ी की वस्तुएं, मोटे पहिये, कुल्हाड़ी, कुदाल, शादी के लिए चौरंग, बोहले आदि।) मुआवजा (विशिष्ट सुपारी, शेलापागोट, राशन), २) लोहार - व्यवसाय और कार्य (धार लगाने वाले, कुदाल, विला, खुरपी, रहाटीयों के पहिये की धार लगाने वाले) मुआवजा (अनाज, गुड़, मूंगफली), ३) चमार - व्यवसाय और कार्य (लगाम, वादी, आडूस, रहाट, चपला, बुंट) मुआवजा (औत के साथ चार पायली अनाज), ४) मांग - व्यवसाय और कार्य (केरसुन्या, फीका, सनाई बजाने वाले, हल्गी बजाने वाले) मुआवजा (चारकोर रोटी हर दिन, औत के साथ चार पायली अनाज), ५) महार - व्यवसाय और कार्य (मरने वाले व्यक्ति लिए लगनेवाली लकडी की व्यवस्था करना, मयतों को वर्दी देना, मरनेवाले जानवर को गांव के बाहर फेंकना।) मुआवजा (भूमि को उन्हें पुरस्कृत किया गया था), ६) नाई- व्यवसाय और काम (वारिक, सर के बालों को शेविंग, दाडी की शेविंग, मुंडन) मुआवजा (एक बड़े आदमी के साथ दो या चार पायली की रोटी, मिलावट खाना), ७) परिट- व्यवसाय और कार्य (कपड़े धोना, शादी में फुटपाथ पर साडी बिछाना) मुआवजा (ठराविक मुआवजा), ८) कुम्हार- व्यवसाय और कार्य (मिट्टी से गाडगा, मटका, घडा, रांजन, बर्तन बनाना।) मुआवजा (अनाज, गुड़, मूंगफली), ९) मकड़ी - व्यवसाय और कार्य (गाँव) आर्बर और झाड़ियाँ, पानी भरना) मुआवजा (खल्ले पर अनाज), १०) सुनार- व्यवसाय और काम (आभूषण बनाना, कान छिदवाना) मुआवजा

(रेत, श्रम), ११) गुरव - व्यवसाय और काम (ग्राम देवताओं के मंदिर धोना, दीपक जलाना, तेल की आपूर्ति करना) मुआवजा (अनाज, प्रसाद), १२) जोशी (ग्रामजोशी) - व्यवसाय और कार्य (धार्मिक और सांस्कृतिक कार्य, पंचांगों का पठन, पुराणों का पठन) मुआवजा (बालू, फल, शिधा, शेलापागोट)।[६]

आलुतेदारी

१) तेल- व्यवसाय और कार्य (कच्चे अनाज से तेल निकालना और बेचना) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), २) तंबोली- व्यवसाय और कार्य (विडा के पत्ते उगाना) मुआवजा (किसान इस्तेमाल करते थे, लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा प्राप्त करते थे।), ३) साली- व्यवसाय और कार्य (कपड़ा बुनाई) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), ४) शिंपी- व्यवसाय और कार्य (कंबल बनाना) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), ५) दर्जी- व्यवसाय और कार्य (कपड़े सिलाई) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), ६) माली- व्यवसाय और कार्य (सब्जी उगाना, त्यौहार के दिनों में गांव के लोगों को फूल देना।) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), ७) गोंधली- व्यवसाय और कार्य (देवताओं की पूजा, गोंधली डालना, गोंधली, वाघ्या, मुरली और भराड़ी यह शादी में गोंधल डालते रहते थे।) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), ८) डौरी- व्यवसाय और कार्य (देवताओं की पूजा करके जीवन यापन करना।) मुआवजा (किसानों को लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), ९) भट- व्यवसाय और कार्य (देवताओं की पूजा करके रहना, शादी में बनिया कहना।) मुआवजा (किसानों को लालच से या उनकी जरूरत के अनुसार अनाज का हिस्सा मिलता था), १०) ठाकुर- व्यवसाय और कार्य (वह जंगल में रहने वाली कुछ जनजातियों के पुजारी थे। इसे शादी में बाण्या कहा जाता था।) मुआवजा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का एक हिस्सा मिलता था), ११) गोसावी- व्यवसाय और कार्य (शहनाई बजाना, भीक्षा मांगना) मुआवजा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का एक हिस्सा मिला), १२) जंगम- व्यवसाय और कार्य (वह लिंगायतों के पुजारी थे। वह गाँव में घंटियाँ बाँटते थे। वह लिंगायतों

के सभी धार्मिक संस्कार करते हैं।), १३) मुलाना- व्यवसाय और कार्य (मुस्लिम धार्मिक संस्कार करना, साथ ही हत्यारे के रूप में कार्य करना) मुआवजा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), १४) बजानेवाले- व्यवसाय और कार्य (धार्मिक और मंगल कार्य में वाद्य बजाना।) मुआजवा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था), १५) घड्रासी- व्यवसाय और कार्य (बीन बजानेवाले।), मुआजवा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।), १६) कलाकार- व्यवसाय और कार्य (त्योहारों और यात्राओं में नाचना और गाना) मुआजवा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था), १७) तारल (कोरबू)- व्यवसाय और कार्य (एक बड़े गाँव में तारल यह कोतवाला की मदद करता था। वह महार जाति का था। यह भूमि महरकी की मातृभूमि का हिस्सा थी। तराल गाँव की सुरक्षा के लिए काम करता था।) मुआवजा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा मिलता था।) १८) भोई- व्यवसाय और कार्य (मोम ले जाना, अमीर लोगों के मेणे या पालकी लेकर जाना) मुआवजा (किसानों से लालच या जरूरत के लिए अनाज का हिस्सा अलुता के रूप में उनके इच्छा के अनुसार मिलता था।)[७]

बलुतेदारों की संख्या बारह और अलुतेदारों की संख्या अठारह मानी गई है। लेकिन कुछ गांवों में इनकी संख्या कम-जादा रहती थी। महाराष्ट्र में बलुतेदार और अलुतेदारी प्रणाली का अध्ययन करनेवाले डॉ. सेन, सुरेन्द्रनाथ, ग्रांट डफ, ओटुरकर जैसे इतिहासकारों के एक मत नहीं है। ओतुरकर के अनुसार, बढ़ई, बढ़ई, महर, मांग, कुम्भर, नाई, परिट, लोहार, जोशी, गुरव, सोनार, मुलाना बारह बलुतेदारों में और तेली, तंबोली, साली, संगर, शिम्पी, माली, गोंधली, डौरी, भट, ठाकुर, गोसावी, जंगम, बजानेवाले, कलाकर, तराल, भोई आदि। इस बलुतेदारी और अलुतेदारी सामाजिक व्यवस्था में उन्हें जो कार्य सौंपे जाते थे, उन्हें उस जाति के लोगों को ही करना पड़ता था। बदले में, उन्हें किसानों की आवश्यकता के अनुसार निर्वाह सामग्री प्रदान की जाती थी।

१.२.६ जातीयता

पेशवा और ब्रिटिश शासन के दौरान महाराष्ट्र में जातीयता प्रचलित थी। प्राचीन काल में जाति व्यवस्था बाद के समय में जाति व्यवस्था में बदल गई थी। मनुष्य की श्रेष्ठता कर्म से नहीं बल्कि जाति से निर्धारित होती थी। यह जाति व्यवस्था पेशवा काल में फली-फूली

थी। प्रत्येक जाति के लिए जाति व्यवस्था के अनुसार किए गए कार्यो को विभाजित करना अनिवार्य था। इस जाति व्यवस्था से ही जाति व्यवस्था का उदय हुआ। जाति न तो व्यक्ति को बदल सकती है और न ही जाति का पेशा बदल सकती है। महाराष्ट्र में कई जातियां थीं, और प्रत्येक जाति के अलग-अलग नियम, व्यवसाय, रीति-रिवाज और परंपराएं थीं। लेकिन छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने स्वराज्य में सभी जातियों और जनजातियों को महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपने में कोई भेदभाव नहीं किया।

पेशवा जाति व्यवस्था की एक विशेषता यह थी कि विविध प्रकार की उपजातियों के गठन की प्रक्रिया बहुत तेजी से हुई। साथ ही, ये जातियां धर्मशास्त्र और परंपरा द्वारा सौंपे गए जाति के कर्तव्यों और कर्तव्यों से विचलित नहीं हुई हैं। जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारण उस समय के समाज में जातियों और उप-जातियों के बीच झगड़े और विवाद थे। ये झगड़े कभी व्यापार और कभी रीति-रिवाजों, प्रतिष्ठा, स्थिति, मातृभूमि को लेकर होते थे।

पेशवा काल में प्रत्येक जाति दूसरी जाति को हीन मानती थी। इसलिए जातियों में भाईचारा पैदा करना संभव नहीं था। लेकिन भारत में पारंपरिक पद्धती के लिए पहली चुनौती भारत में ब्रिटिश शासित चिकित्सा पद्धति, समानता और बंधुत्व के दर्शन और शिक्षा प्रणाली से आयी थी। फलस्वरूप निम्न जातियों में आत्म-सम्मान की भावना जागृत हुई। मनुष्य के रूप में, वे दूसरों की तरह जीने और सीखने में सक्षम थे। इसलिए, ऐसा लगता है कि महाराष्ट्र में सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों को गति देकर जाति व्यवस्था को नष्ट करने के कुछ प्रयास किए गए हैं। इसमें लहूजी साल्वे का योगदान महत्वपूर्ण था।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने हिंदू धर्म में जाति व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए कहा है कि 'जाति' यह शब्द को समान मानक प्राप्त नहीं है। जाति असमानता पर आधारित है। एक जाति दूसरी जाति से ऊँची या नीची होती है और मध्यम जाति ऊँची जाति से नीची और नीची जाति से ऊँची होती है। जाति व्यवस्था श्रेणीबद्धता है। जिसमें उच्च जाति को प्राथमिकता मिलती है और निचली जाति को अन्य की तुलना में निम्न श्रेणी मिलती है। भारतीय जाति व्यवस्था बर्तन की शिड़ी के समान है। उसे मरते दम तक उसी जाति में रहना होगा। यह असमानता ही शोषण का मूल कारण है। इस चातुर्यवर्ण व्यवस्था में, भले

ही निचले बर्तन आकार में बड़े थे, उनकी प्रगति के सभी रास्ते अन्य बर्तनों द्वारा अवरूद्ध थे। चूंकि ढलान पर प्रत्येक बर्तन की शिड़ी एक प्रणाली है, जो अपनी प्रजातियों से स्वतंत्र रूप से रहती है, निचली जातियां प्रभावित होती हैं। इस जाति व्यवस्था में अछूत मानी जाने वाली महार, मांग, चंबर और ढोर जातियों पर भी ब्रिटिश शासन के दौरान कई तरह के प्रतिबंध थे। उन्हें सार्वजनिक कुओं पर जाने से मना था। उन्हें मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। इस जाति को उच्च वर्ग की गुलामी वाला काम करना पड़ता था।

१.२.७ अस्पृश्यता

पेशवा और ब्रिटिश काल के दौरान अस्पृश्यता यह भारतीय समाज का एक हिस्सा थी। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने 'ज़्ण्दृ ध्ड्ढद्धड्ढ द्यण्ड्ढ च्ण्द्वड्डद्धठ्ठद्म?' इस ग्रंथ में 'स्पर्श करने से जो अयोग्य है वह अछूत है।' इस विचार को प्रस्तुत करती है। यह अस्पृश्यता का जन्म इ.पू. ४०० के आसपास हुआ। उनका जन्म बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के बीच संघर्ष से हुआ था और इस संघर्ष ने भारत के इतिहास को अलग स्वरूप प्राप्त हुआ है।[८]

अछूत जातियों में ढोर, चम्भार, महार, होलर, मांग, हलालखोर, मांग गरोड़ी आदि मुख्य रूप से अछूत माने जाते हैं। भारत में ४२९ जातियाँ ऐसी हैं जिनका स्पर्श मात्र से सभी हिन्दुओं को कुरूप बना सकता है। इस अछूत जाति के लोगों को कुरूप माना जाता था। इसलिए उन्हें बहुत ही निम्न गुणवत्ता वाला कार्य करना पड़ा था। उन्हें गांव की मुख्य सड़कों पर यात्रा करने की भी आजादी नहीं थी। अच्छे कपड़े पहनना, अच्छा घर बनाना यह संभव नहीं था। उन्हें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से अयोग्य घोषित कर दिया गया था। इन जातियों का कोई संरक्षक नहीं था। हिंदू धर्म में लोग अन्य धर्मों के करीब थे, लेकिन अछूत जातियां उनके करीब नहीं थीं, भले ही वे हिंदू धर्म का हिस्सा थे। लेकिन अगर अछूत ईसाई या मुसलमान बन जाते हैं, तो उनकी कुरूपता समाप्त हो जाती है और ऊंची जातियां उन्हें अपने घरों में घुसने देती हैं। लेकिन जब तक वे हिंदू थे, वे छुते नहीं थे। और घर के बाहर खड़े हैं। अछूत जाति में भी एक जाति दूसरे की कुरूपता धारण करती थी। अछूतों को अपनी कमर के चारों ओर एक फंदा, अपने हाथों में काली रस्सी, उनके गले में मटका और उनकी कमर के चारों ओर एक ब्रश या कुंचा पहनने के लिए मजबूर किया जाता था ताकि ब्राह्मणों को महार-मंग की छाया और जमीन पर कदमों के निशान से अपमानित न किया जाए।[९]

भारत में अस्पृश्यता को मनुस्मृति में एक मजबूत कानूनी ढांचा मिला है। इसलिए भारत में हर स्पर्श शरीर से नहीं मन से था। अंग्रेज भारत में जाति व्यवस्था को तोड़ने या अन्य सुधार करने नहीं आए। उन्हें शायद इस सब से निपटना भी नहीं चाहिए था। लेकिन यहां पर हमारी शासन प्रणाली को विकसित करते हुए, उनके व्यवहार से निकलने वाली क्रियाएं भी समानता और एक असमान जाति व्यवस्था में बाधा थीं। उसी से समानता अपने आप पैदा हो गई। संक्षेप में, भारत में जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को ब्रिटिश प्रशासन ने हिला दिया।

अंग्रेजों ने अपने प्रशासन में समानता के सिद्धांत को लागू किया। इससे निम्न और अछूत जातियों को कुछ हद तक लाभ हुआ। क्योंकि शुरूआती दिनों में ऊंची जातियां अंग्रेजों का काम करने के लिए तैयार नहीं थीं। ब्रिटिश सरकार के पास और कोई चारा नहीं था। परिणाम स्वरूप, अछूतों को कुछ शिक्षा और नौकरी के अवसर मिले। इस अवसर का लाभ उठाते हुए, १ जनवरी १८१८ में कोरेगांव भीमा की लड़ाई में ५०० सैनिकों की एक टुकड़ी, महार बटालियन ने पेशवाओं की एक बड़ी सेना को हरा दिया।[१०] इस लड़ाई के बाद में, अंग्रेजों के उदार शासन के कारण, ज्योतिराव फुले ने अछूतों को शिक्षित करने के लिए स्कूलों की शुरूआत की। लहूजी साल्वे ने लोगों को अपने स्कूल में छात्रों को लाने के लिए प्रबोधन किया। उन्होंने जाति उन्मूलन के अपने प्रशिक्षण में शिष्यों को चुनौती दी।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के द्वारा बहुसंख्याक महार, मांग और अन्य अछूत जातियों के बहिष्कार के साथ-साथ समाज में आदान-प्रदान के साधनों का फायदा उनके तक न पहुंचने से शिक्षा की कमी से उनमें गहरी अज्ञानता पैदा हुई और इनमें चरम सीमाओं से जुड़े थे। उन्हें अपनी जरूरतों का ध्यान रखना पड़ता था। क्योंकि उन्हें भोजन, हवा, बारिश आदि से आश्रय और जीवन यापन करने में मदद करने वाला कोई नहीं था। कोई उन्हें छू नहीं रहा था। सार्वजनिक उपयोग के लिए बनाए गए कुओं का पानी पीकर वे अपनी प्यास बुझाने के लिए स्वतंत्र नहीं थे।

भारत में छुअछूत को मिटाने के लिए समाज सुधारकों द्वारा बहुत प्रयास किए गए हैं। लेकिन उच्च जातियों द्वारा अस्पृश्यता कम नहीं हुई थी। अछूतों का शोषण अपने फायदे के लिए किया जाता था। ऊंची जातियों के घरों में या सार्वजनिक स्थानों पर कुओं की खुदाई

अछूतों द्वारा मुफ्त में की जाती थी। लेकिन तब उन्हें उसी कुएँ से पानी निकालने या पीने का अधिकार नहीं था। अछूतों का उपयोग सड़क निर्माण के लिए किया जाता था। लेकिन तब उन्हें एक ही सड़क पर स्वतंत्र रूप से घूमने की आजादी नहीं थी। अछूत अपने घर और महल बनाते थे, लेकिन बाद में वे उसी घर में कुरूप हो गए। अछूत कारीगर मंदिर में देवताओं की मूर्तियाँ बनाने का काम कर रहे थे। लेकिन मंदिर में मूर्तियों की पूजा करने के बाद उन्हें मंदिर जाने का अधिकार नहीं था। तो मुक्ता साल्वे ने अपने निबंध में जाति व्यवस्था पर हमला करती नजर आती हैं। पुना में अछूतों की बड़ी संख्या के बावजूद सदाशिव गौडे, सखाराम परांजपे, मोरो विट्ठल वालवेकर, अन्नासाहेब पटवर्धन, वासुदेव फड़के और बाल गंगाधर तिलक जैसे ब्राह्मण सैन्य शिक्षा के लिए लहुजी साल्वे आते थे। उनसे हथियार सीखते समय उनकी जाति काम नहीं आती थी।[११] क्योंकि इस व्यवस्था ने जातिगत पहचान और जाति घृणा के मुद्दों को सफलतापूर्वक और आसानी से समाप्त किया। संक्षेप में, अछूतों का इस्तेमाल अपने स्वार्थ के लिए किया जाता था।

१.२.८ गुलामी

पेशवा और ब्रिटिश काल के दौरान महाराष्ट्र में गुलामी की प्रथा मौजूद थी। लेकिन प्राचीन दासता और पेशवा दासता में अंतर है। पुरूष दासी को कुनबी और दासी को कुनबीन कहा जाता था। दासों में युद्ध में पाए जाने वाले पुरूष और महिलाएं, लूट के दौरान पाए जाने वाले, गुलामी का रास्ता अपनाने वाले, अकाल के कारण अपने बच्चों को दास के रूप में बेचने वाले आदि शामिल थे। पेशवा अपने सरदारों, धनी साहूकारों, वतनदारों, जहांगीरदारों को गुलाम बनाकर रखना पसंद करते थे। गुलाम महिलाओं को घर का काम और खेत का काम करना पड़ता था। इन गुलाम महिलाओं में शूद्र समुदाय की महिलाएं भी शामिल थीं। पेशवा काल में उच्च वर्ग की स्त्रियों को दास के रूप में नहीं रखा जाता था। इस दौरान दासों को खरीदा और बेचा और पुरस्कृत भी किया जा सकता था। दासों के कौशल, दासियों की सुंदरता को महत्व दिया जाता था।

पेशवा काल में दासों का जीवन उनके स्वामियों पर निर्भर था। पेशवा में व्यभिचार के कई उदाहरण हैं। पेशवा काल में दासियों की संख्या प्रचुर मात्रा में थी। और इसलिए पेशवा काल में व्यभिचार दासों की संख्या बढ़ाने का एक प्रमुख साधन था। इसमें केवल शूद्र गुलाम थे। दासों को अचल संपत्ति का हिस्सा माना जाता था और उनका व्यापार किया

जाता था। पेशवा दास व्यापार मुख्यतः कोंकण के तटीय क्षेत्र में होता था। गुलामों को देश के विभिन्न हिस्सों से खरीदा और लाया जाता था और फिर बेचा जाता था।[१२] गुलामी का आयात-निर्यात व्यापार ब्रिटिश काल में भी जारी रहा। इस गुलामी के रिकॉर्ड मुंबई जिले के सरकारी दफ्तरों में मिलते हैं। संक्षेप में, भारत में गुलामी की अमानवीय प्रथा को अंग्रेजों ने प्रोत्साहित किया। क्योंकि उन्हें व्यापार उपक्रम आदि के लिए जनशक्ति की आवश्यकता थी।

१.२.९ जबरन मजदूरी की व्यवस्था

लहूजी साल्वे के काल में, महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर जबरन मजदूरी की प्रथा मौजूद थी। जबरन मजदूरी सामंतवाद का दूसरा रूप है। इस व्यवस्था को 'विष्टी' भी कहा जाता हैं। यह प्रथा प्राचीन काल में उत्पन्न हुई थी। उस समय राजा प्रजा की रक्षा के लिए उनसे कर वसूल करता था। लेकिन जो लोग कर का भुगतान नहीं कर सकते थे उन्हें कुछ समय बिना वेतन से काम करना पड़ता था। इसे 'वेठबिगरी' या जबरन मजदूरी कहा जाता था। अलग-अलग शास्त्रों (गौतम, मनु, विष्णु) के अनुसार राजाओं को महीने में एक या दो दिन कारीगरों और शूद्रों को मुफ्त में रखने का अधिकार था। मध्यकाल में यह व्यवस्था बदल गई। पेशवा काल के में राजा, पेशवा, सरदार, वतनदार, इनामदार, मुकदम, पाटिल, मंदिर के मुखिया, पेठ, देशमुख और देशपांडे इन अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति से मुफ्त में काम करवाने का अधिकार था।

पेशवा काल के में, बढ़ई, लोहार, कुम्हार, नाई, परित, मकड़ी, गुरू, तेलवाले, तंबोली, साली, संगर, शिम्पी, माली, गोंदली, गोसावी, ठाकुर, जंगम, मुलाना, बजानेवाले, बुरूड गवंडी, मांग, चंबर आदि और अतिशूद्र बलुतेदार शामिल थे। पेशवा और ब्रिटिश काल में इन जातियों को मुफ्त में काम करना पड़ता था। उस समय में किलों का निर्माण, सरकारी अधिकारियों के लिए घरों का निर्माण, लकड़ी की कटाई, सरकारी घास की कटाई, बोझ ढोना, साथ ही अन्य कार्य जो अधिकारियों को करने पड़ते थे, उन्हें करना पड़ता था। यह तरीका आजादी तक जारी रहा।

१.२.१० ब्रिटिश काल की आपराधिक जातियाँ

जब पुना में पेशवाओं का शासन था तो अछूतों को बहुत कष्ट होता था। जब बाजीराव कोपरगांव से जा रहे थे, तभी एक मंगा उन पर गिर गया और वह वहीं मारा गया। यदि किसी

गांव में चोरी या डकैती हुई हो तो बिना जांच के ही महार-मंगों को दण्डीत किया जाता था।[१३] सिंहगड के पास मांग जाती के व्यक्ती के हाथों से एक गाय मारी जाने से उसे दण्डीत किया था। निःसंदेह पेशवा काल में भी अछूतों को अकारण अपराधी समझा जाता था और उन्हें सजा दी जाती थी।

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद, उन्होंने भारत में की बंजोर, छप्परबंद, मांग-गारूड़ी, बेयर्ड, कैकाडी, मियां, भामटे, कातकरी, पारधी, राजपूत भामटे, कोली, रामोशी, भील, मांग और वडार की अछूत जातियों और जनजातियों का परिचय दिया। उन्होंने १८७६ में इन जातीयों को अपराधियों को जाति और जनजाति घोषित कर दिया था। और उन पर दमनकारी प्रतिबंध लगा दिए गए। शुरूआती काल १८५१ में यह कानून केवल कश्मीर, सिंध, पंजाब और अवध प्रांतों पर लागू था। लेकिन बाद में १८७६ में स्थानीय और क्षेत्रीय सरकारों ने भी इस कानून को अपनाया गया था। इसमें महाराष्ट्र की जातियां और जनजातियां शामिल थीं। उसके बाद में १८७१ से १९१९ तक के काल में, आपराधिक जातियों और जनजातियों पर प्रतिबंध और अधिक कठोर हो गए थे।

ब्रिटिश शासन के में, मुंबई प्रांत के पुलिस महानिरीक्षक एच. कैनेडी ने १९११ में 'बॉम्बे प्रेसीडेंसी के आपराधिक वर्ग' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में मुंबई क्षेत्र की आपराधिक जातियां और जनजातियां शामिल थीं।[१४] ब्रिटिश सरकार ने अपराधियों को दिन में तीन बार उपस्थित होने का आदेश दिया था। इसलिए इन गुटों के लोगों को दिन में दो बार चावड़ी और रात में थाने जाना पड़ता था। ब्रिटिश सरकार ने एक आदेश जारी किया था जिसमें कहा गया था कि यदि वह समय पर उपस्थित नहीं हुए तो उन्हें तीन महीने की कड़ी परिश्रम के लिए उत्तरदायी रहना होगा। इसलिए इन आपराधिक जातियों को भुखमरी का सामना करना पड़ा। उनकी जमीन जमींदारों के हवाले कर दी गई थी। उच्च जातियों से भूख, बेरोजगारी, अन्याय और उत्पीड़न के अपने स्वाभिमानी प्रतिरोध के कारण उन्हें अपराधी बनना पड़ा। चूँकि कुछ अछूत जातियों को अंग्रेजों द्वारा आपराधिक जाति घोषित किया गया था, इसलिए इन अपराधों की प्रकृति, उपकरण, विशेषताएं और भाषा अंग्रेजों द्वारा लिखी गई है। स्वतंत्रता के बाद सभी आपराधिक जातियों और जनजातियों के लिए १९५२ में एक कानून पारित किया गया और इन सभी अपराधों से इन जातियों को मुक्त किया गया था।

१.२.११ महिलाओं की स्थिति

पेशवा और ब्रिटिश काल में भी महिलाओं का जीवन दूसरों पर निर्भर था। उसे अपनी सास, ससुर, पति और अन्य बड़ों की इच्छा का पालन करना पड़ता था। उनकी आज्ञा के बिना उन्हें कोई राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक या सांस्कृतिक स्वतंत्रता नहीं थी। भारतीय समाज में सती प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। लेकिन इस प्रथा के खिलाफ अंग्रेजों ने कानून १८२९ में पारित किया था। फिर भी यह प्रथा शायद ही कभी मौजूद थी। पेशवा काल में सती के लिए जाना सामाजिक और धार्मिक रूप से पवित्र कार्य माना जाता था। इसी तरह बाल विवाह, केशवपन, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध, जरठ कुमारी विवाह आदर्श माने जाते थे।

शिक्षा का अधिकार न होने के कारण महिलाओं में अंधविश्वास और धार्मिकता का प्रचलन था। उच्च वर्गीय समाज में पर्दा प्रथा थी। ऐसे में जरूरत पड़ने पर वह घर से बाहर काम कर रही थी। महिलाओं को देवदर्शन के लिए अपने घर से बाहर न निकला पड़े इसलिए रास्ते, फडके आदि ने अपने घरों में मंदिर बनवाए। उन्नीसवीं सदी में, यह नीतिमूल्य और सामाजिक जीवन बदलने लगा। इसके लिए ब्रिटिश शासन फायदेमंद साबित हुआ। उन्होंने सार्वभौमिक शिक्षा की सुविधा के लिए सबसे पहले भारत में स्कूल खोलें। उन्होंने नई उपयुक्त पाठयपुस्तकें लिखी। महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया। महात्मा ज्योतिराव फुले ने महिलाओं को शिक्षित करने के लिए स्कूलों की शुरूआत की। इस काल में छात्राएं स्कूल के लिए बाहर निकलने लगीं। नतीजतन, भारतीय महिलाओं को धार्मिक अनुष्ठानों का पता चलने लगा। महिलाओं को भी शिक्षित कर उनके लिए विकास के द्वार खोले जाएं, यह विचार समाज में आने लगे। इसके कारण सिर से पांव तक मोटे आभूषण धारण करने वाली महिलाओं ने इस काल में कुछ ही आवश्यक आभूषण धारण करने शुरू कर दिए थे। लेकिन भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान तब तक नहीं हो सकता था। जब तक कि अवांछनीय मानदंडों, रीति-रिवाजों और परंपराओं के जुए से मुक्त होकर महिला को मुक्त और बुद्धिमान नहीं बनाया गया।

महात्मा ज्योतिराव फुले देश के पहले महापुरूष थे जिन्होंने महिलाओं की गुलामी के खिलाफ सबसे पहले आवाज उठाई थी। उन्होंने महिलाओं को असमानता के खिलाफ लड़ने का मंत्र भी दिया। फुले ने महिलाओं की दासता के लिए ब्राह्मणवाद को जिम्मेदार

ठहराया था। ज्योतिराव फुले कहते थे, 'इस देश में ब्राह्मणवाद को कायम रखने के लिए महिलाओं की दासता बनाई गई थी।'[१५] क्योंकि इस व्यवस्था में, कुछ प्रजातियों को खाने के लिए पर्याप्त मिलता था, जबकि अन्य को भूखा रहना पड़ता था। कुछ जातियाँ ऊँची जातियों का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करती थी। इस समाज व्यवस्था में कुत्ते-बिल्ली से संपर्क रखा जाता है लेकिन मनुष्य को मनुष्य के रूप में खारिज कर दिया जाता है। वे अपने अधिकारों से वंचित थी। स्त्री और पुरूष एक ही रथ के दो पहिये हैं। लेकिन महिलाओं को हमेशा दूसरा स्थान दिया गया। मुक्ता साल्वे और ताराबाई शिंदे ने ऐसे विचारों से भारतीय व्यवस्था को चुनौती दी। भारतीय महिलाओं की शिक्षा के कारण ही उनमें इस तरह के विद्रोही, सामाजिक रूप से परिवर्तनकारी विचार पैदा हुए। लेकिन शिक्षा का समग्र अभाव आम महिलाओं के जीवन को अंधकारमय बना देता है।

१.२.१२ विवाह संस्थाएं

भारतीय संस्कृति में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता है। पेशवा और ब्रिटिश काल के में, आठ प्रकार के विवाह में ब्रह्मा, प्रजापत्य, दैव, अर्श, गंधर्व, राक्षस, असुर और पिशाच यह थे। विवाह यह जाति, जनजाति और कुंडली के आधार पर किए जाते थे। इस काल में, आठ साल से कम उम्र की लड़कियों का विवाह किया जाता था। बारह और तेरह साल से कम उम्र की लड़कीयों का विवाह किया जाता था। उच्च वर्ग के परिवारों में बहुविवाह की प्रथा आम थी।

पेशवा काल में बालाजी बाजीराव (नानासाहेब) ने ९ शादियां, बालाजी रघुनाथराव ने ६ शादियां, नाना फडणवीस ने ६ शादियां (६० साल की उम्र में जराथ कुमारी की शादी), सदाशिवराव भाऊ ने ३ शादियां, बाजीराव दूसरा ने ११ शादियां, महादजी शिंदे ने ९ शादियां कीं थी।[१६] प्रतिष्ठित मुखिया एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करते थे। लेकिन ब्रिटिश काल में, विवाह संस्था में बड़े बदलाव हुए। हालाँकि, विवाह के लिए ब्राह्मण पुजारियों की आवश्यकता थी। उनसे बड़ी संख्या में दक्षिणाएँ ली जा रही थीं। और शादी को लेकर तरह-तरह के मान्यताएं लगाई जा रहे थे। लेकिन अछूत जातियों और खानाबदोश जातियों, आदिवासियों की शादी साधारण तरीके से की जाती थी।

यद्यपि पेशवा और ब्रिटिश काल में बाल विवाह आदर्श था, साल्वे परिवार में किसी का बाल विवाह या बहुविवाह नहीं देखा गया था। राघोजी साल्वे ने २२ साल की उम्र में

लहूजी की शादी पर विचार किया था। क्योंकि लहुजी एक प्रतिष्ठित पहलवान थे। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद, लहूजी ने १७ साल की उम्र में अपनी एक छोटी बहन राधाबाई से शादी की थी। चंगुणाबाई की शादी १८२० में १७ साल की उम्र में की थी। राहीबाई की शादी १८२३ में १८ साल की उम्र में की थी। साथ ही छोटेभाई शिवाजी इसकी शादी १८२९ में २१ साल की उम्र में की थी। शिवाजी की बेटी मुक्ता ने जल्दबाजी न करते हूए पढ़ाई की और उसे बाद उसने शिकारापुर ता. शिरूर जि. पुना के एक युवक कृष्णजी जाधव के साथ १८५९ में शादी कर ली थी। इसी तरह, इस काल में, महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज और प्रार्थना समाज ने बाल विवाह का विरोध करके और विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देकर समाज की भलाई के लिए काम किया। सत्यशोधक समाज ने बहुत ही सरल तरीके से शादियां कीं थी।

१.२.१३ वेशभूषा और निवासस्थान

उस समय, पुरूषों के कपड़ों में धोती, अंगरखा, कांदे पर गमछा, सिर पर बड़ी पगडी और पैरों में जूते होते थे। महिलाओं की वेशभूषा में लहेंगा, चोली और सर पर चोटी शामिल थी। ज्यादातर महिलाएं नंगे पैर चलती थीं जबकि अमीरों की पत्नियां जूते या पायबोस पहनती थीं। शादी के समय महिलाएं रेशम की लाल रंग की शॉल पहनकर बाहर जाती थीं। निम्न जाति और अछूत जाति के पुरूष और महिलाएं बहुत मोटे कपड़े पहनते हैं क्योंकि यह बहुत सस्ता होता था। उनमें से बहुतों को अपनी शर्म को ढकने के लिए लंगोट के अलावा और अन्य कोई कपड़ा नहीं मिलता था।

पेशवा और ब्रिटिश काल में अमीर लोग महलों और हवेली जैसे विशाल घरों में रहते थे। उच्च जातियों के अधिकांश घर दो मंजिला थे, जबकि शूद्रों और अछूतों के घर मिट्टी, घास और फूस की छतों के होते थे। गाँव में रहनेवाले लोगो के लिए झोपड़ियाँ थीं।

१.२.१४ त्यौहार और मनोरंजन

भारतीय समाज प्राचीन काल से उत्सवप्रिय रहा है। महाराष्ट्र में पेशवा और ब्रिटिश में, नागपंचमी, पोला, दशहरा, दिवाली, होली, रक्षाबंधन, गुड़ीपड़वा, कृष्ण जन्माष्टमी को हिंदू त्योहारों के रूप में मनाया जाता था। जबकि मुसलमानों में ईद और मुहर्रम या त्यौहार मनाया जाता था। इसी प्रकार मनोरंजन के लिए तमाशा, कीर्तन, दशावतारी खेल, डोंबरिया खेल, हाथी, रेडा और मुर्गी की लड़ाई, नंदीबैल का खेल इस समय खेले जा रहे थे। साथ ही

कोल्हाटी, गरोड़ी, नंदीबैलवाले, डोंबरी, दरवेशी, कलावंतिन यह कलाकार गांव-गांव जाकर खेल व नृत्य के माध्यम से समाज का मनोरंजन करते थे। इसी प्रकार, इस काल में मनोरंजन के लिए मैदानी खेलों में मर्दाना और बैठने के खेल उपलब्ध थे। खेल-कूद में कुश्ती, शिकार, रथ-दौड़, तैराकी, गिल्ली-दंडा, महिलाओं के खेलों में गीत, फुगड़ी, गायन, वादन, नृत्य, सारिपाट और लोक कला में भजन, कीर्तन, पोवड़े, लोक नृत्य इनका समाज में मनोरंजन के लिए प्रयोग किया जाता था। इन पुराने तरीकों को छोड़कर बाजीराव ने नए लेकिन बुरे तरीके शुरू किए। इससे लोगों ने शादियों पर काफी पैसा खर्च किया। साथ ही नाचते-गाते बेटकी गातों को भी गाते थे। इन सबके माध्यम से लोगों में सादगी और सौदेबाजी का प्रसार हुआ।[१७]

लहूजी बचपन में कुश्ती, तैराकी, शिकार और कुश्ती में पारंगत थे। इस दौरान कई प्रशिक्षण तालिम हुए और लोगों ने कुश्ती में यश संपादन करके तोडा और पागोटे पाकर खुश हुए। लोगों को अश्लील तमाशे देखणे का शोक था। ई. १८५० में, अंग्रेजों में सड़कों पर तमाशा करने पाबंदी लगाया था। अगर यह शादी में किया जाना था या किसी को सम्मानित करना था, तो यह कार्य नायिका के गायन और नृत्य के बिना पूरा नहीं होता था। लेकिन सरकार बदलने से हजारों लोगों की आजीविका चली गई और मनोरंजन का महत्व कम हो गया।

१.३ शैक्षिक स्थितीयां

पेशवा काल में भारतीय शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से हिंदू स्कूलों और मुस्लिम मदरसों से जुड़ी हुई थी। इन स्कूलों में पारंपरिक धर्मशास्त्र पढ़ाया जाता था। समाज का अधिकांश हिस्सा शिक्षा से दूर था। क्योंकि कुछ जातियों को शिक्षा का अधिकार था। जैसा कि विभिन्न संस्मरणों में वर्णित है। शिक्षा की कमी के कारण समाज में अन्याय और अंधविश्वास व्याप्त था। जब शिक्षा की बात आती है तब पेशवा उदासीनता दिखाई देते हैं। शिक्षा प्राप्त करने वाले मुट्ठी भर लोग पंतोजी की निजी ट्यूशन कक्षाओं से थे। यह शिक्षा संस्कृत, फारसी, उर्दू और मोडी लिपि में दी जाती थी।

भारत में १७५७ में प्लासी की लड़ाई ने भारत में राजनीतिक शक्ति की नींव रखी और भारत पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की। प्रशासन की

सुविधा के लिए अंग्रेजों ने भारतीय लोगों को शिक्षित करने की जिम्मेदारी स्वीकार कर ली थी। इसके लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए थे।

१) अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों को क्लर्क के रूप में नियुक्त करना। और प्रशासन का ठिक से प्रबंधन करना था।

२) भारतीयों को शिक्षित करके भारतीयों को ब्रिटिश शासन का समर्थक बनाया जा सकें।

३) शिक्षित वर्ग ब्रिटिश व्यापार को गति देगा।

इसके लिए, अंग्रेजों ने भारत में शैक्षिक कदम उठाना शुरू कर दिया। बेशक, अंग्रेजों ने विभिन्न शैक्षिक योजनाओं, समितियों, आयोंगों और रिपोर्टो के माध्यम से पूरे भारत में शैक्षिक नीतियों को लागू किया। इन नीतियों का असर भारत और महाराष्ट्र में भी महसूस किया गया। क्योंकि ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था में, १८१३ से १८८२ तक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर शिक्षा तक विभिन्न प्रावधान किए गए थे। ई. १८३५ का मैकाले का विवरण पत्र, १८५४ की वुड की खालिता और ई. १८८२ का हंटर आयोग भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक मील का पत्थर प्रतीत होता है।

१.३.१ पेशवे कालीन शिक्षा

पेशवा काल में भारतीय समाज बहुत अंधविश्वासी था। क्योंकि मनुस्मृति का प्रभाव इस समाज पर सबसे अधिक था। इसलिए शिक्षा उच्च जातियों और अमीरों तक ही सीमित थी। शिक्षा का अधिकार कुछ वर्गो तक सीमित था। उनका यह भी मानना था कि शिक्षा शासकों की जिम्मेदारी नहीं थी। साथ ही उपलब्ध शिक्षा पारंपरिक और धार्मिक प्रकृति की थी। महिलाओं के साथ-साथ निचली जातियों और अछूतों को भी शिक्षा का कोई अधिकार नहीं था। वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, व्याकरण, वेदांत, तर्क, न्याय, चिकित्सा, ज्योतिष, अलंकार पढ़ाया जाता था। स्कूल गांव के मंदिर या चावड़ी में आयोजित किया जाता था। इस काल में शिक्षा पर धार्मिक प्रभाव के कारण हिंदू धर्मशिक्षा प्रणाली और मुस्लिम धर्मशिक्षा प्रणाली में मूलभूत अंतर था।

पेशवा काल में शहरी और ग्रामीण इलाकों में पंतोजी इसके स्कूल मौजूद थे। वे अक्सर घरों की पडवी में भरवाई जाती थी। बच्चे जमीन पर बैठकर पढ़ना-लिखना सीखते हैं। उन्हें उनके धर्म के अनुसार पढ़ाया जाता था। साथ ही गणित, अंकगणित और लेखा भी पढ़ाया जाता था।[१५] एलफिस्टन के वर्णन के अनुसार 'लोगों की शिक्षा सुधार में करने के पिछे

उनका नैतीक विकास, नीतिमूल्ये के सुधार के अलावा दुसरा कुछ करने कारण मुझे दिखाई नहीं देता है। यहां शहर और कई गांवों में पहले से ही स्कूल हैं। साक्षरता शिक्षा ब्राह्मणों, बनियों, वाणी और लेखांकन करनेवालो तक शामिल है लेकिन किसानों तक ही सीमित है।'

१.३.२ ब्रिटिश कालीन शिक्षा

महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद ब्रिटिश शासकों ने भी शिक्षा के प्रश्न पर ध्यान दिया। उन्हें विश्वास था कि अपने राज्यों को सुरक्षित रखकर भारतीयों की उन्नति के लिए शिक्षा जैसा कोई अन्य प्रभावी उपकरण नहीं था। इसलिए एलफिंस्टन ने मुंबई क्षेत्र में शिक्षा से संबंधित नीतियों को स्पष्ट किया था। १८२३ में एक योजना सामने रखी गई थी। तदनुसार, शिक्षा की प्रक्रिया में। १८८२ तक, नीति और कानूनी कवरेज बढ़ रहा था। भारतीयों को शिक्षित करने के लिए चार्ल्स ग्रैंड, मेटकाफ और वार्डन के विचार अनुकूल थे। उनके विचार में, लंबे समय तक उन पर शासन करने की तुलना में भारतीय लोगों को शिक्षित करना और उनमें से एक राष्ट्र का निर्माण करना हमारे राष्ट्र और मानवता की दृष्टि में अधिक उपयुक्त और प्रशंसनीय है। इसके अनुसार, शिक्षा का लक्ष्य भारत में स्कूलों की स्थापना करना, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना, विज्ञान और साहित्य में मुफ्त शिक्षा प्रदान करना, पश्चिमी ज्ञान और विज्ञान का प्रसार करना और ईसाई धर्म का व्यापक प्रसार करना था। लेकिन हर कोई शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनिच्छुक था।

ई. १८१८ से १८८१ में अंग्रेजों ने निचली जातियों की शिक्षा पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। वुड के १८५४ में खलिता के अनुसार, अछूत शैक्षिक नीति के लाभों से व्यवस्थित रूप से वंचित थे। इसमें अछूतों पर शिक्षा प्रतिबंध उठाना १८५४ का आदेश कागजों पर ही रह गया। [१९] महाराष्ट्र में ब्रिटिश शिक्षा नीति का क्रियान्वयन १८१५ से १८५७ तक चरणों में हो रहा था। ई. १८५७ के बाद अंग्रेजों ने शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। उससे पहले १८५४ की वुड की खालिता ने शिक्षा में महत्वपूर्ण सुधार किया।

भारतीयों को शिक्षा मिलनी चाहिए, इसके लिए चार्ल्स ग्रैंड एक पैम्फलेट १७९२ में उन्होंने एक पुस्तक प्रकाशिन किया था। लेकिन कुछ चालाक अंग्रेज अधिकारी भारतीयों को अंग्रेजी पढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार, भारतीय हिंदुओं और मुसलमानों को अरबी, फारसी और संस्कृत के माध्यम से पारंपरिक शिक्षा के माध्यम से धर्मों में विभाजित

करने की आवश्यकता थी। अगर उन्हें अंग्रेजी की शिक्षा मिलती है, तो वे अंग्रेजी लोगों की बराबरी करने वाले थे। लेकिन लार्ड मैकाले एक शिक्षक थे। इस संबंध में उन्होंने कड़े विचार व्यक्त किए। उनके अनुसार संस्कृत, अरबी, फारसी और अन्य देशी भाषाएं बेकार हैं और उन्हें अंग्रेजी में पश्चिमी साहित्य, ज्ञान और विज्ञान पढ़ाया जाना चाहिए। इससे पता चलता है कि भारतीयों के शैक्षिक विकास के लिए प्रयास किए गए हैं।

लॉर्ड मैककौली की शैक्षिक योजना के अनुसार, घुसपैठ का सिद्धांत उच्च वर्गो को शिक्षा प्रदान करना था। और फिर धीरे-धीरे घुसपैठ निम्न वर्गो तक पहुंच जाएगी। लेकिन उच्च जातियां, जो अंग्रेजी भाषा में शिक्षित थीं, ने निम्न वर्गो तक पहुंचे बिना ब्रिटिश नौकरियों को प्राप्त करना एक आशीर्वाद माना। इस ब्रिटिश शिक्षा के मामले में बाद में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर एक निर्णायक निष्कर्ष पर पहुंचे थे। ई. १८४२-४३ की रिपोर्ट के अनुसार, ६९ बच्चों में से सरकार ने केवल एक बच्चे के लिए शिक्षक की सुविधा प्रदान की थी। भारत के लोगों को शिक्षित करने में ब्रिटिश सरकार की धीमी प्रगति पर आपत्ति जताते हुए उन्होंने कहा कि यदि शैक्षिक प्रगति इसी गति से चलती रही तो सभी लड़कों को स्कूल पहुंचने में चालीस साल और लड़कियों के लिए चार सौ साल लगेंगे। संक्षेप में, अंग्रेज महिलाओं की शिक्षा, निम्न जाति और अस्पृश्यता नीति के प्रति उदासीन थे।

१.३.३ ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

भारतीय शिक्षा आंदोलन में ईसाई मिशनरियों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। इस मिशनरी ने स्वास्थ्य और शिक्षा का बहुत बड़ा काम किया था। महाराष्ट्र में शिक्षा का प्रसार चर्च, मिशनरी सोसाइटी, मुंबई बाइबल सोसाइटी, स्कॉटिश मिशनरी सोसाइटी, लंदन मिशनरी सोसाइटी और अमेरिकन मिशनरी के माध्यम से हुआ। इन मिशनरियों ने मुंबई, पुना, श्रीरामपुर, अहमदनगर, मिराज, औरंगाबाद, जालना और अन्य जगहों पर शिक्षण संस्थान शुरू किए थे। इसमें से महाराष्ट्र में ईसाई मिशनरियों ने अमूल्य शैक्षिक कार्य किया। उसने १८३० से १८५४ तक के दशक में, उन्होंने कई स्कूलों की स्थापना की और शिक्षा का प्रसार किया। लेकिन इस १८६० के बाद, ब्रिटिश अधिकारियों ने शिक्षा के लिए भुगतान किए,बिना मिशनरियों को प्रोत्साहित किया। चूँकि उनका शैक्षिक कार्य अंतर्धार्मिक

सद्भाव के सिद्धांत पर आधारित था, इसलिए सभी जातियों और धर्मोके बच्चों को इसमें प्रवेश दिया गया।

ईसाई मिशनरियों ने सेवा की भावना से ईसाई धर्म का प्रचार किया। ये मिशनरी थे जिन्होंने भारत में पहली बार निचली जातियों, अछूतों, महिलाओं के लिए शिक्षा के दरवाजे खोले। अपने शैक्षणिक कार्य के कुछ दिनों के भीतर, उन्होंने यह धारणा दी थी कि निचली अछूत जातियों के छात्र सबसे अच्छे थे। एक अच्छा शिष्य बनने की शक्ति नीचे के लोगों के पास है। इसलिए उसने इन लोगों पर ध्यान केंद्रित किया। हालांकि, मुंबई के गवर्नर एलफिलस्टन ने चेतावनी दी कि मिशनरियों के कार्यो से उच्च जातियों में हलचल होगी। १८१९ में पुना में एक स्कूल की स्थापना की। ईसाई मिशनरियों पर प्रतिबंध के कारण प्राथमिक शिक्षा में गिरावट आई।

लहूजी साल्वे महाराष्ट्र में ईसाई मिशनरियों द्वारा किए गए शैक्षिक कार्यो से प्रभावित थे। क्योंकि ये ईसाई मिशनरी अस्पृश्यता का अभ्यास नहीं करते थे, अछूतों के प्रति दयालुता से बात करते थे। शिक्षा के लाभों को समझाने के साथ-साथ लहूजी साल्वे भी शिक्षा के महत्व को समझने लगे। लेकिन अछूतों की शिक्षा के प्रति ब्रिटिश सरकार की उदासीन नीति और उच्च जातियों के अहंकार के कारण महाराष्ट्र में अछूतों का शैक्षिक विकास नहीं हो रहा था। यह महसूस करते हुए कि हमें अपने भाइयों का शिक्षा विकास का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए इसलिए लहूजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले को प्रोत्साहित किया और अपना शैक्षिक कार्य शुरू किया। निहितार्थ यह है कि ईसाई मिशनरी १८१८ ई. में ऐसा लगता है कि १८४७ के कार्य ने लहुजी साल्वे की सोच को प्रभावित किया है। इसलिए ईसाई मिशनरियों के सेवा-उन्मुख रवैये और शिक्षा के कारण, लहूजी साल्वे ने शूद्रों, अतिशूद्रों और महिलाओं की शिक्षा के लिए खुद को शैक्षिक और सामाजिक कार्यो में समर्पित कर दिया था।

१.३.४ समाज सुधारकों के शैक्षिक कार्य

महाराष्ट्र में अंग्रेजों के शैक्षिक सुधारों के कारण सुशिक्षित समाज सुधारकों ने चिकित्सा भूमिका से शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया। हालाँकि, अंग्रेजों ने मुंबई क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में स्कूल शुरू किए, लेकिन अपने उदार सिद्धांतों की उपेक्षा करके और जनता की शिक्षा की उपेक्षा करके, ताकि उच्च वर्ग की राजशाही का क्षरण न हो। ई. १८२८ के

आसपास, एक पारंपरिक नेता, ढकजी दादाजी प्रभु की इच्छा के अनुसार, मराठा, कोली और भंडारी जातियों के बच्चों को मुंबई के सरकारी स्कूलों से निकाल दिया गया था। पुना के स्कूल में भी। १८५१ तक, केवल ब्राह्मण छात्रों को लिया जाता था।[२०]

उच्चवर्णिय लोगों की तरह कनिष्ठ और अस्पृश्य जाति को शिक्षा का अधिकार मिला था। इस महाराष्ट्र में लहुजी साल्वे, ज्योतिराव फुले, सावित्रीबाई फुले, सदाशिव गोवंडे, सखाराम परांजपे, मोरो विट्ठल वालवेकर, फातिमा शेख, जगन्नाथ शंकर शेठ, बालशास्त्री जांभेकर, महादेव गोविंद रानडे, गोपाल गणेश आगरकर, विट्ठल रामजी शिंदे, धोंडो केशव कर्वे, कई अन्य समाज सुधारकों ने महाराष्ट्र में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य किया।

१.३.५ अछूतों की शैक्षिक यात्रा

अस्पृश्यता वह अदृश्य शक्ति है जिसे आम तौर पर एक व्यक्ति या वस्तु के रूप में माना जाता है। जो किसी व्यक्ति या वस्तु के स्पर्श से दूषित हो जाती है। भारत में कुछ जातियों के मामले में अस्पृश्यता स्थायी थी। देश में बड़ी संख्या में ऐसी अछूत जातियाँ हैं और कुछ जातियाँ भारत में प्राचीन काल से ही अछूत मानी जाती रही हैं। महाराष्ट्र कोई अपवाद नहीं था। इस व्यवस्था में अछूतों या शूद्रों को जीने का कोई अधिकार नहीं था। चाहे देश में कितनी भी व्यवस्थाएँ क्यों न बदली हों, अस्पृश्यता बनी रही है। विभिन्न ग्रंथों के आधार पर व्यवस्था की गई की, शूद्रों को किसी भी परिस्थिति में शिक्षित नहीं किया जा सकता है।

मध्यकाल में भी बहुत अधिक अस्पृश्यता व्याप्त थी। इसका प्रमाण संत चोखा मेला, संत सोयाराबाई और संत कर्ममेला के अभंग इस साहित्य में मिलता है। उस समय की शिक्षा व्यवस्था में भी अछूतों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। इसलिए अछूत समाज जन्म से लेकर मृत्यु तक कुरूपता में रहा था। इस स्थिति ने पेशवा काल में और वृद्धि हुई। इस काल में अछूतों को विभिन्न धार्मिक साख के आधार पर शिक्षा से दूर रखा गया था। इतना ही नहीं अगर कोई अछूत शिक्षा पाने की कोशिश करता तो उसे अमानवीय तरीके से प्रताड़ित किया जाता था। उन्हें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और राजनीतिक रूप से अयोग्य घोषित कर दिया गया था। लेकिन उसके बाद पेशवा काल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में कुछ लचीलापन था। इसका श्रेय ब्रिटिश राजशाही को जाता है।

महात्मा ज्योतिराव फुले ने शैक्षिक आंदोलन को तेज करने के बाद, कुछ हद तक अछूतों के लिए शिक्षा के दरवाजे खोल दिए लेकिन इसका अनुपात बहुत कम था। यद्यपि ब्रिटिश उदारवादी और ईसाई मिशनरी सेवा ने भारत में समानता के बीज बोने में मदद की थी। अंग्रेजों ने अछूतों की सार्वभौमिक शिक्षा की उपेक्षा की ताकि अछूतों को शिक्षित करके महाराष्ट्र में कर्मठ सनातन का क्रोध न हो सका था। लेकिन लहुजी साल्वे के प्रोत्साहन से, ज्योतिराव फुले ने अछूतों को शिक्षित करने और उन्हें प्रबोधन करने के लिए पुना में अछूतों के लिए एक स्कूल की स्थापना की। लहुजी साल्वे अछूत बच्चों को इस स्कूल में लाते थे। इस स्कूल में लड़के और लड़कियां एक ही जगह पढ़ते हैं। वे स्कूल बहुत अच्छे से चल रहे थे। लड़के-लड़कियों की पढ़ाई भी अच्छी चल रही थी। लहुजी साल्वे और ज्योतिराव फुले के काम के कारण कई पीढ़ीयों से शिक्षा नहीं जानने वाले लोगों के बच्चे स्कूल में पढ़ने लगे थे।

हंटर शिक्षा आयोग को सौंपे गए, एक बयान में ज्योतिराव फुले कहते हैं की, 'मैंने महार-मंग के बच्चों को एक साथ शिक्षित करने के लिए अपना खुद का स्कूल स्थापित किया है।' जल्द ही एक ही कक्षा के बच्चों के लिए दो और स्कूल खोले गए थे। सर स्कैन पेरी और सरकार के तत्कालीन सचिव श्री. लम्सडेन ने बालिका विद्यालयों का दौरा किया। और शिक्षा के क्षेत्र में नए आंदोलन पर संतोष व्यक्त किया और मुझे एक जोड़ी शॉल देकर सम्मानित किया। इस स्कूल में मैंने नौ साल काम किया। लेकिन अछूतों के लिए शिक्षा के दरवाजे खोलने से सवर्णो को बहुत बुरा लगा। स्कूल शुरू होने के बाद किसी ने जगह नहीं दी, भवन बनाने के लिए पैसे नहीं थे, अछूतों ने बच्चों को स्कूल नहीं भेजा। ऐसे समय में लहुजी बिन रघु राउत मांग और रणबा महार अछूत समुदाय के पास गए और उन्हें शिक्षा का महत्व बताया और फुले दंपति के पीछे मजबूती से खड़े रहे।[२१] उसके बाद श्रीमती मिशेल की देखरेख में स्कूल चलाए था। लेकिन इ.स. १८५८ से १८८१ तक के काल में अंग्रेजों ने अछूतों के स्कूल पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। इसलिए हंटर कमीशन को दिए अपने बयान में ज्योतिराव फुले ने अछूतों के लिए स्कूल की स्थिति पर नाराजगी व्यक्त की। उनके अनुसार अछूतों और कनिष्ठों के लिए स्कूल चल रहे हैं लेकिन उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है।[२२]

महात्मा ज्योतिराव फुले ने पुना में अछूतों के लिए तीन स्कूलों की स्थापना की। इसने अछूत समुदाय के छात्रों के बीच एक पुनर्जागरण पैदा किया। स्कूल में छात्रों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी। शिक्षा के कारण अछूत लड़के-लड़कियाँ धर्म का पालन करने लगे। यह अछूत समाज में एक बहुत बड़ा सामाजिक परिवर्तन था। लहूजी साल्वे का योगदान भी महत्वपूर्ण था।

लहुजी साल्वे ने इ.स. १८५४ से १८५५ के बीच अहमदनगर, सातारा और नासिक के साथ-साथ पुना में अछूतों को शिक्षा के महत्व के बारे में बताया। दुःख पर मुक्ता साल्वे के मांग-महार के निबंध की अंग्रेजों ने सरहाना किया था।[२३] इसलिए लड़के और लड़कियां ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित अछूत स्कूल में जाने लगे। लेकिन महाराष्ट्र में हर जगह अछूत बच्चों को दूसरों से अलग करके चटाई या जमीन पर रखा जाता था। कुछ स्कूलों के अछूत बच्चों को कक्षा के बाहर बरामदे में बैठना पड़ा था। सभी छात्रों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए यह सिद्धांत था। १८७० में, स्थानीय स्वशासी निकायों को पेश किया गया और शिक्षा नियमावली में उसी सिद्धांत को अपनाया गया। लेकिन वास्तव में इस सिद्धांत का पालन बिल्कुल नहीं किया गया था। चूंकि १८७० के बाद भी महाराष्ट्र में अछूतों के बच्चों को प्राथमिक विद्यालय में अन्य बच्चों से अलग रखा जाता था और उन्हें कक्षा से बाहर रखा जाता था।[२४] लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ।

अस्पृश्यता पर ब्रिटिश नीति पर हंटर आयोग के समक्ष अपने बयान में, ज्योतिराव फुले ने अस्पृश्यता पर ब्रिटिश नीति के प्रति उदासीनता की ओर इशारा किया। उनके अनुसार, अंग्रेजों की व्यावहारिक शिक्षा व्यवस्था में उच्च शिक्षा पर खर्च किया जा रहा है, जो केवल ब्राह्मणों और उच्च जातियों को शिक्षित करता है और आम लोगों को अज्ञानता और गरीबी के रसातल में रखता है। इसमें से अछूतों के प्रति ब्रिटिश शिक्षा नीति का अनुपात (इ.स. १८५४ से १८८२ तक) प्राथमिक शिक्षा के लिए १००.८७ फीसदी, माध्यमिक शिक्षा के लिए ००.१४ प्रतिशत उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए ००.० प्रतिशत और कॉलेज शिक्षा के लिए ०० फीसदी था। इससे पता चलता है कि, १८५४ में आम जनता शिक्षा से यथासंभव दूर थी। १८८२ में भी वह शिक्षा से दूर थीं।[२५] आधिकारिक रिकॉर्ड के अनुसार १८८१-८२ तक कनिष्ठ जाति समूह में मुंबई क्षेत्र में एक माध्यमिक विद्यालय और विश्वविद्यालय में सरकारी शिक्षा विभाग के इ.स. १८८१-८२ के इतिवृत्त

के अनुसार एक भी महार-मंग लड़का नहीं था। अपनी पुस्तक में धनंजय कीर कहते हैं कि उस समय के ब्राह्मण कनिष्ठ शिक्षकों ने कक्षा के बच्चों को हतोत्साहित किया और उन्हें स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर किया था।

१.३.६ स्त्री शिक्षा का मार्ग

समाज की बेहतरी के लिए महिलाओं को शिक्षित करने की जरूरत को स्वीकार करते हुए, ज्योतिराव फुले ने १८४८ में, लड़कियों के लिए पहला स्कूल बुधवार पेठ कें भिड़े हवेली में शुरू किया था। उसके बाद उन्होंने जूनागंज पेठ में एक और स्कूल शुरू किया था। ई. १८५१ में चिपलुनकर की हवेली, १७ सितंबर, १८५१ में राजपेठ, ई. १८५२ भोकरवाड़ी, ई. १८५२ में वेतल पेठ में स्कूल शुरू किया था।[२६] क्योंकि लहूजी साल्वे के अनुसार महिलाओं के शिक्षित होने से ही उन्हें शोषक व्यवस्था से मुक्ति मिलेगी और समाज विकास की ओर अग्रसर होगा। इसलिए, यह उनके शिष्य ज्योतिराव फुले थे, जिन्होंने लहुजी साल्वे के विचारों को साकार किया था। ज्योतिराव फुले दुनिया के पहले क्रांतिकारी थे जिन्होंने महिलाओं की शिक्षा की पहल की और महिलाओं के मानवाधिकारों की स्थापना की और उन्हें इस पवित्र कार्य में लहूजी साल्वे का समर्थन और सहयोग मिला।

जबकि पुना में ज्योतिराव फुले के द्वारा शुरू किए गए महिला शिक्षा के पवित्र कार्य का व्यापक विरोध था, इस समय में भी ज्योतिराव के मार्गदर्शन में, सावित्रीबाई और फातिमा दोनों शब्द के साथ एवं साक्षरता से जुड़ रही थीं। सावित्रीबाई ने अपना शिक्षक प्रशिक्षण भी पूरा किया और भारत की पहली महिला शिक्षिका और प्रधानाध्यापिका बनीं थी। ब्रिटिश सरकार ने ज्योतिराव फुले के शैक्षिक कार्यो को उचित मान्यता देने के लिए मेजर कैंन्डी को सौंप दिया। १६ नवंबर, १८५२ के दिन उन्हें सम्मानित किया गया था।

लहूजी साल्वे काल की सामाजिक और शैक्षिक स्थितियों के एक अध्ययन से पता चलता है कि भारत में हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी और जैन धर्मो के अस्तित्व के बावजूद, धर्म और जाति व्यवस्था का भारतीय समाज पर बड़ा प्रभाव था। चूंकि जाति जन्म पर आधारित होती है, इसलिए जाति व्यवस्था के अनुसार मृत्यु और श्रम विभाजन की व्यवस्था थी जिसमें जाति का जन्म हुआ था। यद्यपि ब्रिटिश शासन के दौरान सामाजिक सुधार आंदोलनों को गति मिली, शूद्रतिशूद्र समाज अज्ञानता, अंधविश्वास और गरीबी से त्रस्त था क्योंकि ब्रिटिश नीति उच्च जातियों का पक्ष लेने की थी। उन्हें पुजारियों, साहूकारों

और सरकारी सेवकों द्वारा भी निचोड़ा जा रहा था। कुल मिलाकर उनका जीवन किसी जानवर से कम नहीं था। कनिष्ठ, आदिवासी और खानाबदोश जातियों और जनजातियों के लिए भी कमोबेश यही स्थिति थी।

हालाँकि अंग्रेजों की उदार नीतियों के कारण महाराष्ट्र में पश्चिमी शिक्षा की शुरूआत हुई, लेकिन लॉर्ड मैकाले के घुसपैठ के सिद्धांत से केवल ब्राह्मण वर्ग को ही लाभ हुआ लगता है। चूंकि यह वर्ग शिक्षा में सबसे आगे था, इसलिए उन्हें नौकरियों में भी अवसर मिले। हालांकि मराठा आबादी महाराष्ट्र में सबसे बड़ी थी, लेकिन राजे-राजवाड़े, जहांगीरदार, देशमुख, इनामदार और वतनदार परिवारों के कुछ सदस्य पढ़ना-लिखना सीख रहे थे। लेकिन मराठा समुदाय के अधिकांश लोग समझते थे कि, शिक्षा और नौकरी उनका कार्य नहीं बल्कि ब्राह्मणों का कार्य था। इसलिए उन्होंने कृषि की ओर ध्यान दिया। लेकिन शिक्षा की कमी के कारण इस समाज में भी अज्ञानता और अंधविश्वास व्याप्त था। साथ ही लहूजी साल्वे और ज्योतिराव फुले ने शूद्रतिशूद्र समुदाय की दयनीय स्थिति के कारण ही पहचान की और ब्रिटिश घुसपैठ के सिद्धांत का खंडन किया। उनके अनुसार शिक्षा निम्न वर्ग से उच्च वर्ग की ओर होनी चाहिए। इसके लिए महात्मा ज्योतिराव फुले ने पुना में कई स्कूलों की स्थापना की। इन सभी स्कूलों का प्रबंधन वस्ताद लहुजी साल्वे द्वारा किया जाता था। लेकिन ब्रिटिश उच्च जातियों की नीति से देश का समग्र विकास नहीं हुआ।

सन्दर्भ :

१) कार्णिक शशिकांत, पेशवा महाराष्ट्र सोशल एंड इकोनॉमिक लाइफ, हिस्ट्री रिसर्च बोर्ड, मुंबई, फर्स्ट एडिशन, १९८८, पृ. ६.

२) गवली पी. ए., पेशवा महाराष्ट्र, कैलाश प्रकाशन, औरंगाबाद, पंचमावृति, २०००,पृ. ६४.

३) चौधरी के. के., झुंजर पुना, कॉन्टिनेंटल प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८, पृ. ६४.

४) मोर दिनकर, हिस्ट्री ऑफ ट्रांसफॉर्मेशन इन मॉडर्न महाराष्ट्र, के. एस प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००६, पृ. ११४.

५) कथारे अनिल, कदम वसंत, पेशवाकालिन महाराष्ट्र, पूनम प्रकाशन, कंधार, प्रथम संस्करण, २०१०, पृ. ४४.

६) कित्ता, पृ. ५०.
७) गवली पृ. ए., पूर्वोक्त, पृ. २८३.
८) अम्बेडकर बाबासाहेब, अछूत मूल के कौन हैं?, नाग-नालंदा प्रकाशन, इस्लामपुर, प्रथम संस्करण, पुनर्मुद्रण, २०१२, पृ. १५२.
९) गवली पृ. ए., पूर्वोक्त, पृ. १६८.
१०) ण्द्यद्यद्रद्मः//श्द्ध.श्र.ध्त्त्त्द्रड्डड्डत्ठ.दृद्धढ़/ध्त्त्त
११) शेवदे सच्चिदानंद, वासुदेव बलवंत फड़के, अभिजीत प्रकाशन, पुना, द्वितीय संस्करण, २००९, पृ. ४०.
१२) गवली पी. ए., पूर्वोक्त, पृ. ३३३.
१३) ज्ञानोदय, तारीख- १५ मार्च, १८५५।
१४) कदम सोमनाथ, मतंग समाज का इतिहास, अरूणा प्रकाशन, लातूर, प्रथम संस्करण, २०१५, पृ. ५४.
१५) उगले जी. ए., महात्मा फुले - ए फ्री थॉट, कौशल्या प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०००, पृ. ३४.
१६) कठारे अनिल, कदम वसंत, पूर्वोक्त, पृ. ५९.
१७) जोशी नं, वी., पुना शहर का विवरण, मनसनमन प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००२, पृ. ४१.
१८) कार्णिक शशिकांत, पूर्वोक्त, पृ. ३४.
१९) चव्हाण विलास, डॉ. अम्बेडकर एंड द कास्ट स्ट्रगल इन इंडियन एजुकेशन, क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले प्रकाशन संस्था, येओला, फर्स्ट एडिशन, २००३, पृ. ४६.
२०) खोबरेकर बनाम, गवर्नमेंट, फ्रीडम फाइट्स इन महाराष्ट्र, महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड ऑफ लिटरेचर एंड कल्चर, मुंबई, फर्स्ट एडिशन, १९९४, पृ. २०.
२१) नारके हरि (सं.), महात्मा फुले गौरव ग्रंथ, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, एम. फुले, राजर्षि साहू चरित्र प्रकाशन समिति, मुंबई, पहला संस्करण, १९९३, पृ. १३२.
२२) किर धनंजय, सो। आर मालशे और फड़के। पर (सं.), महात्मा फुले समग्र वांगमय, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति बोर्ड, मुंबई, छठा संस्करण, २००६, पृ. ७६३.

२३) जाधव किशन निवृति (लहूजी साल्वे के पोते), गंजपेठ, पुना, सीधा साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४.

२४) किर धनंजय, स. ग. मालशे, फड़के य. दि.पर (संपा.), पूर्वोक्त, पृ. ७६४.

२५) कदम सोमनाथ, पूर्वोक्त, पृ. ९२.

२६) अधिक दिनकर, पूर्वोक्त, पृ. क्र. ३०६.

अध्याय दो

साल्वे परिवार का इतिहास और

लहुजी साल्वे का उदय

२.१ प्रस्तावना

२.२ साल्वे परिवार का इतिहास

२.२.१ थोरेल लहुजी साल्वे
२.२.२ यशवंत साल्वे
२.२.३ राघोजी साल्वे
२.३ लहूजी साल्वे का जन्म और बचपन
२.४ लहूजी साल्वे द्वारा कुश्ती
२.५ पेशवा सेना में नौकरियां
२.६ लहूजी की शादी और उनकी माँ की मृत्यु की तैयारी
२.७ खड़की का युद्ध और राघोजी का बलिदान
२.८ स्वराज्य की बहाली की प्रतिज्ञा
२.९ कोरेगांव भीमा में युद्ध और लहुजी साल्वे की भूमिका
२.१० मृतक सैनिक के रिश्तेदारों को सांत्वना और पुना में निवास
संदर्भ

अध्याय दो

साल्वे परिवार का इतिहास और लहुजी साल्वे का उदय

२.१ प्रस्तावनाः

लहूजी साल्वे ने आधुनिक भारत के इतिहास में सामाजिक और शैक्षिक सुधार आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने पेशवे काल के पतन के बाद महाराष्ट्र में स्वराज्य की बहाली की शपथ ली और राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जिस तरह लहूजी साल्वे ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। उसी तरह उन्होंने भारत में कर्मठ सनातनी व्यवस्था को नष्ट करके समानता पर आधारित समाज बनाने के लिए महात्मा ज्योतिराव फुले के सामाजिक

और शैक्षिक कार्यो का समर्थन किया था। ज्योतिराव फुले ने अछूतों को शिक्षा के अधिकार के लिए प्रोत्साहित दिया और अछूतों के बीच शैक्षिक जागरूकता पैदा की।

पुना में कुछ मेहनती लोगों ने ज्योतिराव फुले के शैक्षिक और सामाजिक कार्यो का विरोध किया था। इस समय, लहूजी साल्वे ने इन शैक्षिक विरोधियों की खबर ली। उन्होंने ज्योतिराव फुले के स्कूल के शिक्षकों को भी शैक्षिक कार्यो के लिए प्रोत्साहित दिया। उन्होंने ज्योतिराव फुले के द्वारा स्थापित विद्यालय के लिए आर्थिक सहायता हेतु चंदा एकत्रित किया था। उनके प्रशिक्षण में नाइट स्कूल शुरू करके प्रौढ़ शिक्षा शुरू की गई ताकि अछूत भाई वर्णमाला सीख सकें। इसी तरह उन्होंने अछूतों के पिछड़ेपन को खत्म करने के लिए सामाजिक और शैक्षणिक कार्य किया था। इस संबंध में साल्वे परिवार का इतिहास, स्वराज्य में उनका योगदान और साथ ही इस परिवार में लहूजी साल्वे का उदय और उनके प्रदर्शन का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है।

२.२ साल्वे परिवार का पूर्वतिहास

छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित स्वराज्य में मुस्लिम, महार, मांग, चम्भर, आदिवासी, रामोशी, नाई और अन्य जातियों और जनजातियों जैसे मराठा और राजपूत प्रमुखों के बहादुर और पराक्रमी सैनिक थे। उन्हें 'मावले' कहा जाता था। इन्हीं मावलों ने समय-समय पर मुगलों, आदिलशाहियों, निजामशाहियों और कुतुबशाहियों से लड़कर स्वराज्य की रक्षा की। इनमें मांग, महार, रामोशी और चंबर जाति के सैनिकों को युद्ध के मैदान में बंदूकें ले जाने और ले आने का कार्य था। इसी तरह किलों की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर थी। क्योंकि इस जाति के सैनिक पराक्रमी, लड़ने वाले, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और वफादार थे। शिवकाल से पहले भी, इस परिवार के कई मुखिया आदिलशाही और निजामशाही में पैदल सैनिकों के रूप में सेवा कर चुके थे।[१]

२.२.१ थोरले लहुजी साल्वे (१६२१ ई. से १६९० ई.)

लहुजी साल्वे (लहुजी साल्वे के पड़ दादा) का जन्म पुरंदर किले के पास पेठ नामक एक छोटेसे गांव में १६२१ के आसपास हुआ था। वे तलवारबाजी, घुड़सवारी, दाण्डपाट्ट, कटघर, भाला, खंजीर, खड्ग, बाघों के नाखुन, निशाने बाजी आदि में पारंगत थे। उन्होंने पुरंदर के जंगल में गनीमिकावा या छुपाहल्ला और दाण्डपाट्टा चलाने के लिए युवाओं को प्रशिक्षित भी किया था। दाण्डपाट्टा तलवार के समान एक शस्त्र है। यह आमतौर पर एक

लंबे, सीधे आकार के, स्टील के पत्तों वाले बख्तरबंद या चिलखती दस्ताने से जुड़ा होता है। यह अस्त्र महान लहुजी का प्रिय अस्त्र था। वह हमेशा उनके साथ रखते थे। शिवाजी महाराज ने इस हथियार को चलाने का प्रशिक्षण बड़े लहुजी साल्वे से प्राप्त किया था।[२] इसी हथियार का इस्तेमाल शिवाजी महाराज ने कई युद्धों में किया था। अफजल खान की प्रतापगढ़ यात्रा के समय, अफजल खान के वकील कृष्णजी भास्कर कुलकर्णी ने शिवाजी महाराज पर तलवार से हमला किया था। उस समय शिवाजी महाराज ने कृष्णजी भास्कर कुलकर्णी पर दाण्डपाट्ट का प्रयोग किया था। इसलिए साल्वे वंश के ज्येष्ठ पुत्र लहुजी साल्वे, जो दाण्डपाट्ट की कला में पारंगत थे, उन्हें पुरंदर किले की रक्षा का कार्य सौंपा गया और पुरंदर जैसे मजबूत किले की रक्षा के लिए सेना को एक मजबूत योद्धा के रूप में प्रशिक्षित करने की आवश्यकता थी।

महान लहूजी साल्वे ने आदिलशाही, निजामशाही और मुगल शासन के साथ कई लड़ाइयों में पराक्रम दिखाया था। छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपनी कड़ी मेहनत और बहादुरी के कारण अपने राज्याभिषेक के दिन लहुजी साल्वे को ताज पहनाया गया था। उन्हें ६ जून, १६७४ को 'राउत' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। वृद्धावस्था में उनकी मृत्यू १६९० के आसपास पेठ इस गांव में हुआ था।[३] उसके बाद में, इस परिवार के कई सदस्यों ने मराठा काल के दौरान सेना का नेतृत्व किया। लेकिन दस्तावेजों के अभाव में इस परिवार के कई सदस्यों के नाम नहीं मिल पाता है।

२.२.२ यशवंत साल्वे (१७६६ ई. से १८३२ ई.)

यशवंत साल्वे महान लहुजी साल्वे के चचेरे भाई थें। यशवंत साल्वे पेशवा काल में सवाई माधवराव पेशवा के शासनकाल के दौरान एक कर्तव्यशील और पराक्रमी प्रमुख के रूप में जाने जाते थे।[४] लेकिन बाजीराव द्वितीय के शासनकाल में, जब होल्करों ने पुना पर आक्रमण किया। उस समय यशवंत और उनके छोटे भाई राघोजी ने अपना पराक्रम दांव पर लगाया था। लेकिन बाजीराव द्वितीय, पेशवा, भाग गए और अंग्रेजों से मित्रता कर ली और तैनाती सेना का स्वीकार कर लिया था। इसलिए पीढ़ीयों से पुरंदर किले की रखवाली करने वाले रामोशा को किले को गिराने का आदेश दिया गया। इस समय पेशवा काल में अराजकता और अन्यायपूर्ण अत्याचारों के कारण यशवंत साल्वे रामोशी समुदाय के करीब हो गए और सत्तू नाईक की टीम में कार्य किया। इस डकैती को अंजाम देते

समय, उनकी नीति अत्याचार कर रहे साहूकारों को सबक सिखाने की थी, जो स्वराज्य के गरीब लोगों के साथ-साथ ग्राम व्यवस्था के कुछ मुजोर अधिकारियों को कोई नुकसान पहुँचाए बिना स्वराज्य के आम लोगों को परेशान कर रहे थे।

चूँकि यशवंत साल्वे की नीति स्वराज्य के हित में थी, लहूजी साल्वे ने बाद में अपने चचेरे भाई के उदाहरण का अनुसरण करके रामोशी समुदाय की मदद की। उमाजी नाईक को प्रशिक्षित सेना द्वारा स्वराज्य बहाल करने के लिए समर्थन दिया गया था। लेकिन इस १८२५ में सत्तू नाईक की मृत्यु के बाद यशवंत साल्वे की तबीयत बिगड़ने लगी। इसलिए वे अपने भतीजे लहुजी साल्वे के साथ पुना (गंजपेठ) में रहते थे। उनकी मौत १८३२ के आसपास हुई थी।[५]

२.२.३ राघोजी साल्वे (१७६९ से १८१७)

राघोजी साल्वे यशवंत के छोटे भाई थे। और पेशवा काल के उत्तरार्ध में बाजीराव द्वितीय के शासनकाल में एक शक्तिशाली और बहादुर योद्धा के रूप में प्रमुखता से कार्य किया था। सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में उनके पास विशेष कौशल था। इसी तरह पेट के बल दीवार पर चढ़ने की कला से वे वाकिफ थे।[६] इसलिए राघोजी साल्वे अपनी पत्नी विठाबाई और बच्चों के साथ पुरंदर की तलहटी में अपने पैतृक गांव पेठ में कार्य करके जीविकोपार्जन करते थे। इसी तरह युवाओं को हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया गया था।

इस समय पुरंदर क्षेत्र में १८०६ ई. में, एक क्रूर बाघ ने किसानों के जानवरों को मारने का परिपाट किया। वहीं बाघ पुरंदर के जंगल में राघोजी साल्वे तक भी पहुंच गया। इस बार राघोजी ने बड़े साहस के साथ बाघ का विरोध करने की कोशिश की। क्योंकि राघोजी जंगली जानवरों के बारे में बहुत शक्तिशाली, साहसी और जानकार व्यक्ति थे। उसने अपने हाथ में एक चीप या टिपरू की मदद से बाघ का विरोध किया, उसने बाघ के घुटनों और पंजों को कुचल दिया, जिससे बाघ को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसके बाद वे बाघ चूमकर, अपने कंधों पर यह बाघा गांव में लेकर गए। खबर जंगल की आग की तरह फैल गई कि राघोजी साल्वे ने एक जीवित बाघ को पकड़ लिया और उसे गांव ले आए। उस समय पुना के पेशवाओं ने राघोजी को एक जीवित बाघ के साथ पुना आमंत्रित किया और उनका सम्मान किया।[७]

राघोजी साल्वे की बहादुरी, परिश्रम और जंगली जानवरों के बारे में ज्ञान को देखकर बाजीराव द्वितीय ने उन्हें १८०६ में पुना में शिकार की जिम्मेदारी दी गई। उस समय पेशवाओं ने पहाड़ की तलहटी में शिकारगाह बनवाया था। इसमें भालू, गैंडे, बाघ, तेंदुआ, मृग, सांभर आदि जानवर रखे जाते थे।[८] इसलिए उसने अपना ध्यान पूरे समय पेशवा के शस्त्रागार की ओर लगाया। उन्होंने सेना निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य भी किया था।

२.३ लहूजी साल्वे का जन्म और बचपन

लहूजी साल्वे का जन्म १४ नवंबर, १७९४ को पुरंदर किले की तलहटी में स्थित पेठ इस गांव में अछूत समझी जानेवाली मांग जाति में हुआ था। उनके पिता का नाम राघोजी था और उनकी माता का नाम विठाबाई था। (गयाबाई यह मयके का नाम था और सुपे, जिला पुना उनका मयके था।)उस समय हमारे पूर्वजों के नाम पर बच्चों के नामकरण की प्रथा थी। तदनुसार, राघोजी ने अपने पुत्र का नाम अपने दादा थोरले लहुजी के नाम पर रखा। (लहूजी साल्वे परिवार में तीसरा नाम है।) लहुजी के जन्म के बाद राघोजी साल्वे के १७९७ में एक पुत्र का जन्म हुआ। लेकिन तीन साल की उम्र में एक संक्रामक बीमारी से उनकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उन्हें राधाबाई (१८००), चांगुणाबाई (१८०३), राहीबाई (१८०५) और शिवाजी नामक एक पुत्र १८११ के आसपास हुआ था। राघोजी साल्वे के ऐसे बच्चे थे।[९]

लहुजी की तेज बुद्धि को देखकर राघोजी ने बचपन से ही उन पर विशेष ध्यान दिया। लेकिन यह पेशवा का समय था। और गैर-ब्राह्मणों को शिक्षा का अधिकार नहीं था क्योंकि जाति बहुत कठोर हो गई थी। अछूतों को जातिवाद का खामियाजा कदम दर कदम भुगतना पड़ा था। पेशवा काल में जाति का रंध्र व्याप्त था। इस काल में महार, मांग, चम्बर, ढेड आदि अछूत जातियों को रस्ते पर थूकने भी नहीं दिया जाता था। उन्हें कमर में घड़ा बांधकर घूमना चाहिए, रस्ते पर किसी ब्राह्मण से मिलें तो तुरंत नीचे बैठ जाते थे। क्योंकि हमारी परछाई उस पर नहीं पड़नी चाहिए। अछूतों की ऐसी दयनीय स्थिति थी। हालांकि राघोजी साल्वे सेना में सेवारत थे और उनकी बहादुरी के कारण, बाकी अछूतों की स्थिति बहुतही खराब थी, भले ही उन्हें व्यवस्था पसंद नहीं थी। इसलिए राघोजी भी पेशवा काल में जाति से बहुत नाराज थे। लेकिन उनके पास निर्वाह का कोई साधन नहीं था, इसलिए उन्होंने

अपने परिवार की जिम्मेदारी स्वीकार कर ली और शिवराय के स्वराज्य की रक्षा करने का कार्य जारी रखा।

राघोजी साल्वे और दादाजी नाईक (उमाजी नाईक के पिता) दोनों पुरंदर के पहरेदार थे और दोनों का एक ही गाँव था इसलिए उनके बीच घनिष्ठ संबंध थे। परिणामस्वरूप, लहुजी साल्वे और उमाजी नाईक (१७९४ से १८१० ई.) का बचपन कुछ समय साथ-साथ चला।[१०] इसलिए रामोशी समुदाय में अकाल का समय था। तभी रामोशी जाति के कुछ युवकों ने पेशवा की नौकरी से इस्तीफा देकर लूटपाट शुरू किया। इनमें से कई लुटेरों ने अमीरों, साहूकारों को लूटने और गरीबों को अनाज बांटने का बड़ा कार्य किया। क्योंकि उनकी लड़ाई पेशवा के अन्याय और दमन के खिलाफ थी। लेकिन राघोजी साल्वे और लहुजी को रामोशी समाज में लूट की बात स्विकार नहीं थी। उन्हें इस बात का दुख था कि पेशवा के अन्याय, अत्याचार और अस्वीकृति के कारण रामोशी समुदाय को लूटने का समय आ गया था।

इसप्रकार की स्थिती में राघोजी ने बचपन से ही अपने घर के आंगण में लहुजी को धनुर्विद्या, मल्लखंभ और दांडपट्टा की शिक्षा दी। उन्होंने किलों की दीवारों पर चढ़ने, तैरने और गनीमिकावा या छुपेहल्ले की कला में भी महारत हासिल की थी। क्योंकि राघोजी को इस कला में महारत हासिल थी। परिणामस्वरूप, लहूजी हथियारों में कुशल हो गए क्योंकि उन्हें ढाल, तलवारें, हाथों में क्लब के साथ-साथ तलवारबाजी, चालाखी और लचीलेपन का प्रशिक्षण मिलने के बाद लहुजी शस्त्रविद्या में पारंगत हुए थे। सुबह उठकर तालीम करना और जोर-जोर से उठ-बैठ करना यह उनकी दिनचर्या थी। जब लहुजी दस वर्ष के थे तब राघोजी उन्हें किले में लेकर जाया करते थे। एक दिन लहुजी के जिद्दी स्वभाव के कारण राघोजी ने लहुजी के लिए काशीनाथ लोहारा से एक छोटा दाण्डपट्टा, एक छोटी तलवार और एक ढाल बनवायी थी। लहूजी कम उम्र में ही राघोजी के साथ दाण्डपट्टा और कमर में तलवार पहन कर जाया करते थे। राघोजी एक बार सरकारी काम के सिलसिले में थेऊर गए थे। इस समय रघुजी के साथ लहुजी भी सामिल थे। इस समय अरब के घोड़े के व्यापारी थेऊर के शिविर में आए थे। जब राघोजी भण्डारियों के साथ काम में लगे हुए थे, लहूजी राघोजी की दृष्टि खो बैठे और व्यापारियों के घोड़े के पास आ गए। इस समय पेशवा सरदारों की नजर लहुजी पर पड़ी। उस छोटेसे सिपाही को देखकर वे हैरान रह गए। उन्होंने लहुजी

से पूछा, 'क्या आप सिर्फ एक दाण्डपट्टा के साथ घूमते हैं या आप इसे घुमा सकते हैं?' तब लहुजी ने दाण्डपट्टा घुमाकर सभी को आश्चर्यचकीत किया और सरदारों की उन्हें शाबासकी मिली।

बचपन में लहुजी अपने साथियों के साथ घूमते थे। सेना जहां भी डेरा डालती, गांव के लड़के इकट्ठे हो जाते। एक दिन जंगल में, लहूजी ने सदा नाम के एक चरवाहे की गाय के बछड़े को उठाया। चरवाहा हमेशा यह कहानी गांव के लोगों को सुनाता था। उस समय पेठ गांव के लोग लहुजी के बल पर चकित थे। लहूजी ने बचपन में ऐसी कई घटनाएं घटी थीं। छोटी सी उम्र में कुश्ती में उनकी अपार शक्ति और चंचलता की कहानियाँ उस समय गाँवों और प्रांतों में व्याप्त थे। जैसे कंधे पर पूरे बैल के साथ नृत्य करना, जेजुरी के खंडोबा का एक मन का खंडा झूलना, जल्दबाजी में एक किले पर चढ़ना, जैसे ही कुश्ती में उनकी अभूतपूर्व जीत की कहानियां सुनाई गई, युवा ईर्ष्यालु हो गए और कुश्ती की लड़ाई के लिए प्रेरित हुए थे। आज भी बुजुर्ग पहलवानों से लहुजी की वीरता के किस्से सुने जा सकते हैं।

२.४ लहूजी साल्वे की मल्लविद्या

राघोजी साल्वे ने बचपन से ही लहुजी को मल्लविद्या के पाठ पढ़ाया था। उसके बाद लहुजी को पुरंदर के तालीम के लिए भेजा गया था। इस तालीम में लहूजी ने काफी सराव और मेहनत की थी। तालिम में सामील बच्चे सराव के दौरान बहुत थक हुए महसूस करते थे। कई पहलवान लहुजी की विशाल शक्ति के सामने लड़ने से बचते थे। इस दौरान मेले के अवसर पर पुना, जुन्नार, अहमदनगर और सातारा में मल्लविद्या प्रतियोगिताए होती थी। इन मुकाबलों में लहूजी ने चार मशहूर पहलवानों को हराकर इनाम जीते थे। कुश्ती के अखाड़े में तो कई बार बिनाजोड़ मैच के तौर पर बिदागी मिलती थी।[१२] इससे कई मशहूर पहलवानों ने लहुजी को मात दी थी.

फलटन में जंगी कुश्ती का मैच १८१६ ई. में भराया गया था। इस मैच के लिए पंजाब से सात फुट लंबा प्रसिद्ध पठान नाम का पहलवान आया था। उनकी शरीर की बुनावट बेहद मजबूत थी। फलटन के अखाड़े में इस बार इस पहलवान का सामना महाराष्ट्र के मशहूर पहलवान कलसू माने से होगा। वह भविष्यवाणी थी। लेकिन पैर में गांठ के कारण कलसू माने कुश्ती के मैदान में प्रवेश नहीं कर पाए। इस मौके पर लहूजी साल्वे ने पठानी पहलवान की अपील स्वीकार कर ली। इस मुष्ठी युद्ध में पठान को चार सर चित कर

दिया। इस कुश्ती की मैच में, लहुजी को फलटन के महाराजा से पुरस्कार के रूप में एक स्वर्ण पदक और ग्यारह शिक्के मिले थे।[१३] वे पुना, जुन्नार, सातारा, फलटन, अहमदनगर से नहीं जुड़े थे। कुश्ती में निपुण लहुजी अपनी मेहनत से जीत के शिखर पर पहुंचे थे। उनकी कुश्ती, वीरता, जीत और पुरूषत्व पहलवान की कहानियां सुनकर राघोजी और विठाबाई सहित सभी खुश हो गए थे।

पेशवा काल के बाद, लहूजी ने पुना के गंजपेठ में एक प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना की। और इस प्रशिक्षण से हजारों पहलवानों का निर्माण किया। इसी प्रकार पुना, जेजुरी, अहमदनगर और सातारा क्षेत्रों में उन्होंने अपने शिष्यों के साथ प्रशिक्षण शिविर स्थापित किए। और युवाओं को कुश्ती का पाठ पढ़ाया था। पुना के गंजपेठ में उन्होंने जो तालीम स्थापित किया। वह आज भी मौजूद है और लहुजी साल्वे की विरासत मुक्ता साल्वे के पड पोता जाधव परिवार के किशन निवृति जाधव द्वारा संचालित थे।

२.५ पेशवा की सेना में नौकरी

राघोजी साल्वे पुना में पेशवाओं के शिकारखाना के मैदान और शस्त्रागार के लिए जिम्मेदार थे। इसलिए लहूजी बचपन से ही पुना आते थे। इस बार राघोजी लहुजी को घोड़े की सवारी करने का मौका दिया गया। लहुजी घुड़सवारी में भी कुशल हो गए थे। लहुजी को अरब के घोड़ों से भीमथडी तट से मिलवाया गया था। लहुजी अक्सर उग्र जानवरों को भी वह काबु में लाते थे। जब शिविर के मुखिया और सैनिक सराव कर रहे थे, तब सैनिकों ने लहूजी से एक प्रदर्शन के दौरान एक तलवार और एक दाण्डपट्टा चलाने के लिए कहा था। अपनी चालाखी से तूफानी सवारी और दुश्मन के खिलाफ आक्रामकता के कारण, पेशवा सैनिकों ने राघोजी को अपनी सेना में लहूजी को रखने के लिए कहा था।[१४]

राघोजी साल्वे ने लहूजी को सेना में नौकरी दिलाने का प्रस्ताव पेशवा के सामने रखा था। उस समय जनाई के खेत से बड़ी संख्या में तस्करी का माल पुना आ रहा था। पेशवाओं ने इसे नियंत्रित करने के लिए लहुजी के कर्तव्य को देखते हुए रामोशी गेट पर नाकेदार के काम पर लगा दिए था। १८११ में उनकी नियुक्त की गई थी।[१५] लेकिन यह नौकरी लहूजी ने अपने पिता की इच्छा के कारण स्वीकार की थी। इसलिए वह इस नौकरी से खुश नहीं था, वह संतुष्ट नहीं था। क्योंकि इस दौरान पुना में जातिवाद बढ़ गया था। पेशवा में अछूत समुदाय की स्थिति बहुत खराब थी। अन्याय, अत्याचार अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच

गया था। उन्हें ऐसा जीवन जीना था जो मानवता को शर्मसार करें। गाँव-गाँव में अछूत समुदाय के साथ अन्याय की घटनाएँ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थीं। अछूत समुदाय की पशु स्थिति को देखकर लहूजी को इस उम्र में अपने भाइयों पर दया आने लगी।

बाजीराव पेशवा के शासनकाल में, अछूतों को बहुत अन्याय और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा था। वे गांव से नहीं चल सकते थे। क्योंकि अन्य निम्न और अछूत जातियों का मानना था कि केवल ब्राह्मण ही समृद्ध जीवन जीने के हकदार थे। क्योंकि ब्राह्मण दूसरों का तिरस्कार करते थे। इतना ही नहीं, इस अवधि के दौरान पेशवाओं का अछूतों के खाने, पीने और कपड़ों पर नियंत्रण था। इतना ही नहीं यदि कोई नया ढाँचा बनाना होता तो एक अछूत व्यक्ति को भवन की तलहटी में शेंदूर लगाकर दफ़न किया जाता था।[१६] लहूजी साल्वे ने पेशवाओं द्वारा अछूतों के अपमानजनक कृत्यों को देखा था। हमारे अछूत भाइयों की दुर्दशा को देखकर पेशवा के अत्याचारों के प्रति आक्रोश की भावना को जगाने में मदद मिली। क्योंकि इस पेशवा में जाति और उच्च वर्गीय अस्पृश्यता के कारण मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीने की स्वतंत्रता नहीं थी। लोग बाजीराव द्वितीय के अन्याय और दमन से तंग आ चुके थे। क्योंकि बाजीराव के समय में भारतीय महिलाएं शूद्रों और अतिशूद्रों की तरह सुरक्षित नहीं थीं। इसलिए यह महसूस करते हुए कि पेशवा सेना में सेवा करते हुए, लहूजी साल्वे ने अपनी वीरता और हथियारों का उपयोग करके शिवशाही को ई. १८१४ के आसपास फिर से स्थापित किया था।

२.६ लहूजी की शादी की तैयारी और माँ की मृत्यु

जब राघोजी साल्वे लहुजी साल्वे के साथ पेशवा सेना में सेवारत थे, उनकी पत्नी विठाबाई और उनके बच्चे पुरंदर की तलहटी में अपने पैतृक गांव पेठ में रह रहे थे।[१७] राघोजी और लहुजी का अपने परिवार के साथ जान-आना था। मल्लविद्या में लहूजी के कौशल ने उनका नाम स्थानीय लोंगों सहित सगे-संबंधीयों तक पहुंच गया था। जैसे ही लहुजी ने २१ साल की उम्र की शुरूआत की, वैसे ही राघोजी और विठाबाई शादी करने की जल्दी में थे। इस काल में, बाल विवाह कम उम्र में किए जा रहे थे। लेकिन साल्वे परिवार में बाल विवाह नहीं हुए था। विवाह जल्दबाजी में नहीं किया गया क्योंकि यह मजबूत पुरूषों को कमजोर कर देता था। यही कारण है कि राघोजी ने बचपन में लहुजी की शादी नहीं की थी। इसलिए लहूजी ने ब्रह्मचारी रहते हुए अपना शरीर और शस्त्र अर्जित कर लिया

था। लेकिन फलटन में कुश्ती के मैदान में लहुजी के प्रदर्शन को देखकर, मंगलवेढा के सावला जाधव ने अपनी बेटी मुक्ता की शादी लहुजी के साथ करने का विचार रखा और कुलकर्णी पंत को इसके बारे में बताया था। इस समय पुना पहुंचने के बाद कुलकर्णी पंत पेशवा के डेरे में गए और राघोजी से मिले और लहुजी से शादी करने के बारे में सोचा। उन्होंने मंगल की छाया जाधव को भी आमंत्रित किया। इस छाया जाधव को पांच गांवों का मानसन्मान प्राप्त था। इसलिए पेठ जाने के बाद राघोजी और विठाबाई ने मंगलवेढा को जाकर सावला जाधव की बेटी को देखने का फैसला किया। हालांकि, सितंबर १८१७ में पुना में युद्ध के कारण सासवडकर के ससुर सुल्या नाईक पुना से पेशवा सरकार लेकर आए थे। उस खालिता में राघोजी सहित कई सन्माननीय व्यक्तियों के नाम थे। इसलिए राघोजी तुरंत पुना के लिए रवाना हो गए थे।

वह पुना के एडम्स गार्डन में लहुजी से मिले और अपने परिवार से पूछताछ के बाद उन्हें लहुजी से पता चला कि शिविर में भीड़भाड़ है। इसलिए राघोजी ने लहुजी के विवाह के निर्णय में बदल दिया। क्योंकि उन्हें लगा कि उनके देश में संकट लहूजी की शादी से ज्यादा महत्वपूर्ण था।[१८] उन्होंने सेना को लामबंद करना शुरू कर दिया। लेकिन देर रात, सासवडकर का एक घुड़सवार शिविर में घुस गया। वह खबर लाया कि विठाबाई बीमार थी। यह खबर सुनकर लहूजी परेशान हो गए। सुबह होते ही राघोजी ने अपने वरिष्ठों की अनुमति ली और लहुजी के साथ पुरंदर के लिए रवाना हो गए। दोपहर में जैसे ही वह पेठ पहुंची, विठाबाई अंतिम सांसें ले रही थीं। लहुजी की आंखों में आंसू देखकर वह अक्टूबर १८१७ के आसपास इस दुनिया से चली गई। विठाबाई का अंतिम संस्कार दुखद माहौल में संपन्न हुआ। अगले दिन पेशवा का खलिता पुना से आया था। उस खालिता में राघोजी और लहुजी सहित कई सन्माननीय व्यक्तियों के नाम थे।[१९] जोखिम भरे लोगों को तत्काल शिविर लगाने का आदेश दिया गया। इस समय राघोजी ने लहुजी को अपनी बहन और भाई की देखभाल करने के लिए कहा और वह अपने कारवारी घोड़े पर पुना आए थे। इस समय राघोजी का सबसे छोटा पुत्र शिवाजी केवल छह वर्ष का था। लहूजी अपनी माँ के चले जाने से व्यथित थे। स्वराज्य पर संकट को देखते हुए उन्होंने परिवार की जिम्मेदारी अपनी बहन राधाबाई को सौंप दी और वह भी पुना चली गई थी।

२.७ खडकी की लड़ाई और राघोजी का बलिदान (१८१७):

महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन स्थापित करने के उद्देश्य से १८१७ ई. में खड़की की लड़ाई ब्रिटिश सरकार के लिए एक महत्वपूर्ण घटना है। क्योंकि खड़की की जीत ने सही मायने में महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की स्थापना की। रेजिडेंट ऑफिसर एलफिलस्टन इस समय पुना के प्रभारी थे। पेशवाओं के सेनापति बापू गोखले यह थे। एंग्लो-मराठा युद्ध के बाद, शिंदे और होल्कर ने पेंढारीयों को ब्रिटिश क्षेत्र को लूटने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप, अंग्रेजों द्वारा कई गांवों को लूट लिया गया। तब अंग्रेजों ने पेंढारीयों का बंदोबस्त करने के लिए लिए पेशवाओं और मराठा सरदारों की मदद मांगी। लेकिन लगभग सभी मराठी सरदारों ने भूसे के प्रति सहानुभूति रखते हुए इसे खारिज कर दिया।[२०] इससे पेशवा और अंग्रेजों के बीच दरार पैदा हो गया था। इसमें बाजीराव ने त्र्यंबक डेंगले को अंग्रेजों की कैद से मुक्त कराया। बार-बार की मांग के बावजूद, बाजीराव ने अंग्रेजों की मांगों को खारिज कर दिया। आखिरकार, अंग्रेजों की मांगों से तंग आकर बाजीराव पेशवा ने बापू गोखले का हाथ थाम लिया और अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने की तैयारी करने लगे।

अंग्रेजों द्वारा पेशवा साम्राज्य को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। इसलिए, यदि अंग्रेजों ने आक्रमण किया, तो बाजीराव द्वितीय ने उनका विरोध करने के लिए सेना जुटाई थी।[२१] किले और आरमार के युद्ध के लिए तैयार किए था। उस समय हजारों हथियार पेशवा के शस्त्रागार में पड़े थे। राघोजी साल्वे ने हथियारों की मरम्मत का काम किया ताकि उनका इस्तेमाल किया जा सके। अक्टूबर १८१७ में, पेशवा सेना पुना में इकट्ठा होने लगी। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर डेरा डालकर अंग्रेजों को घेरने की कोशिश की थी।,एलफिन्स्टन ने अपनी सेना को चट्टान के करीब लाया था। एक अन्य बाजीराव पेशवा और जनरल बापू गोखले ने राघोजी साल्वे को पुना, अहमदनगर, पुरंदर और सातारा में सेना जुटाने का आदेश दिया था। तदनुसार राघोजी ने महादेव कोली, भील और अछूत जाति के सैनिकों को एकजुट करने का काम किया। लगभग चालीस हजार पेशवा सेना पुना में इकट्ठी हुई। पुना के आदम बाग में सेना के शिविर का आकार बढ़ रहा था। राघोजी साल्वे ने अकेले लगभग दो हजार सैनिकों को इकट्ठा किया।[२२] अक्टूबर, १८१७ के मध्य में, ब्रिटिश सेना आई थी और पुना के पास खड़की में रूक गई थी। अक्टूबर १८१७ के अंतिम सप्ताह में पेशवा सेना ने ब्रिटिश सेना को घेर लिया। १५ नवंबर १८१७ को युद्ध छिड़ने के बाद, बाजीराव पेशवा

ने शनिवारवाड़ा से अपने निवास स्थान पार्वती को स्थानांतरित कर दिया। उनकी सुरक्षा के लिए इस समय दो हजार जवानों को तैनात किया गया था।

जब खड़की में युद्ध चल रहा था, बाजीराव द्वितीय दूरबीन से पहाड़ से युद्ध देख रहे थे।[२३] प्रारंभ में पेशवा घुड़सवार सेना को सफलता मिल रही थी। पैदल सेना के तटरक्षक बल से लड़ते हुए, ब्रिटिश सैनिक थक गए थे और कुछ युद्ध के मैदान से भाग रहे थे। पेशवा सैनिकों के आक्रामक हमले को देखकर ब्रिटिश सैनिक मुंबई की ओर पीछे हटने लगे। ब्रिटिश सेना हार के साये में थी। इस समय पुना के रहने वाले एलफिल्स्टन मुला-मुठा नदी के संगम के पास एक बंगले में रह रहे थे। लहुजी के साथ रामोशी सैनिकों ने उनके बंगलों में आग लगा दी। कई अंग्रेज सैनिक विस्थापित हुए। लेकिन अगले दिन पेशवा सेना टूट गई। फिर बापू गोखले के आदेश पर राघोजी साल्वे चतुश्रृंगी की पहाड़ी से चट्टानी पठार पर उतरे थे। उस समय बापू गोखले ने चर्च के बगल में मुला नदी पार की थी। पेशवा सेना को लग रहा था कि अंग्रेज हार जाएंगे। लेकिन साथ ही, ठाणे से अंग्रेजों द्वारा बुलाए गए और भी सैनिक आ गए। उन्होंने पेशवा सैनिकों पर फायरिंग शुरू कर दी। इस हमले के कारण पेशवाओं की सेना गिर रही थी। घोडों सहित योद्धा तोप की आग से घायल हो गए थे और अंग्रेजों से लड़ते हुए लड़ते-लड़ते मर रहे थे। जैसे ही सैनिक जमीन पर गिरे, राघोजी साल्वे घृणा से लड़ रहे थे, उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सैनिकों ने उनके सिर को अपनी तलवारों से पीट रहे हैं और उन पर नाच रहे हैं। दाण्डपट्टा की मदद से अंग्रेजी सेना का विरोध कर रहे थे। जब ब्रिटिश सैनिकों ने राघोजी को दाण्डपट्टा बार-बार घुमाते देखा तो उन पर गोलियों की बौछार कर दी। राघोजी ने बड़े साहस के साथ अंत तक अंग्रेजों से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी।[२४]

अंग्रेजों के अत्याधुनिक हथियारों के कारण हजारों पेशवा सैनिक मारे जा रहे थे, यह देखकर पेशवा सेनापति बापू गोखले ने आत्मसमर्पण कर दिया। यह जानकर कि उसकी सेना हार गई है, बाजीराव द्वितीय पहाड़ से भाग गया। राघोजी की मृत्यु से लहुजी को बहुत पीड़ा हुई। जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ, उसने अपने पिता को दफना दिया। राघोजी की मृत्यु से लहुजी पर सदमा पहुंचा था। क्योंकि इस युद्ध में राघोजी और लहूजी पिता-पुत्र छत्रपति के स्वराज्य की रक्षा के लिए लड़ रहे थे। इसीलिए राघोजी ने रामोशी, आदिवासी और अछूत जातियों के हजारों सैनिकों को इकट्ठा किया। पेशवाओं की अनिच्छा और उनकी

पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण राघोजी सहित हजारों रामोशी, आदिवासी और अछूत इस लड़ाई में अपनी जान गंवा बैठे। तो लहूजी ने अपने पिता के खून में एक पत्थर भिगोया और कसम खाई, 'यह तब तक सुरक्षित नहीं होगा जब तक इस देश से ब्रिटिश शासन समाप्त नहीं हो जाता।'[२५] राघोजी साल्वे की समाधि मुंबई-पुना हाईवे पर वाकदेवाड़ी के पास स्थित है और इसे मंगीर बाबा समाधि के नाम से जाना जाता है।

२.८ स्वराज्य की बहाली की प्रतिज्ञा

शिवाजी महाराज ने स्वराज्य की स्थापना और सांप्रदायिक सद्भाव बनाने के लिए कड़ी मेहनत की थी। स्वराज्य में सभी जातियों और जनजातियों के मावलों को उनके कर्तव्यों के अनुसार सन्मानीत पद और सम्मान दिया था। उन्होंने स्वराज्य में अपनी प्रजा का ध्यान रखा था। इसलिए, सभी जातियों और धर्मो के लोग सद्भाव में रह रहे थे। लेकिन इसी स्वराज्य में पेशवाओं ने जातिवाद और असमानता की स्थापना की। विदेशी सत्ता के शासन को स्वीकार कर पेशवा बाजीराव द्वितीय ने १८०२ में ब्रिटिश तैनाती बल को स्वीकार कर लिया था। बाजीराव का यह कृत्य स्वराज्य के लोगों को स्वीकार्य नहीं था। इसलिए इस समय में पेशवा ने सैनिकों की तैनाती स्वीकार कर ली और सेना की भर्ती रोक दी। गई। इसलिए समय था भूख मिटाने और रामोशी जाति जैसी अनेक जातियों को लूटने का। इन सभी स्थितियों के लिए पेशवा जिम्मेदार था।

जब लहूजी साल्वे पेशवा सेना में सेवारत थे, बाजीराव द्वितीय पेशवा की अक्षमता, उनकी पथभ्रष्ट नीति, जातिवादी मानसिकता, अन्याय और अत्याचारों से असंतुष्ट थे। सेना में सेवा करते हुए उन्हें यह अनुभव हुआ था। बाजीराव पेशवा खड़की की लड़ाई का नेतृत्व किए बिना पहाड़ों से युद्ध की खबर ले रहे थे। साथ ही, युद्ध में पराजित होने के बाद, वह दुश्मन का सामना किए बिना पहाड़ से भाग गया। इसलिए, बाजीराव पेशवा की अनिच्छा और अनुचित नेतृत्व के कारण अंग्रेजों ने खड़की की लड़ाई जीत ली थी। इस युद्ध में स्वराज्य की रक्षा के लिए अनेक वीर सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। लेकिन स्वराज्य की हार इसे रोक नहीं पाई।

खड़की की लड़ाई में पेशवा की हार हुई और १८१८ ई. में महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई। लहूजी साल्वे बहुत पीड़ित थे। क्योंकि इस लड़ाई में लहूजी साल्वे अपने पिता की तरह ही ताकतवर थे। लेकिन वह अपने पिता और स्वराज्य को अंग्रेजों से नहीं

बचा सके। खड़की की जीत के बाद, अंग्रेजों ने शनिवारवाड़ा पर भगवा झंडा फहराया और यूनियन जैक फहराया। इस युद्ध में उनके पिता राघोजी साल्वे अंत तक लड़ते रहे और मौत तक लड़ते रहे।[२७] उन्हें अंग्रेजों ने पीट-पीट कर मार डाला। इससे लहूजी साल्वे को बहुत पीड़ा हुई। उनके पिता की मृत्यु ब्रिटिश शासन के कारण हुई थी। अंग्रेज विदेशी हैं और एक विदेशी देश को दूसरे देश पर शासन करने, वहां उपनिवेश स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए वे इस देश में ब्रिटिश सत्ता के विनाश के लिए लड़ने के लिए तैयार हो गए थे।

लहूजी साल्वे ने इस देश में विदेशी शासन को स्वीकार नहीं किया। इसी तरह, पेशवा में अधर्म, असमानता, जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता स्वीकार्य नहीं था। इस देश में सभी को एक इंसान के रूप में जीने का समान अधिकार है। इसके लिए उन्होंने जीवन भर ब्रह्मचारी रहने का फैसला किया। खड़की के युद्ध से पहले ही राघोजी और विठाबाई ने अपने पुत्र लहूजी के विवाह की तैयारी कर ली थी। लेकिन स्वराज्य पर संकट के कारण, पिता और पुत्र दोनों ने अपने बेटे की शादी को छोड़कर युद्ध में भाग लिया। वह केवल स्वराज्य की रक्षा के लिए वहां मौजूद थे। राघोजी अपनी पत्नी विठाबाई की बीमारी के लिए समय नहीं दे सके क्योंकि उनके पास सेना जुटाने का काम था। उसमें उनकी मौत हो गई थी। राघोजी ने खड़की की लड़ाई में अंग्रेजों से लड़ते हुए खुद को बलिदान कर दिया। इसलिए, अपने पिता के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, स्वराज्य की बहाली के लिए, अपने पिता की समाधि के पास, ई. १८१७ में, उन्होंने प्रतिज्ञा की, 'यदि आप जीवित हैं, तो आप देश के लिए मरेंगे, यदि आप मरेंगे, तो आप देश के लिए मरेंगे।'[२८] इसलिए यह घटना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पहली चिंगारी बनी।

२.९ कोरेगांव भीमा में युद्ध और लहुजी साल्वे की भूमिका

महाराष्ट्र में बाजीराव द्वितीय की अक्षमता, उचित नेतृत्व की कमी, योजना की कमी, सैना की अनियुक्त भर्ती, जातिवादी मानसिकता और पलायनवादी प्रवृत्ति पेशवा शासन के अस्त के कारण थे। इसीलिए शिवाजी महाराज के स्वराज्य में विदेशी शासन की शुरूआत हुई। लहुजी यह अमल नहीं चाहते था। क्योंकि खड़की की लड़ाई में जीत के बाद अंग्रेजों ने पूरे पुना शहर पर कब्जा कर लिया था। १७ नवंबर, १८१७ को शनिवारवाड़ा में भगवा झंडा फहराया गया और वहां ईस्ट इंडिया कंपनी का यूनियन जैक फहराया गया। इस घटना

से लहूजी साल्वे को गहरा दुख हुआ। क्योंकि लहुजी की भी यही भावना थी कि हम शिवछत्रपति के राज्य के सैनिक हैं। इसलिए राघोजी और लहुजी, पिता और पुत्र, खड़की की लड़ाई में शामिल हुए थे।[२९] लेकिन इस घटना के बाद पेशवा शासन में अन्याय व अत्याचार से कनिष्ठ और अछूत जाति की हुई मुक्तता से लहुजी साल्वे को समाधान लगा था।

पेशवा में अछूतों को चीटियों की तरह रहना पड़ता था। इस अन्याय और अत्याचार का अनुभव स्वयं लहूजी साल्वे ने किया था। लेकिन मुंबई क्षेत्र में अंग्रेजों ने अछूतों को भर्ती का मौका देकर समानता की धारा में लाने का काम किया था। वे उनके साथ मानवीय व्यवहार कर रहे थे। इसीलिए ब्रिटिश सेना में ज्यादातर पुना, अहमदनगर, सातारा के अछूत सैनिक शामिल थे। खड़की के युद्ध में पेशवा के दोनों ओर के अछूत सैनिक और अंग्रेज मारे गए। साथ ही युद्ध के दौरान अंग्रेजों ने एक घोषणापत्र जारी किया था। उस घोषणापत्र में अंग्रेजों ने कहा था, 'हमारा युद्ध बाजीराव से है। हम छत्रपति का शासन बनाए रखना चाहते हैं।' इसलिए लोग पहले से ही बाजीराव के मूर्ख प्रशासन से तंग आ चुके थे। लोगों की आम धारणा थी।[३०] कि छत्रपति शिवाजी महाराज आ रहे थे। इसे ध्यान में रखते हुए, लहूजी साल्वे ने खड़की की लड़ाई के बाद अपनी नौकरी छोड़ दी और कोरेगांव भीमा की लड़ाई में भाग लिए बिना युद्ध में मारे गए सैनिकों के रिश्तेदारों के पास जाकर पेशवा को आश्वस्त किया।

नवंबर १८१७ में खड़की की लड़ाई में बाजीराव द्वितीय की हार के बाद, पेशवा सेना कोरेगांव भीमा में रूक गई। इस समय पेशवाओं के पास लगभग पच्चीस हजार सैनिक थे। पेशवाओं ने अंग्रेजों को हराने के लिए शिंदे, होल्कर और भोसले की मदद मांगी, लेकिन उन्हें वह मदद नहीं मिली जिसके वे हकदार थे। उसी समय एक अंग्रेज अधिकारी कैप्टन स्टॉटन पांच सौ पैदल सेना, दो तोपों और दो सौ घुड़सवारों के साथ भीमा कोरेगांव पहुंचे। इस लड़ाई में ब्रिटिश 'बॉम्बे नेटिव इन्फैंट्री' महार बटालियन के केवल पांच सौ सैनिक ही पराजित हुए थे। १ जनवरी, १८१८ को पेशवा सेना की हार हुई। इस महार बटालियन में अछूत समुदाय की कई जातियों और जनजातियों के वीर योद्धा थे। इसे बाद में ३ जून, १८१८ को बाजीराव द्वितीय द्वारा अंग्रेजों द्वारा कब्जा कर लिया गया।[३१] और कानपुर के पास ब्रह्मवर्त भेजा गया और वास्तव में महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन स्थापित किया गया।

२.१० मृतक सैनिकों के परिजनों को सांत्वना और पुना में निवास

खड़की की लड़ाई के बाद लहूजी साल्वे सबसे पहले अपने परिवार से मिलने पेठ आए। रिश्तेदारों को राघोजी के बलिदान के बारे में बताया गया। इस समय साल्वे परिवार के साथ क्षेत्र में मातम छाया रहा था। उन्होंने अपने परिवार को इस संकट से बचाया। लेकिन राघोजी के बलिदान और पुरंदर, सिंहगढ़, शिवनेरी, रायगढ़ किलों की यादों ने उन्हें चैन नहीं आने दिया। उसके बाद लहुजी साल्वे ने पुरंदर, पेठ, औंध, सुपे, चिंचवाड़, चिखली, चाकन, आलंदी, देहू, वाघोली, लोनी, हडपसर, सासवड़, जेजुरी, बारामती, मोरगांव, भोर और मुलशी क्षेत्र के छोटेगांवों का दौरा किया।[३२] स्वराज्य की रक्षा के लिए राघोजी के नेतृत्व में हुए युद्ध में इस गांव के लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। युद्ध के बाद, लहूजी साल्वे ने गांव में घायल सैनिकों और मृत सैनिकों के रिश्तेदारों से मुलाकात की और उन्हें आश्वस्त किया और स्वराज्य की बहाली के लिए भूख और प्यास की स्थिति में पहाड़ों और घाटियों में घूमते हुए कुछ दिन बिताए। उसके बाद लहुजी साल्वे अपने गांव पेठ आ गए थे।

मृत सैनिकों के परिजनों को सांत्वना देने के बाद लहूजी साल्वे ने अपनी छोटी बहनों के विवाह की जिम्मेदारी ली। उन्होंने १८१८ ई. में राधाबाई, १८२० ई. में चांगुनाबाई और १८२२ ई. में राहीबाई की शादी अपने रिश्तेदारों के साथ करवां दी थी। लेकिन शादी के छह महीने बाद, राधाबाई के पति की मृत्यु हो गई, जिससे वह युवावस्था में ही विधवा हो गई थी। जैसे, सभी जिम्मेदारियों को पूरा करने के बाद, लहूजी साल्वे अपनी बहन राधाबाई और छोटेभाई शिवाजी के साथ फरवरी १८२२ के आसपास पुना चले गए। उन्होंने पुना के गंजपेठ को अपने निवास के रूप में चुना। ऐसा इसलिए है क्योंकि लहूजी साल्वे उसी इलाके में राघोजी के साथ रह रहे थे जब पेशवा सेना रामोशी गेट पर नाकाबंदी का काम कर रही थी। उस समय उन्होंने वहां एक झोपड़ी बनाई थी। वहीं, स्वराज्य की बहाली के लिए पुना सही जगह है और इस शहर का एक लंबा इतिहास रहा है।

लहुजी साल्वे के पुना में बसने के बाद, उन्होंने अपने परिवार का समर्थन करने के लिए वहां एक मजदूर के रूप में काम किया। राधाबाई अपने भाई के साथ रह रही थी क्योंकि उस समय विधवा पुनर्विवाह को समाज ने स्वीकार नहीं किया था। लहुजी ने परिवार के मुखिया के रूप में जिम्मेदारी संभाली थी। फिर १८२९ में उसने अपने छोटेभाई शिवाजी से

शादी कर ली। उन्होंने बिना विवाह किए ब्रह्मचर्य स्वीकार किया और राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वह जानता था कि ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने और स्वशासन को बहाल करने के सपने को पूरा करने के लिए मजबूत, शक्तिशाली युवकों की जरूरत है। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले बल पूजा पर ध्यान दिया। क्योंकि लहूजी साल्वे को बचपन से ही कुश्ती का शौक था और उन्होंने उस क्षेत्र में विशेष कौशल भी हासिल किया था। तदनुसार, उन्होंने पहला प्रशिक्षण स्थापित करने का निर्णय लिया। इसके लिए पुनवाडी के पूर्वी भाग में सामने का पत्थर हटा दिया गया और जगह को साफ कर दिया गया और अक्टूबर १८२२ में एक कुश्ती मैदान की स्थापना की गई।[३३]

लहुजी साल्वे कुश्ती में माहिर होने के कारण उनका शरीर मजबूत और सुडौल था। उन्होंने सभी के साथ अत्यंत शालीनता और विनम्रता से व्यवहार किया। वह भील, कातकरी और फसेपर्धी समुदायों की बोलियों से भी वाकिफ थे। वे एक बहुधार्मिक व्यक्ति थे। उनके देशभक्त व्यक्तित्व के कारण रामोशी, महार, मांग, व्हलर, चंबर, लोहार, कुनबी, माली, भील, महादेव कोली, मुस्लिम आदि के साथ-साथ उच्च जाति के युवाओं ने भी उनके प्रशिक्षण में कुश्ती का सहारा लिया। लहुजी इन युवाओं को राष्ट्रीय सेवा के साथ-साथ सामाजिक समानता का पाठ पढ़ाते थे।

सन्दर्भ :

१) जाधव किशन निवृति (लहूजी साल्वे के परपोते), गंजपेठ, पुना, सीधा साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४।

२) कित्ता।

३) कित्ता।

४) शाहसने मंजिरी (सं.), करनाला (त्रैमासिक), जनवरी २००८, पृ.३.

५) जाधव किशन सेवानिवृति, पूर्वोक्त,,।

६) मारवाडे नरेंद्र, क्रांतिसूर्य लहुजी साल्वे, लोक साहित्य प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०१०, पृ. ८.

७) तड़ाखे शंकर, क्रांतिपिता लहुजी वस्ताद, प्रतिमा प्रकाशन, पुना, तृतीयावृत्ति, २०१४, पृ. ३२.

८) विटेकर बनाम। बी., आद्यक्रांतिवीर गुरूवर्या लहुजी साल्वे, प्रबोधन प्रकाशन, नांदेड़, द्वितीय संस्करण, २००९, पृ. १५.
९) जाधव किशन सेवानिवृति, पूर्वोक्त,,।
१०) किट्टा।
११) क्षीरसागर नाना, वीर लहुजी वस्ताद, सेवा सागर संस्था, पुना, प्रथम संस्करण, १९९९, पृ. ५.
१२) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त, पृ. ३२.
१३) क्षीरसागर नाना, पूर्वोक्त, पृ. ८.
१४) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त, पृ. ३३.
१५) जाधव किशन की सेवानिवृति, पूर्वोक्त,,।
१६) ज्ञानोदय, दि. १५ फरवरी, १८५५ और दि. १ मार्च, १८५५.
१७) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त,,।
१८) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त, पृ. ३५.
१९) कित्ता, पृ. ३५.
२०) विटेकर बनाम। बी., पूर्वोक्त, पृ. २६.
२१) सरदेसाई ख. एस., मराठी रियासत, खंड-६, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २०११, पृ. ५०७.
२२) पिंगले बनाम। दा।, पूर्वोक्त, पृ. २१.
२३) खडसे खुशाल, आदिक्रांतिगुरू वस्ताद लहुजी साल्वे, नेहा प्रकाशन, नागपुर, २००९ संस्करण, पृ. १७.
२४) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त, पृ. ३९.
२५) वानखेड़े चंद्रकांत (सं.), समाजचेतना, लहुजी साल्वे जयंती स्पेशल, २००५, पृ. १९.
२६) पवार सुरेश (नाना), पुना का सीधा साक्षात्कार, दिनांक। २१ फरवरी, २०१४।
२७) वाघमारे गणपत, आद्यक्रांतिगुरू लहुजी साल्वे, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०१२, पृ. १ १।
२८) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त, पृ. ३४.
२९) हिवराले दया के महाक्रांतिवीर लहुजी साल्वे राज्य स्तरीय साहित्य सम्मेलन,

दाई के अवसर पर यह लेख। बहुजनरत्न, लोक नाईक, दि. १४ नवंबर, २०१०

३०) खोबरेकर बनाम। गवर्नमेंट, फ्रीडम स्ट्रगल इन महाराष्ट्र, महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड ऑफ लिटरेचर एंड कल्चर, मुंबई, फर्स्ट एडिशन, १९९४, पृ. ३.

३१) ओक प्रमोद, पेशवा परिवारों का इतिहास, महाद्वीपीय प्रकाशन, पुना, तीसरा संस्करण, २००१, पृ. १६९.

३२) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त, पृ. ३९.

३३) जाधव किशन सेवानिवृति, पूर्वोक्त,,।

अध्याय तीन

लहूजी साल्वे के

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए पूरक कार्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ लहूजी साल्वे के क्रांतिकारी कार्य

३.२.१ सशस्त्र प्रशिक्षण की स्थापना

३.२.२ लहूजी साल्वे का गुप्त सैन्य प्रशिक्षण केंद्र

३.३ ब्रिटिश शासन के विरूद्ध विद्रोह और लहुजी साल्वे की भागीदारी

३.३.१ रामोशी को उठने में मदद करें

३.२.२ जनजातीय विद्रोह मार्गदर्शन

३.२.३ किसान विद्रोह को प्रोत्साहन

३.४ ई. १८५७ के विद्रोह में लहूजी साल्वे की भागीदारी

३.४.१ पुना के विद्रोह में भागीदारी

३.४.२ सातारा के उत्थान में सहायता
३.४.३ उत्तर भारत के विद्रोह में योगदान
संदर्भ

अध्याय ३

लहूजी साल्वे के

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए पूरक कार्य

३.१ प्रस्तावना

लहूजी साल्वे ने भारतीय सशस्त्र क्रांति के इतिहास में स्वतंत्रता की तुरही फूंकी और अपने प्रशिक्षण में हजारों सशस्त्र क्रांतिकारियों को जन्म दिया। उनके जुझारू व्यक्तित्व ने हजारों देशभक्तों को प्रेरित किया। इसलिए उनके क्रांतिकारी विचारों ने पूरे भारत में राष्ट्रवाद की भावना जगाने में मदद की। इसके एक हिस्से के रूप में, बंगाल, मुंबई और मद्रास में राजनीतिक संगठनों का उदय हुआ। इसी तरह बाद के दौर में कई क्रांतिकारी संगठन भी बने। लहूजी साल्वे के विचारों ने इन सभी की स्थापना को प्रभावित किया। क्योंकि लहूजी साल्वे की लड़ाई न केवल ब्रिटिश विरोधी थी बल्कि उन्होंने जाति से लड़कर समानता पर आधारित व्यवस्था बनाने के लिए ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले का भी समर्थन किया था। इसी तरह, ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए नानासाहेब पेशवा, तात्या टोपे और रंगो बापूजी की मदद से, लहूजी साल्वे के संरक्षण में कुश्ती के साथ-साथ सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कई युवाओं ने मातृभूमि को विदेशी सत्ता के

जुए से मुक्त करने का काम किया। इसलिए मेरठ, झाशी, सातारा, कानपुर के विद्रोहों में लहुजी साल्वे से सैन्य शिक्षा प्राप्त करने वाले कई युवाओं ने बलिदान दिया। लेकिन कुलीन इतिहासकारों ने इन क्रांतिकारियों के काम पर ध्यान नहीं दिया।

३.२ लहूजी साल्वे के क्रांतिकारी कार्य

लहूजी साल्वे के पूर्वज शिव काल से ही सेना में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। वह पुरंदर जैसे महत्वपूर्ण किलों की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार था। साथ ही, छत्रपति शिवाजी महाराज ने इस शक्तिशाली परिवार को कई जीत में उनके योगदान के लिए 'राउत' की उपाधि से सम्मानित किया। ये शक्तिशाली साल्वे परिवार सभी प्रकार के सैन्य कौशल में कुशल थे। लेकिन पेशवा काल में। १८१७ में, खड़की, जिला। पुना की लड़ाई में, लहुजी साल्वे के पिता राघोजी साल्वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ते हुए गिर गए। तो पेशवा की पलायनवादी भूमिका उनके पिता की मृत्यु में उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि ब्रिटिश शासन। इसलिए लहूजी साल्वे के मन में यह भावना पैदा हुई कि इस देश से इस विदेशी शासन को खत्म कर देना चाहिए। इसलिए स्वराज्य की बहाली के लिए उन्होंने 'देश के लिए जीना, देश के लिए मरना' की शपथ ली, तो आप आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार करेंगे और खुद को राष्ट्रीय सेवा के लिए समर्पित कर देंगे। लहूजी साल्वे का क्रांतिकारी कार्य दोहरे हथियार की तरह था। एक ओर, उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई लड़ी। इसी तरह देश में जातिवाद, छुआछूत, गुलामी और असमानता को मिटाने के लिए उन्होंने भारतीय कर्मत सनातनी व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई लड़ी और देश में समानता पर आधारित व्यवस्था बनाई। इसके लिए उन्होंने सभी जातियों और जनजातियों के युवाओं को संगठित किया और उन्हें कुश्ती के साथ-साथ सैन्य शिक्षा भी दी।

३.२.१ सशस्त्र प्रशिक्षण की स्थापना

लहूजी साल्वे एक प्रतिष्ठित पहलवान और हथियारों के विशेषज्ञ थे। उनकी विचारधारा के अनुसार, यदि शक्तिशाली ब्रिटिश शासन को भारत से बेदखल करना है, तो हजारों युवाओं को राष्ट्रीय सेवा के लिए लामबंद करना होगा और सैन्य शिक्षा दी जानी चाहिए। उस दिन विजयादशमी (दशहरा) थी।[१] प्रशिक्षण का उद्घाटन पुना के एक प्रसिद्ध व्यक्ति रास्ते सरदार ने किया था। इस कार्यक्रम में पुना क्षेत्र से बड़ी संख्या में लोगों ने भाग लिया। उद्घाटन के दौरान लहूजी साल्वे ने अपनी मार्शल आर्ट की प्रदर्शनी पेश की। रोड

प्रमुखों सहित उपस्थित सभी युवा अपने दाण्डपाट्ट के प्रदर्शन से प्रभावित हुए। नतीजतन, उनके प्रशिक्षण के बारे में बहुत चर्चा हुई। इस दौरान पुना में कुछ रिहर्सल भी हुई। इमली की तालीम (१७८३), गुलशे तालीम (१७९४), रतन भारती तालीम (१७९७), काशीगीर तालीम (१८०४) और बाद में नागरकर तालीम (१७९४)। १८२४), खदेगीर तालीम (१८२४), कुंजिर तालीम (१८३४) और गवली तालीम १८३४) यह तालीम के नाम थे।[२] लेकिन लहूजी साल्वे द्वारा स्थापित प्रशिक्षण में कुश्ती के साथ-साथ सभी प्रकार की सैन्य शिक्षा दी जाती थी। इसलिए वस्ताद लहुजी साल्वे के प्रशिक्षण को क्रांति विश्वविद्यालय के रूप में जाना जाता था।

लहुजी साल्वे अनुशासनप्रिय थे। उनकी दिनचर्या के अनुसार सुबह से रात तक सारा काम योजना के मुताबिक चल रहा था। इसलिए तालीम प्रशिक्षण में हर पहलवान को अनुशासन का पालन करना होता था। लहूजी साल्वे ने समय को बहुत महत्व दिया। उनकी तालीम में सुबह ५ से ६ बजे तक योगा और जोर उठ-बैठ होती थी और सुबह ६ से १० बजे तक चार घंटे की कुश्ती के डांव एवं तरीके सिखाए जाते थे। उसके बाद शाम चार बजे से यह अभ्यास दोहराया जाता था। इसप्रकार की प्रशिक्षण की दिनचर्या थी। लहुजी साल्वे पहलवान को अपने प्रशिक्षण में अखाड़े बहादुर कहते थे। सभी पहलवान लहुजी को वास्तद मानते थे।[३]

जैसा कि लहुजी साल्वे मल्लविद्या में माहिर व्यक्ति थे, उनका शरीर मजबूत और सुडौल था। उन्होंने सभी के साथ अत्यंत शालीनता और विनम्रता से व्यवहार किया। वह भील, कातकरी और फासेपार्धी जातियों और जनजातियों की बोलियों से भी वाकिफ थे।[४] उनके प्रशिक्षण की चर्चा पुना, भोर, पुरंदर, सुपे, अहमदनगर, सातारा आदि में भी हुई। इसके कारण बड़ी संख्या में युवा उनके कुश्ती और सैन्य शिक्षा के प्रशिक्षण के लिए आते थे। इन युवकों में शुरूमें मांग, महार, चंबर, ढोर और रामोशी जातियां शामिल थीं। ई. १८२३ से वर्तमान तक १८३५ में लहूजी साल्वे ने युवाओं को कुश्ती और सैन्य शिक्षा दी थी। लेकिन बाद के समय में लोहार, कुनबी, माली, भील, महादेव कोली जाति के साथ उच्च जाति के युवा भी कुश्ती और सैन्य शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

लहूजी साल्वे के प्रशिक्षण में जैसे-जैसे सभी जातियों और जनजातियों के युवाओं की संख्या बढ़ने लगी, एक बंद और बड़े आकार में एक बड़ा प्रशिक्षण बनाया गया। बहुतों

ने मदद की थी। लहूजी साल्वे ने बंद प्रशिक्षण स्थापित करने के बाद कुश्ती के साथ-साथ युवाओं को सैन्य शिक्षा देना शुरू किया। इनमें कुश्ती, घुड़सवारी, बंदूक की सवारी, गुदगुदी, गोफन, साथ ही नदी में तैरना, पेट के बल दीवार पर चढ़ना आदि का प्रशिक्षण शामिल था। इस कार्य में उनका सहयोग राणबा गायकवाड़ (महार) ने किया।

प्रशिक्षण में लहुजी साल्वे ने युवाओं को कुश्ती सिखाई। उन्होंने भारत में जातिवाद और अस्पृश्यता को मिटाने के लिए सामाजिक समानता का पाठ भी पढ़ाया।[५] रानबा गायकवाड़, भागोजी नाईक, राघोजी नाईक, ज्योतिराव फुले, सदाशिव गोवंडे, सखाराम परजम्पे, मोरो विट्ठल वाल्वेकर, उस्मान शेख, तात्या टोपे, रंगो बापू, बबिया, योरिया, दौलतराव नाईक, धर्म, गानू शिवजी साल्वे, साल्वे, वहाँ, शिवजी फड़के, बाल गंगाधर तिलक और अन्नासाहेब पटवर्धन जैसे लहुजी साल्वे के कई शिष्य हैं। इसी तरह इस प्रशिक्षण में शिक्षित हुए कई युवाओं ने बाद में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशिक्षण स्थापित कर लहुजी साल्वे की विरासत को आगे बढ़ाया। रणबा गायकवाड़ लहुजी साल्वे के साथ मिलकर युवाओं को सैन्य शिक्षा देते थे।

लहूजी साल्वे द्वारा स्थापित प्रशिक्षण भवन पुना के गंजपेठ में स्थित है। चूंकि लहुजी साल्वे अभी भी ६३६ ईस्वी में आजीवन ब्रह्मचारी हैं, इस प्रशिक्षण की जिम्मेदारी उनके भतीजे मुक्ता कृष्णजी जाधव (साल्वे) के पांचवें वंशज हैं। किसान निवृति जाधव इसे चलाते हैं। तल्मी की पुरानी पुरावशेषों के नष्ट होने के कारण, १९९६ में पुना नगर निगम ने प्रशिक्षण के लिए एक छोटी सी इमारत का निर्माण किया और आज भी लगभग २० से २५ युवा इस प्रशिक्षण में कुश्ती का अध्ययन करने आते हैं। श्री. किसान निवृति जाधव नियमित रूप से मुफ्त कुश्ती सिखाते हैं।

३.२.२ लहूजी साल्वे का गुप्त सैन्य प्रशिक्षण केंद्र

राघोजी साल्वे ने बचपन में लहुजी को कुश्ती के साथ-साथ सभी प्रकार की सैन्य शिक्षा दी थी। इसलिए, वह कुश्ती, दाण्डपट्टा, तलवारबाजी, घुड़सवारी, निशानेबाजी और भाला फेंकने जैसी लष्करी शिक्षा में पारंगत थे। उसीप्रकार से वह गनिमीकावा युद्ध के तरीके से भी वाकिफ थे। इसलिए ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ने के लिए इस हथियार का उपयोग करने के लिए युवाओं को मल्लविद्या के साथ-साथ सैन्य शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है। साथ ही, उन्होंने कुश्ती में सबक लेने वाले युवाओं को सैन्य शिक्षा देना

शुरू कर दिया। लहूजी साल्वे के पास बंदूकों को छोड़कर हर तरह के हथियार थे। इनमें तलवारें, ढालें, हथौड़े, बंदूकें, ईंटें (भाला प्रकार), छ डीपट्टी, बोथाटी (लकड़ी की छड़ी के दोनों सिरों पर लकड़ी की गेंदों को घुमाने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला उपकरण), गोफन यह शस्त्र शामिल हैं।[६]

लहुजी साल्वे रोज सुबह अपने बच्चों को पहाड़ियों और घाटियों में ले जाकर उन्हें हर तरह की सैन्य प्रशिक्षण देते थे। क्रांतिकारियों को सैन्य ज्ञान सिखाने के बाद, वस्ताद लहुजी साल्वे उनसे हर विज्ञान का अभ्यास करते थे। उसके बाद सारे हथियार जमीन में गाड़ दिए गए। क्योंकि अंग्रेजों को उनके क्रांतिकारी कार्यो की जानकारी थी, इसलिए काम करने का इरादा नहीं था। यदि हमारे कार्यो का विवरण प्रकट किया जाता तो हमारा क्रांतिकारी कार्य अधूरा रह जाता और ब्रिटिश शासन का मुकाबला करना संभव नहीं होता। इसके लिए लहूजी साल्वे और उनके शिष्य युवाओं को सैन्य शिक्षा प्रदान करते समय इस बात का ख्याल रखते थे कि अंग्रेजों को किसी भी हाल में गुप्त तरीके को कोई पत्ता न चले।

लहूजी साल्वे के शुरूआती दिनों में अछूत जातियां और रामोशी युवा मुख्य शामील थे। लेकिन लहूजी साल्वे की मानवीय भूमिका ने भी बड़ी संख्या में सभी जातियों के युवाओं को आकर्षित किया। इसमें ब्राह्मण जाति के युवाओं ने भी भाग लिया। ऐसा इसलिए है क्योंकि लहूजी साल्वे एक महान कोच, एक महान पहलवान, एक देशभक्त, एक मानवतावादी और एक सुधारवादी थे। अगर कुछ गलत होता है, तो वे आवश्यक निर्देश देते हुए इसे स्वयं करते हैं। इनके प्रभाव से पुना, अहमदनगर, पंढरपुर, सातारा और नासिक से बड़ी संख्या में युवाओं ने भाग लिया।

लहूजी साल्वे ने सैन्य प्रशिक्षण के लिए कुछ गुप्त स्थानों को चुना था। वह जनाई क्षेत्र में तलवारबाजी, तीरंदाजी, दाण्डपट्टा, छ डीपट्टा आदि पढ़ाते थे और हर युवा से अभ्यास करवाते थे। कोंढाणा क्षेत्र में गुलटेकड़ी, निशानेबाजी, भाला फेंक, गोफणफेक और घुड़सवारी का सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता था। इसी तरह प्रशिक्षण के लिए नदी के किनारे, पहाड़ियाँ, घाटियाँ इस्तेमाल की जाती थीं। उनके पास सभी नवीनतम प्रकार की बंदूकें थीं। इसलिए युवा लहुजी साल्वे से उचित और अनुशासित प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। यह सैन्य शिक्षा देते समय लहूजी अपने पुरंदर, सिंहगढ़, प्रतापगढ़, रायगढ़ जैसे किलों का दौरा किया करते थे। वह उन्हें छ त्रपति शिवाजी महाराज, छ त्रपति संभाजी महाराज, धनाजी जाधव और

संताजी घोरपड़े के महान कार्यो की कहानियां सुनाया करते थे। उसी प्रकार इन किलों के आसपास की घाटियों में वे गोफन चलाते थे और उन्हें गणिमिकवा युद्ध भी सिखाते थे और उनमें देशभक्ति और स्वाभिमान का संचार करते थे।

लहूजी साल्वे ने पुना के पास भोर, मांगदरा, पांजर और पुरंदर के विभिन्न पहाड़ी इलाकों में युवाओं को प्रशिक्षित किया। इसी तरह, वह सिंहगढ़ पहाड़ी, कात्रज पहाड़ी और दर्रो की यात्रा करते थे और गनीमी कविता सिखातें थे। भोर का पहाड़, मांगदरा, पुरंदर के पहाड़ों में युवाओं को गठन करके और युवाओं को विभिन्न समूहों द्वारा फैलाया गया था और उन्हें प्रत्येक समूह के लिए एक लड़ाकू नेता के रूप में सौंपा गया था। लहुजी साल्वे से सैन्य शिक्षा प्राप्त करने वाले कई युवा ब्रिटिश शासन के खिलाफ सत्तू नाईक, उमाजी नाईक, राघोजी नाईक, रघु भांगरे, भागोजी नाईक, तांत्या भील, वासुदेव बलवंत फड़के के गिरोह में शामिल हो गए और उन सभीने मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ कार्रवाई की है।[७] जमींदारों पर हमला किया, उनकी संपत्ति को लूटा और गरीबों में बांट दिया।

लहुजी साल्वे १८२२ ई. से १८४८ ई. तक के काल में, उन्होंने गुप्त रूप से युवाओं को सैन्य शिक्षा प्रदान करके भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिकारियों की एक सेना का गठन किया। क्योंकि इस क्रांतिकारी स्कूल में सैन्य शिक्षा प्राप्त करने वाले युवाओं ने रामोशी विद्रोह, आदिवासी विद्रोह, किसान विद्रोह आदि की शुरूआत की। १८५७ ई. के विद्रोह और उसके बाद के शक्तिशाली ब्रिटिश शासन के खिलाफ आंदोलन में एक राष्ट्रीय भाग लिया और ब्रिटिश सत्ता को हिलाकर रख दिया। १८५७ ई. के विद्रोह में, लहूजी साल्वे के शिष्य नानासाहेब पेशवा, तात्या टोपे और रंगो बापूजी की सेना में शामिल हो गए और सातारा, मेरठ, कानपुर और झाशी में विद्रोह का मंचन किया। उनमें से कई ने देश के लिए बलिदान दिया। लेकिन लहूजी साल्वे का सैन्य करियर अंग्रेजों को नहीं सौंपा गया था।

जंगलों, घाटियों, घाटियों और घनी झाड़ियों में लहूजी की क्रांतिकारी गतिविधियों को बड़े ही गुपचुप तरीके से अंजाम दिया गया। उनके शिष्य एकजुट थे। संगठित शक्ति का जोश था। नतीजतन, नौवें युवाओं की भर्ती की जा रही थी। सैन्य शिक्षा के साथ-साथ इन युवाओं को सामाजिक समानता का पाठ भी दिया गया। क्योंकि यह अस्पृश्यता का समय था। अछूतों की छाया भी कुरूप मानी जाती थी। लेकिन यह अस्पृश्यता, लहूजी अछूत

होने के बावजूद, उनके मामले में सामने नहीं आई। क्योंकि लहुजी का शरीर वैसा ही था। भारत में ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए, वस्ताद लहुजी साल्वे युवाओं को शिक्षित करने और उन्हें ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों को करने के लिए प्रशिक्षित करने के लिए दिन-रात काम करते थे। यह सब करते हुए लहुजी के कुछ शिष्य अंग्रेजों के हाथों में पड़ गए और उन्हें दंडित किया गया। लेकिन उन्होंने कभी भी अपने गुरू का नाम अंग्रेजों को नहीं बताया।[८] क्योंकि अगर अंग्रेजों ने उनके सैन्य कार्य की जगह ले ली होती, तो लहूजी का काम कभी खत्म नहीं होता। तो लहूजी अपने शिष्यों से कहा करते थे, 'किसी भी परिस्थिति में अंग्रेजों को मेरा नाम और सशस्त्र प्रशिक्षण का स्थान नहीं जानना चाहिए।' लेकिन एक बार अंग्रेजों को सशस्त्र प्रशिक्षण का संकेत मिला और अंग्रेजों ने लहूजी के प्रशिक्षण पर छापा मारा। लेकिन जैसे ही यह खबर लहुजी और तालीमी युवकों तक पहुंची, सारे हथियार जमीन में दब गए। इसलिए अंग्रेजों के हाथ में कोई सबूत नहीं मिला। युवाओं के लिए लहूजी साल्वे का गुप्त सैन्य प्रशिक्षण क्रांतिकारियों का विश्वविद्यालय था। और इस विश्वविद्यालय में गठीत कई क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने का काम किया।

३.३ ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह और लहूजी साल्वे की भागीदारी

लहूजी साल्वे का उद्देश्य इस देश में ब्रिटिश शासन को नष्ट करना था। क्योंकि अंग्रेज विदेशी थे और उनके पिता राघोजी के हत्यारे थे। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश राजतंत्र का विरोध किया। इसी तरह, लहूजी साल्वे ने दमनकारी साहूकारों और जमींदारों के खिलाफ लड़ाई लड़ी जो आम लोगों का शोषण कर रहे थे। विकल्प भ्रष्टाचार के खिलाफ उनकी लड़ाई थी। उन्होंने देश में ब्रिटिश शासन को नष्ट करने के लिए रामोशी और आदिवासी जनजातियों के विभिन्न विद्रोह शुरू किए। ऐसा लगता है कि ये सभी विद्रोह ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के साथ-साथ स्वराज्य में आम रैयतों को परेशान करने वाले अत्याचारी साहूकारों और ब्रिटिश लोगों को सबक सिखाकर देश में स्वशासन को फिर से स्थापित करने के उद्देश्य से प्रेरित थे।

३.३.१ रामोशी विद्रोह को मदद

रामोशी महाराष्ट्र की जंगली जनजातियों में से एक हैं और मुख्य रूप से पुना और सातारा जिलों के पहाड़ी इलाकों में रहते हैं। इस जनजाति के लोग शरीर से मजबूत,

कणखर, निष्ठावान, आक्रमण वृत्ती और वफादारी के लिए जाने जाते हैं। स्वराज्य की स्थापना में छत्रपति शिवाजी महाराज के लिए इस जनजाति का बहुत उपयोग था। इसलिए रामोशी जनजाति को स्वराज्य में कई महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां दी गई।[९] रामोशी पुरंदर किले की देखभाल के लिए वहां गए थे। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने तैनात सेना को स्वीकार कर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था। इसलिए रामोशी जनजाति को निकाल दिया गया। किले की रक्षा करने का उसका अधिकार छीन लिया गया। इसलिए रामोशी समुदाय को भूख और बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ा। पूर्व में चल रहे गार्ड की नौकरी पाने के लिए रमोशा ने बहुत कोशिश की। लेकिन दूसरे बाजीराव ने रामोशी लोगों की भूमि, चार्टर, पुरस्कार और भूमि को जब्त कर लिया। तो भूख से तंग आकर ये लोग लूटपाट करने लगे थे।[१०]

चित्तूरसिंह के नेतृत्व में रामोशी जनजाति ने ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए सातारा जिले में लूटपाट शुरू कर दी। उसके बाद सत्तू नाईक के नेतृत्व में सारा रामोशी समाज एक हो गए थे। इसमें उमाजी नाईक भी शामिल थे। क्योंकि सत्तू नाईक को भारत में ब्रिटिश शासन की स्वीकृति नहीं थी। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार, साहूकारों और ब्रिटिश कर्जदारों के घरों में डकैती का सत्र शुरू किया। फरवरी १८२४ में, उमाजी नाईक ने पुना के पास भाम्बुर्डे में ब्रिटिश खजाने को लूट लिया था।[११] इसने ब्रिटिश अधिकारियों के साथ-साथ रामोस के गिरोह में भारी दहशत पैदा कर दी। अंग्रेजों ने रामोशी को स्थायी रूप से बंदोबस्त करने के लिए एक आंदोलन शुरू किया था। इसलिए सत्तू नाईक ने लहुजी साल्वे की मदद मांगी थी ताकि उनकी टीम में फौजी पढ़े-लिखे युवा हों।

पुरंदर के पास एक पहाड़ी पर लहुजी साल्वे चुपके से सत्तू नाईक से मिले। इस दौरान उमाजी नाईक भी मौजूद थे। लहुजी साल्वे ने सत्तू नाईक के डकैती के सत्र को मंजूर नहीं किया। लेकिन यह महसूस करते हुए कि अत्याचारी साहूकारों पर सजा देने के लिए ब्रिटिश सरकार को सत्तू नाईक का समर्थन करने की आवश्यकता थी, इसलिए लहुजी साल्वे ने सत्तू नाईक के साथ सहयोग किया। इस यात्रा के दौरान, लहुजी साल्वे ने सत्तू नाईक से कहा कि देश में ब्रिटिश शासन को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इस राज्य में अंग्रेजों को शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। इसके लिए हमें ब्रिटिश सरकार से नेट में लड़ना होगा। लेकिन हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे द्वारा शुरू की गई

लूटपाट और डकैती के मौसम के कारण यहां के आम लोगों को किसी भी तरह से चोट न पहुंचे। यदि इस देश में ब्रिटिश शासन नष्ट हो जाता है, तो हमें स्वशासन को राजाओं के रूप में संभालना चाहिए। मैं इस प्रयास में आपका समर्थन करना जारी रखूंगा। ऐसा कहकर लहूजी साल्वे ने रामोशा के विद्रोह का समर्थन किया था।

ई. १८२५ में सत्तू नाईक की कॉलरा से मृत्यु हो गई। इसलिए रमोशा के गिरोह का नेतृत्व उमाजी नाईक के पास आ गया। वह नई जिम्मेदारी और आत्मविश्वास की भावना के साथ चलने लगा। उमाजी नाईक ने अंग्रेजों को हराया। १८२६ में, एक काउंटर-सरकार का गठन किया गया था। इस सरकार विरोधी को बनाने में उमाजी नाईक को लहूजी साल्वे द्वारा सहायता प्रदान की गई थी।[१२] उमाजी नाईक के पास पांच हजार लोग थे। इनमें मांग, रामोशी, बेयर्ड, अरब मुसलमान, मराठा आदि शामिल थे। उमाजी नाईक ने इस बात का ख्याल रखा कि लूट और लूट के दौरान उनके राज्य के रैयतों को नुकसान न पहुंचे।

रामोशा के विद्रोह के कारण, अंग्रेजों ने उमाजी नाईक को भगोड़ा घोषित कर दिया और उसे पकड़ने वालों को पुरस्कृत किया। लेकिन चूंकि उमाजी नाईक आम जनता के बीच लोकप्रिय हैं, इसलिए उन्हें पकड़ना मुश्किल था। अंत में, एक अंग्रेज अधिकारी कैप्टन एलेक्जेंडर मैकिन्टोश ने अपने एक साथी का हाथ पकड़कर जाल बिछाया। १८ दिसंबर, १८३१ को उमाजी नाईक को पुना जिले के भोर के पास उजोली गांव में एक झोपड़ी में रात में बेहोशी की हालत में पकड़ा गया था। उन्हें कई झूठे आरोपों में गिरफ्तार किया गया था। उन्हें ३ फरवरी, १८३२ को मौत की सजा सुनाई गई थी। इस दौरान उमाजी नाईक के दो बेटे तुक्य और मानक्य लहुजी साल्वे को कुछ दिन हुए थे। उमाजी नाईक की मृत्यु के बाद, रामोशी ने लहूजी साल्वे के साथ मिलकर आदिवासी विद्रोह में भाग लिया और ब्रिटिश शासन का विरोध किया।

३.३.२ जनजातीय विद्रोह को मार्गदर्शन

महाराष्ट्र विभिन्न आदिवासी जनजातियों जैसे भील्ल, गौंड, आंध, महादेव कोली, कातकरी, वारली का निवासस्थान है। और वे ही थे जिन्होंने अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखा। इस जनजाति के लोग स्वतंत्र थे। महाराष्ट्र में सत्ता के कई परिवर्तन हुए। लेकिन आदिवासी जनजातियों की स्वतंत्रता अबाधित थी। छत्रपति शिवाजी महाराज ने उनके शरीर मजबूत और तेज, उनके साहसी और ईमानदार स्वभाव

के कारण उन्हें स्वराज्य में सम्मान का स्थान दिया था।[१३] भील्ल और कोली जनजातियों को किलों की रक्षा करने की जिम्मेदारी दी गई थी। उनके पराक्रम के लिए उन्हें किले के पास जमीन दी गई। लेकिन पेशवा के पतन के बाद, महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की नई नीतियों और दमनकारी कानूनी व्यवस्था के कारण आदिवासी जनजातियों की स्वतंत्रता पर हमला होने लगा। उनके अधिकारों का हनन होने लगा। वे प्राचीन काल से चले आ रहे वन अधिकारों को छिनने आए थे। इसी तरह उनके सामाजिक जीवन में दखल देने लगे। साहूकारों और जमींदारों ने अंग्रेजों से हाथ मिला लिया और उनकी जमीन हड़पने लगे। जीवित रहने का एकमात्र तरीका गरीब आदिवासियों को भूखा रखना था। इन जनजातियों के पास निर्वाह का कोई स्थायी साधन नहीं था। उनकी आजीविका वन आय पर निर्भर करती थी। परिणामस्वरूप आदिवासियों में ब्रिटिश शासन के प्रति आक्रोश और आक्रोश बढ़ता जा रहा था। भारत के विभिन्न हिस्सों के आदिवासियों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह करना शुरू कर दिया।

ई. १८१८ से १८५६ तक का खानदेश का इतिहास आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ किए गए संघर्ष का इतिहास है। इस अवधि के दौरान हर साल आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ छोटे-बड़े विद्रोह किए जाते थे। इन विद्रोहों की पृष्ठभूमि लहुजी साल्वे के विचारों और कार्यो में देखी जा सकती है। यह आदिवासी समुदाय और लहुजी साल्वे के बीच प्रेमपूर्ण और अंतरंग संबंध के कारण थे। इसलिए, कई युवा आदिवासी कुश्ती के साथ-साथ सैन्य शिक्षा के लिए लहुजी साल्वे आते थे। लहुजी साल्वे इन युवकों को हर तरह की सैन्य शिक्षा देते थे और उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई के लिए प्रशिक्षित करते थे। लहूजी से प्रेरित, १८३० में, महादेव कोली समुदाय ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने का साहसिक प्रयास किया था।[१४] इसप्रकार १८३८ के आसपास, राघोजी नाईक ने पुना, थाने, नासिक और अहमदनगर में भील और महादेव कोली जनजातियों को संगठित किया। मध्यप्रदेश के सतपुड़ा क्षेत्र में, एक आदिवासी युवक तांत्या भील्ल ने ब्रिटिश सरकार और उसके दलालों, जमींदारों, साहूकारों, वतनदारों, पाटिलों आदि के खिलाफ लड़ाई लड़ी और आदिवासी लोगों में राष्ट्रवाद की भावना पैदा की।

ई. १८४४ में, रघु भांगरे और बापू भांगरे के नेतृत्व में, कोली जनजाति ने अंग्रेजों के खिलाफ हिंसक विद्रोह किया। इस विद्रोह को लाने के लिए लहुजी साल्वे का प्रशिक्षण।

१८३६ से १८४८ तक के काल में, गुप्त गड़बड़ी चल रही थी। बापू भांगरे और भाऊ खरे जैसे विद्रोही लहुजी साल्वे के मार्गदर्शन के लिए रात में समय-समय पर प्रतिबंध तोप चलाए जाने के बाद लहुजी साल्वे के प्रशिक्षण में आए थे। उनके साथ रघु भांगरे, नाना दरबारे, चिमानाजी जाधव जैसे योद्धा भी थे। वह और लहूजी साल्वे की गुप्त गतिविधियां चल रही थीं और वे विद्रोह की साजिश रच रहे थे।[१५]

लहुजी साल्वे का ब्रिटिश विरोधी संघर्ष गुप्त रूप से चलाया गया था। वह आदिवासी नेताओं के साथ सहयोग कर रहे थे। उनके कई शिष्य आदिवासी विद्रोह में भाग ले रहे थे। रघु भांगरे और बापू भांगरे ने पुना में विद्रोह किया और सरकारी खजाने को लूटा, सरकारी बंगलों और कार्यालयों पर हमला किया। कोली जनजातियों ने पुना, नासिक और अहमदनगर में विद्रोह किया। विद्रोह पुरंदर और सातारा क्षेत्रों में फैल गया। १८४५ ई. में, कोलीयों ने रामोशी की मदद ली। नतीजतन, विद्रोह तेज हो गया। इस दौरान रघु भांगरे और बापू भांगरे ने अंग्रेजों का साथ देने वालों को भी निशाना बनाया। इस समय, ब्रिटिश सरकार ने रघु भांगरे को पकड़ने के लिए पांच हजार रूपये के इनाम की घोषणा की। लेकिन रघु भांगर लोगों के बीच काफी लोकप्रिय थे और उन्हें पकड़ना बहुत मुश्किल था। आखिरकार १८४८ ई. में उन्हें अंग्रेजों ने पकड़ लिया और फांसी पर लटका दिया। हालांकि, कोली जनजाति का विद्रोह कम नहीं हुआ। उमाजी नाईक के दो बेटों तुक्य और मनक्य ने कोली जनजाति की मदद की। इस बार का विद्रोह इतना जबरदस्त था। कि, पूरे साल, अंग्रेजों को पता नहीं था कि क्या करना है। कैप्टन जेल ने महादेव कोली के ठिकाने का पता लगाया और छापेमारी की और कई प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया। उमाजी नाईक के बच्चों को गिरफ्तार कर लिया गया। इसी तरह, १८४८ से १८८० ई. तक के काल में सामाजिक और शैक्षिक कार्यो में लहूजी साल्वे की भागीदारी के कारण, कोली जनजाति के विद्रोह को कुछ हद तक शांत किया गया था।

१८५७ ई. के आसपास, नासिक क्षेत्र में भील्ल और महादेव कोली जनजातियों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया। विद्रोह का नेतृत्व भगोजी नाईक ने किया था। ब्रिटिश शासन के कारण आदिवासियों की पारंपरिक नियुक्तियों को रद्द कर दिया गया था। इतना ही नहीं बल्कि वह जंगल जिस पर आदिवासी जनजातियों का जीवन निर्भर था। आदिवासियों के जंगल में प्रवेश करने और अपने मवेशियों को चराने का अधिकार रद्द

कर दिया गया था। इसलिए नासिक और अहमदनगर जिले के महादेव कोली और भील जनजाति भगोजी नाईक के पीछे मजबूती से खड़े रहे। उत्तर में महाराष्ट्र में १८५७ ई. की जीत की खबरें आने लगीं। खबर से भागोजी का उत्साह और बढ़ गया और उन्होंने अपने सैकड़ों सहयोगियों के साथ विद्रोह का झंडा फहराया और सरकारी कचरे और सरकारी खजाने पर हमला किया। उन सैनिकों में लहुजी साल्वे के सैन्य प्रशिक्षण वाले युवक शामिल थे। इन युवकों ने अंग्रेज अधिकारियों को मारने के लिए सत्र की शुरूआत की। लेकिन फिर अंग्रेजों ने विद्रोह को कुचल दिया। १८५७ ई. के विद्रोह के आसपास, महादेव कोली नामक एक आदिवासी जनजाति ने विद्रोह कर दिया। लेकिन यह विद्रोह अंग्रेजों को लगा कि इसका १८५७ ई. के विद्रोह से कोई लेना-देना नहीं है।

वासुदेव बलवंत फड़के १८७१ ई. के आसपास, लहूजी साल्वे ने कुश्ती, दाण्डपट्टा और तलवारबाजी की कला सीखी और ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ना शुरू कर दिया। इस समय उन्होंने लहूजी साल्वे के प्रशिक्षित सहयोगियों की मदद से नासिक, खानदेश और वरहाद प्रांतों में रहने वाले भील और महादेव कोली समुदाय को संगठित किया और ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह किया।

लहुजी साल्वे पुना में सभी जातियों और धर्मो के युवाओं को सैन्य शिक्षा प्रदान कर रहे थे और छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित स्वराज्य में भी, लहूजी साल्वे के पूर्वजों को मानद पद दिए गए थे और वे गढ़दुग किले की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार थे। इसलिए, लहूजी साल्वे ने भारत में ब्रिटिश शासन को नष्ट करने का फैसला किया। १८४८ से पहले, आदिवासी विद्रोहों का समर्थन किया गया था। उनके वंशज श्री. किसान निवृति जाधव का कहना था, कि लहूजी साल्वे नासिक और अहमदनगर में भील्ली और कोली आदिवासियों से मिलने जाते थे। ऐसा लगता है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लहुजी के आदिवासी विद्रोह को फायदा हुआ है।

३.३.३ किसान विद्रोह को प्रोत्साहन

लहूजी साल्वे का महाराष्ट्र के किसानों और मजदूर वर्ग के साथ व्यापक संपर्क था। वह ब्रिटिश शासन द्वारा किसानों पर किए गए दुख, दर्द और अवमानना से पूरी तरह परिचित थे। साथ ही पेशवाओं के समय में जो किसान देर से खेत भरते थे उन्हें धूप में खड़ा कर दिया जाता था। और उनकी पीठ पर एक बड़ा सा पत्थर रख दिया जाता था और नीचे मिर्ची

का धुआँ दिया जाता था। इस प्रकार को लहुजी साल्वे ने देखा था। ब्रिटिश काल में भी ऐसी ही स्थिति थी। एक तरफ ब्रिटिश सरकार और उसके विशाल किसान वर्ग और दूसरी तरफ, साहूकारों और उनके गिरवी ब्याज को किसानों द्वारा निचोड़ा जा रहा था। इसी तरह वे पुरोहित, सरकारी कर्मचारियों और भोले-भाले विचारों के जाल में फंस गए।[१६] लहूजी साल्वे इस बात से दुखी थे कि इस देश का कमाने वाला होने के बावजूद उनकी स्थिति बहुत दयनीय थी।

लहुजी साल्वे के पुना, अहमदनगर, सातारा और नासिक क्षेत्रों के कई किसानों के साथ घनिष्ठ संबंध हैं, इसलिए उनके प्रशिक्षण में पढ़ने वाले युवाओं को मजदूर वर्ग के बच्चों द्वारा अधिक भुगतान किया जाता था। ई. १८७० से १९७२ तक, जब किसान का ३० साल का कार्यकाल समाप्त हुआ, तो पुनर्गणना फिर से शुरू हुआ था। इसमें किसानों की संख्या दोगुनी हो गई। इसलिए किसानों को हताशा में साहूकारों से कर्ज लेना पड़ा। लेकिन साहूकार झूठी साक्षरता और जबरदस्ती करके किसानों की जमीन अपने नाम कर लेते थे। परिणामस्वरूप, किसानों की भूमि साहूकारों के नियंत्रण में आ गई। किसान साहूकारों के कर्ज चुकाने के लिए जी रहे थे। इस पर लहुजी साल्वे और ज्योतिराव फुले के बीच चर्चा हुई। इसी प्रकार लहुजी अपने प्रशिक्षण में किसानों की स्थिति पर युवाओं से चर्चा किया करते थे।

लहुजी साल्वे के प्रशिक्षण में कई युवकों की जमीन साहूकारों के कब्जे में थी। तो लहूजी साल्वे घबरा गए। उन्होंने युवाओं को मनी लॉन्ड्रिंग के खिलाफ लड़ने के लिए अपने प्रशिक्षण में एक मंत्र दिया था ताकि किसानों को साहूकारों के उत्पीड़न और उत्पीड़न से मुक्त किया जा सके। तदनुसार। १२ मई १८७५ को भीमथडी तालुका के सुपे में किसानों ने घरों और दुकानों में लूटपाट की। कई गांवों में इसी तरह के विद्रोह हुए। इन सभी विद्रोहों की प्रकृति एक ही थी। इसका उद्देश्य ऋण राहत के उद्देश्य से ऋणदाता से बांड, गिरवी और अन्य दस्तावेजों को छीनना और जलाना था। कुछ जगहों पर अत्याचारियों ने अपने नाक-कान भी काट डाले। इस विद्रोह में कोई एक नेता नहीं बल्कि हर किसान नेता थे जो साहूकारों द्वारा बह गए थे।[१७] परिणामस्वरूप पुना, अहमदनगर, सोलापुर, नासिक और खानदेश जैसे कई स्थानों पर विद्रोह हुए।

महाराष्ट्र में किसानों का विद्रोह और १८७६ ई. पेश करने के लिए १८७८ ई. के भीषण अकाल ने किसानों, मजदूरों और आम जनता के लिए बहुत बुरी स्थिति पैदा कर दी थी। लोगों के पास खाने के लिए खाना नहीं था। कई लोग भूखे मर रहे थे। इस अवसर पर लहूजी साल्वे ने गंजपेठ (पुना) में एक भोजन भंडार शुरू किया था और अपने अछूत भाइयों की सेवा की थी। इस फूड अम्ब्रेला को शुरू करने में पुना के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उनकी सहायता की थी।

३.४ १८५७ ई. के विद्रोह में लहूजी साल्वे की भागीदारी

ई. १८५७ के विद्रोह को भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सबसे बड़ा विद्रोह माना जाता है। इस विद्रोह का मुख्य उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन को नष्ट करना और मुगल शासन के साथ पेशवा को पुनर्जीवित करना था। इसलिए, इस विद्रोह में केवल कुछ सामंती प्रभु, वतनदार और जहांगीरदार शामिल थे। महाराष्ट्र के पेशवाओं के उत्तराधिकारी नानासाहेब पेशवा विद्रोह के नेता थे। इसी प्रकार इस विद्रोह में तात्या टोपे सबसे आगे थे। लेकिन इस नानासाहेब पेशवा, तात्या टोपे, जिन्होंने १८५७ ई. के विद्रोह का नेतृत्व किया, साथ ही ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ने वाले भारत के सामंतों, वतनदारों और जागीरदारों को किसानों, महादेव कोली, रामोशी और आदिवासियों के विद्रोह में कहीं नहीं देखा गया। इसलिए लहूजी साल्वे इस बात से वाकिफ थे कि महाराष्ट्र में पेशवा का फिर से उभरना आम आदमी की नजर में खतरनाक था। क्योंकि लहूजी साल्वे ने पेशवा में अन्याय और अत्याचार का अनुभव किया था। इस विचार के साथ कि पेशवा सत्ता की नहीं बलकी स्वराज्य को बहाल किया जाना चाहिए इसलिए, लहूजी साल्वे ने, रामोशी, आदिवासी और किसान विद्रोहों की तरह, सातारा में विद्रोहियों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ने में मदद की थी।

३.४.१ पुना के विद्रोह में भागीदारी

१८५७ ई. के विद्रोह का नेतृत्व महाराष्ट्र के नानासाहेब पेशवा और तात्या टोपे जैसे महत्वपूर्ण नेताओं ने किया था। हालाँकि, इस तथ्य के बावजूद कि अधिकांश सैनिकों ने विद्रोह में भाग लिया, महाराष्ट्र में कोई बड़ा विद्रोह नहीं हुआ। ऐसा इसलिए है क्योंकि पुना के जफर मुल्ला और मोहम्मद ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध में भारतीयों की जीत के लिए जामा मस्जिद में विशेष प्रार्थना की थी। इसका सबूत तत्कालीन गुप्त पुलिस रिपोर्ट में मिलता

है। पुना शहर में विद्रोह के समय, कुछ भूमिगत व्यक्तियों ने घोषणा की थी कि नानासाहेब पेशवा छह सप्ताह में पुना पर चढाई करेंगे। सितंबर १८५७ में पेशवा सरकार की घोषणा पूना नेटिव जनरल लाइब्रेरी की दीवार पर लगाई की गई थी। इसमें ब्रिटिश गवर्नर के हत्यारे के लिए पांच हजार रुपये और किसी अन्य अधिकारी के हत्यारे के लिए एक हजार रुपये का इनाम घोषित किया गया था।[१५] वहीं, बलवंतराव बाबाजी भोसले पुना में विद्रोह के नेता और अन्य सहायता के लिए थे। इस बार भाई सराफ से गोलियों के लिए सीसा प्राप्त किया गया था। इसी समय के आसपास लहुजी साल्वे पुना में युवाओं को हथियार देकर हजारों क्रांतिकारियों को राष्ट्र सेवा के लिए तैयार कर रहे थे। लेकिन लहुजी साल्वे का क्रांतिकारी कार्य बेहद गोपनीय था। उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी थी।, 'हमारी क्रांति के लिए अंग्रेजों को दोष नहीं देना चाहिए।' इसलिए उनके क्रांतिकारी कार्यो के बारे में बहुत गोपनीयता रखी गई थी।

ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह को पुना के लोगों ने समर्थन दिया और ब्रिटिश अधिकारियों को संदेह था कि पुना में एक बड़ा विद्रोह होगा। इसी तरह मौलवी नूरुल हुड्डा, चतुरसिंह और केशरी सिंह को संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया गया। ई. १८५७ के आसपास, पुना में ब्रिटिश अधिकारियों को लहुजी साल्वे के क्रांतिकारी कार्यो पर संदेह हुआ। इसलिए उन्होंने लहूजी साल्वे के प्रशिक्षण मैदान पर छापा मारा। लेकिन पूर्वकल्पित धारणा के चलते प्रशिक्षण के दौरान युवकों ने सारे हथियार जमीन में गाड़ दिए। इसलिए अंग्रेजों को लहूजी के प्रशिक्षण का कोई प्रमाण नहीं मिला। १८५७ के विद्रोह के दौरान पुना शहर में उचित नेतृत्व की कमी और सरकार की कड़ी सुरक्षा और लहुजी साल्वे के साथ-साथ समाज सुधारकों और पेशवा की बहाली के लिए अधिकांश लोगों के विरोध के कारण, एक प्रमुख पुना में विद्रोह नहीं हो सका।

३.४.२ सातारा में विद्रोह का समर्थन

ब्रिटिश शासन के खिलाफ १८५७ ई. में सातारा में विद्रोह को महत्वपूर्ण माना जाता है। चूंकि १८१८ ई. में पेशवा के पतन के बाद २५ सितंबर, १८१९ ई. की संधि के अनुसार छत्रपति प्रताप सिंह ने अंग्रेजों की संप्रभुता को मान्यता देकर मराठा सिंहासन प्राप्त किया था। उसके साम्राज्य में सातारा, संगोला, मालशीरा, पंढरपुर और बीजापुर के हिस्से शामिल थे। लेकिन अंग्रेजों ने छत्रपति प्रताप सिंह को ऊपरी हाथ दिए बिना अपने शासन की देखरेख

के लिए जेम्स ग्रांट डफ को अंग्रेजी निवासी नियुक्त किया। उनकी सलाह के अनुसार छत्रपति प्रताप सिंह को शासन करना पड़ा। हालाँकि, छत्रपति प्रताप सिंह ने अंग्रेजों की मदद से राज्य में कई स्कूलों का निर्माण किया और बहुजन समाज के लड़के और लड़कियों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया। बाद में छत्रपति प्रताप सिंह ने अंग्रेजों द्वारा लगाई गई शर्तों को मानने से साफ इनकार कर दिया। इसी तरह बालासाहेब नातू ग्रांट डफ के हाथों काम कर रहे थे और वे महाकारस्थानी थे। उन्हें सातारा राज्य का दीवान पद चाहता था। इसलिए उन्होंने झूठे दस्तावेज तैयार किए और उसने प्रताप सिंह के खिलाफ साजिश रची थी। इसलिए कंपनी सरकार ने छत्रपति प्रताप सिंह को भेजा। १८३९ ई. में बर्खास्त कर दिया और एक लाख बीस हजार रुपये की वार्षिक पेंशन शुरू की। तब ग्रांट डफ ने एलफिलस्टन को लिखे एक पत्र में कहा, हमें राजा को हटाने के लिए मजबूर करना होगा। और प्रतापसिंह का राज्य का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, अपमान की तुलना में कंपनी ने अपनी प्रतिष्ठा को कुछ हद तक त्याग दिया, यह सूचित किया गया था।[२०]

सातारा के राजा छत्रपति प्रताप सिंह को अंग्रेजों द्वारा हटाने से सातारा राज्य में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ असंतोष पैदा हो गया। उस समय कराड धराराव, इस्लामपुर के नरसिंह दत्तात्रेय पेंटाकार ने विद्रोह का आयोजन किया था। पेंटकर ने पुना, अहमदनगर, नासिक और रायचूर जिलों का दौरा किया और एक हजार से अधिक सैनिकों को इकट्ठा किया। उन्होंने बादामी के किले पर सातारा के राजा का झंडा फहराया। इस काल में पेंटकर और उनके सहयोगियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा पकड़ लिया गया और उन्हें फांसी दे दी गई और विद्रोह को दबाने के लिए व्यापक उपाय किए गए। ई. १८४४ के अंत तक विद्रोह को कुचल दिया गया था। सतर के छत्रपति प्रताप सिंह को अंग्रेजों ने परेशान किया था। १४ अक्टूबर, १८४७ को मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद, लॉर्ड डलहौजी ने एक दत्तक उत्तराधिकारी को अस्वीकार करने के बाद १६ मई १८४८ में अंग्रेजों ने सातारा में एक उद्घोषणा जारी की और संस्था को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। परिणामस्वरूप, सातारा राज्य में ब्रिटिश-विरोधी असंतोष व्याप्त हो गया था।

सातारा राज्य में ब्रिटिश राजशाही के खिलाफ। १८५७ ई. का विद्रोह हुआ। रंगो बापू इस विद्रोह के मुख्य सूत्रधार थे। उसने १८५६-१८५७ की अवधि के दौरान, उन्होंने जनशक्ति, सामग्री और अन्य सहायता प्राप्त करने के लिए महाराष्ट्र की यात्रा की। उन्होंने

पुना में वस्ताद लहूजी साल्वे से भी मुलाकात की और सातारा काटा के लिए सैन्य शिक्षा प्राप्त करने वाले युवाओं की मदद करने का वादा किया। इस दौरान लहुजी साल्वे ने उन युवाओं से संपर्क किया जो सशस्त्र प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके थे और सैन्य प्रशिक्षण के बाद भूमिगत रह गए थे और ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों को अंजाम दे रहे थे। रंगो बापूजी ने देऊर, वर्धनगड, आर्वी, कलंबी, कराड, फलटन, पंढरपुर, बेलगाम, कोल्हापुर, शाहपुर और सातारा में युवाओं के लिए गुप्त केद्र स्थापन किया था। इन युवाओं एकत्रित करके हथियार जमा किए थे, गोला बारूद भी तैयार किया और इन युवाओं को सभी कार्यो के वितरण किया था।

रंगो बापू ने सातारा में विद्रोह के लिए लगभग डेढ़ से दो हजार विशेष सेनानियों को इकट्ठा किया था। इसमें आधे से अधिक युवा वस्ताद लहूजी को सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त थे। इनमें बाबिया, यूरिया और मलाया मांग शामिल थे। रंगो बापू ने इन सभी क्रांतिकारियों को विद्रोह की योजना समझाया था और कहा कि 'महाराज को सातारा का सिंहासन दिलाने के लिए आपको अंग्रेजों से लड़ने के लिए तैयार रहना होगा। इसी के तहत सभी को काम की जिम्मेदारी दी गई थी। लेकिन विद्रोह के एक दिन पहले फितूरी पर हमला किया गया था। जैसे ही ब्रिटिश सरकार को इस साजिश के बारे में पता चला था। उन्होंने विद्रोहियों को गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। गिरफ्तारी शुरू होते ही कुछ समय तक क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों का विरोध किया। लेकिन ब्रिटिश सेना की हार नहीं हुई। इसलिए पहाड़ों में छिपे क्रांतिकारी अपने-अपने क्षेत्रों में चले गए। लहुजी का एक धनी शिष्य दौलतराव नाईक, जो भोर के समय पहाड़ी पर बैठा था, अपने गिरोह के साथ कालुबाई की पहाड़ी पर भाग गया। हरिबा रामोशी, गण मांग पक्ष की ओर दौड़े। हम्बीराव मांग पाटन घाटी की ओर से चले गए थे। इस षडयंत्र के लगभग ३०-३५ नेता क्रांतिकारी ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में थे। हालाँकि, कुछ क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश राजकोष को लूटने के लिए एक अभियान चलाया और ब्रिटिश एजेंट राघवेंद्र की हत्या करके राजकोष को लूट लिया। लेकिन एक दंगा भी हुआ और ब्रिटिश अधिकारियों को वह क्रांतिकारी मिल गया जिसने खजाना लूट लिया था और भाग गया था। उसे देशद्रोह का आरोप लगाते हुए, कनौय्या मांग, धर्मा मांग, पर पंढरपुर में गिरफ्तार किया गया। ४ अगस्त १८५७ को पिरप्पा, बंद्या रामोशी, पारलू बागल आदि क्रांतिकारी मारे गए। उसके बाद क्रांतिकारियों को कोल्हापुरी में गिरफ्तार

किया गया उन्हें ७ दिसंबर १८५७ को सातारा के ज़ेंडा मैदान में फांसी दी गई थी।[२१] उनमें से बाबिया मांग, योरिया मांग, नाथ्या मांग, यल्या मांग, मलय्या मांग थे। रंगो बापू को सातारा में विद्रोह के दौरान लहुजी साल्वे ने सहायता प्रदान की थी। यही कारण है कि लहूजी साल्वे से सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले हजारों सैनिकों ने स्वराज्य की बहाली के लिए छत्रपति का सिंहासन पाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। बिना ब्रिटिश सत्ता से लड़ाई लड़ी और उन्होंने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

३.४.३ उत्तर भारत के उदय में योगदान

१८५७ ई. का विद्रोह उत्तर भारत में व्यापक रूप से फैला था। इस क्षेत्र में विद्रोह के नेतृत्व के कारण ही विद्रोह का नमक हर तरफ पहुँच चुका था। इससे पहले महाराष्ट्र में अंग्रेजों ने अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के बाद ८ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन रद्द कर दी थी। इसलिए उनके दत्तक पुत्र नानासाहेब पेशवा निराश हो गए। उन्होंने देश से अंग्रेजों के निष्कासन के लिए जागरूकता बढ़ाने के लिए तीर्थयात्रा पर उत्तर भारत की यात्रा की। अंतिम मुगल सम्राट, बहादुर शाह द्वितीय, विद्रोह के लिए तैयार किया गया था। उन्हें गुप्त और गुप्त भाषा में पत्र दिए गए ताकि भारत के सभी उपनिवेशवासी एक ही समय में ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह कर सकें। इससे १८५७ ई. की शुरूआत में, नानासाहेब पेशवा ने पूरे भारत में अपने प्रचारकों का नेटवर्क फैला दिया था। इस समय महाराष्ट्र के सतर के रंगो बापू आस-पास के गाँवों में जाकर आज़ादी के बारे में अपने विचारों को ऐसी भाषा में समझाते थे जो वहाँ के लोग समझ सकें।[२२] काफ़ी हद तक इसमें से अछूत जाति के कई नौजवानों ने रंगो बापू का समर्थन किया था।

जब रंगो बापू उत्तर भारत का भूमिगत दौरा कर रहे थे, तब उन्हें वहां के अशांत लोकतंत्र का अंदाजा हो गया था। कानपुर में उनकी मुलाकात क्रांतिकारी तात्या टोपे से हुई। तात्या टोपे ने चितूर में नानासाहेब पेशवा और रंगो बापू की बैठक बुलाई। तथ्य यह है कि इस बैठक में दक्षिणी संस्थागत और अन्य लोग शामील हैं, जो उत्तर भारत में बसे पेशवा सत्ता का गठन करने के लिए प्रयास करने वाले थे। उसके बाद रंगो बापू महाराष्ट्र आए और सातारा में विद्रोह के लिए सैनिकों को इकट्ठा करने का कार्य किया। इसके लिए उन्होंने पुना जाकर लहूजी साल्वे से संपर्क किया। लहुजी ने साल्वे को नानासाहेब पेशवा के साथ चर्चा के बारे में बताया। लेकिन लहुजी साल्वे १८५७ ई. से पहले भी, मांग और

रामोशी भारत में ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सेना में शामिल हो गए थे । वे महाराष्ट्र में पेशवा का पुनरुद्धार नहीं चाहते थे। सातारा के छत्रपति शिवाजी महाराज के सिंहासन को पुनः प्राप्त करने के लिए, उन्होंने रंगो बापू को सैन्य शिक्षा में कुशल युवकों की एक सेना दी थी। इनमें से कई युवकों को रंगो बापू ने उत्तर भारत में विद्रोह के लिए भेजा था।[२३]

ब्रिटिश राजतंत्र को नष्ट करने के उद्देश्य से कई क्रांतिकारी एक साथ आए थे। लहुजी साल्वे द्वारा प्रशिक्षित कई क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश शासन का विरोध किया। १८५७ ई. के क्रांतिकारी युद्ध में भाग लिया। उन्होंने अंग्रेजों को बहुत परेशान किया था। उत्तर भारत में कानपुर, झाशी और मेरठ के विद्रोहों में कई क्रांतिकारी शहीद हुए थे। लेकिन चूंकि इनमें से अधिकतर क्रांतिकारी निम्न और अछूत जातियों के हैं, इसलिए ऐसा लगता है कि उन्हें वह ध्यान नहीं मिला जिसके वे हकदार हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लहुजी साल्वे का योगदान उल्लेखनीय है। वह ब्रिटिश शासन का मुकाबला करने और युवाओं को अत्यधिक गुप्त तरीके से सैन्य शिक्षा प्रदान करने के लिए भारत में एक सैन्य अड्डा स्थापित करने वाले पहले व्यक्ति थे। इसीलिए ब्रिटिश शासन के खिलाफ रामोशी और आदिवासी विद्रोह इतने हिंसक थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन को उसी तरह से जवाब दिया था। भारत में ब्रिटिश शासन को नष्ट करने और स्वराज्य को बहाल करने के लिए। १८५७ के विद्रोह के दौरान, लहूजी साल्वे के संरक्षण में कई युवाओं ने देश के लिए सतर के छत्रपति के सिंहासन को वापस पाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है।

सन्दर्भः

१) जाधव किशन निवृति, (लहूजी साल्वे के परपोते), गंजपेठ, पुना, सीधा साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४।

२) टिकेकर अरूण, (सं.), ट्रैस ऑफ़ सिटी पुना कल्चरल कलेक्शन, खंड दुसरा, निलुभाऊ लिमये फाउंडेशन, पुना, प्रथम संस्करण, २०००, पृ. १५९.

३) जाधव किशननिवृति, पूर्वोक्त,,।

४) क्षीरसागर नाना, वीर लहुजी वस्ताद, सेवा सागर संस्था, पुना, प्रथम संस्करण, १९९९, पृ. १९.

५) गोडबोले अनिल, महात्मा फुले, सत्य धर्म के प्रचारक, महिला शूद्र की चैंपियन १८.
६) पिंगले वि. दा., क्रांतिगुरू लहुजी साल्वे, शब्द प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८, पृ. २७.
७) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त,,
८) खडसे खुशाल, आदि क्रांतिगुरू वस्ताद लहुजी साल्वे, नेहा प्रकाशन, नागपुर, २००९ संस्करण, पृ. २१.
९) आठवले सदाशिव, उमाजी राजे, मुक्कम डोंगर, कॉन्टिनेंटल प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, १९९१, पृ. १७.
१०) मोर दिनकर, हिस्ट्री ऑफ ट्रांसफॉर्मेशन इन मॉडर्न महाराष्ट्र, के. एस प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००६, पृ. १२८.
११) खोबरेकर बनाम, गवर्नमेंट, फ्रीडम फाइट्स इन महाराष्ट्र, महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड ऑफ लिटरेचर एंड कल्चर, मुंबई, फर्स्ट एडिशन, १९९४, पृ. ४१.
१२) तड़ाखे शंकर, क्रांतिपिता लहुजी वस्ताद, प्रतिमा प्रकाशन, पुना, तृतीयावृत्ति, २०१४, पृ. ४४.
१३) झांबारे स.ध., महान भारतीय क्रांतिकारक, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडल, मुंबई, फर्स्ट एडिशन, २००७, पृ. २१६.
१४) भंडारे आनंद,(सं.), आदिक्रांतिवीर लहुजी साल्वे संस्मरण, २०००, पृ.१८।
१५) ठाकुर रवींद्र, महात्मा, मेहता पब्लिकेशन हाउस, पुना, प्रथम संस्करण, १९९९, पृ.४.
१६) उगले जी. ए., महात्मा फुले - एक मुक्ती चिंतन, कौशल्य प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०००, पृ. ५३.
१७) अधिक दिनकर, पूर्वोक्त, पृ. ४८७.
१८) चौधरी के. के., झुंजर पुना, कॉन्टिनेंटल प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८, पृष्ठ ४४।
१९) मारवाडे नरेंद्र, क्रांतिसूर्य लहुजी साल्वे, लोक साहित्य प्रकाशन, औरंगाबाद, पहला संस्करण, २०१०, पृ. २४.
२०) ठाकरे सी. के., प्रताप सिंह छत्रपति और रंगो बापूजी, नवभारत प्रकाशन संस्था, मुंबई,

प्रथम संस्करण (पुनर्मुद्रण), १९९८, पृ. ३०.
२१) पाठक अरूणचंद्र, (सं.), पूर्वोक्त, पृ. ८५.
२२) जोगलेकर बी. डी., अंग्रेजी के दृष्टिकोण से १८५७ का विस्फोट, नवचैतन्य प्रकाशन, बोरीवली, प्रथम संस्करण, २००७, पृ. ९४.
२३) तड़ाखे शंकरभाऊ, पुना, सीधा साक्षात्कार, दि. २८ अक्टूबर २०१६.

अध्याय चार

सामाजिक क्षेत्र में लहुजी साल्वे की भागीदारी

४.१ प्रस्तावना
४.२ अस्पृश्यता की रोकथाम
४.३ फुले दम्पति को सामाजिक उपद्रवों से बचाना
४.४ मानवीय धर्म के लिए पुरस्कार
४.५ अवांछित प्रथाओं के खिलाफ लड़ाई
४.६ पौरोहित्य और कट्टरता का विरोध
४.७ अछूतों के एकीकरण के प्रयास
४.८ महिला सुधार के बारे में जागरूकता
४.९ अछूतों के लिए सार्वजनिक कुओं का निर्माण
४.१० शिवाजी महाराज और लहूजी साल्वे की समाधि
संदर्भ

अध्याय चार

सामाजिक क्षेत्र में लहुजी साल्वे की भागीदारी

४.१ प्रस्तावना

उन्नीसवीं सदी को समाज सुधार की सदी माना जाता है। विशेष रूप से इस काल में महाराष्ट्र में विभिन्न क्षेत्रों में सुधारवादी विचार प्रस्तुत किए गए। अंग्रेजों की नीतियों के कारण महाराष्ट्र के युवाओं में सुधारवादी विचार उभर रहे थे। पुना क्षेत्र में इन सुधारों को लागू करने के लिए, बाद में गठित समाज सुधारकों की श्रृंखला में लहुजी साल्वे का पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लहुजी साल्वे सामाजिक रूप से जागरूक व्यक्तित्व थे। इसलिए, वह १८१९ से १८८१ ई. के दौरान उन्होंने सामाजिक और शैक्षिक कार्यो में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसीलिए उनके प्रशिक्षण में शिक्षित हुए कई युवाओं ने क्रांतिकारी कार्यो के साथ-साथ सामाजिक कार्य भी किए। इस काल की सामाजिक असमानता, अवांछनीय प्रथाएं, पुरोहितवाद, अन्यायपूर्ण दमनकारी जाति व्यवस्था, समाज में बुरी परंपराएं, बाल विवाह, विधवा विवाह पर प्रतिबंध, अछूतों को अधिकार देना इसी तरह, लहुजी साल्वे ने अछूतों को शिक्षा, महिलाओं की शिक्षा और शिक्षा के प्रसार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

४.२ अस्पृश्यता की रोकथाम

पेशवा महाराष्ट्र में, एक बहुत ही कर्म प्रणाली की अस्पृश्यता मौजूद थी। इस अस्पृश्यता के शिकार उस समय की सभी निचली जातियाँ और जनजातियाँ थीं। इसलिए, अछूतों का सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में कोई संरक्षक नहीं था। लेकिन इस देश में आई चिकित्सा प्रणाली और समानता बिरादरी के दर्शन ने पारंपरिक प्रणाली के लिए पहली चुनौती पेश की। अंग्रेजों की नीति के कारण निचली जातियों को भी ब्राह्मणों के साथ समान व्यवहार मिलने लगा। मनुष्य के रूप में, वे दूसरों की तरह रहने लगे। लेकिन कर्मठ विचारधारा के लोगों के कारण पेशवा द्वारा ब्रिटिश शासन की शुरूआत के बाद भी यह बात लोगों के दिमाग में नहीं जा रही थी। इसलिए लहुजी साल्वे ने छुआछूत को खत्म करने के लिए एक कार्यक्रम लागू किया था।

चूंकि लहूजी साल्वे एक प्रगतिशील विचारक थे, उन्होंने अपने प्रशिक्षण में सभी जातियों और धर्मो के युवाओं को भर्ती किया। वह अपने शिष्यों को अस्पृश्यता सिखाने वाले पहले व्यक्ति थे। उसी से ज्योतिराव गोविंदराव फुले को प्रोत्साहन मिला और उन्होंने अपना पूरा जीवन छुआछूत की रोकथाम के लिए लगा दिया। इसके अलावा, इस तरह के कई समाज सुधारकों सदाशिव गोवंडे, सखाराम पराजंपे, मोरो वाल्वेकर, रानबा गायकवाड, उस्मान शेख, गणू साळवे, धुराजी आप्पाजी आदि समाज सुधारकों ने लहुजी साथ रहकर उन्होंने सफलता पाई थी।

मनुष्य में इतना अंतर क्यों है जबकि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं? ऐसा सवाल लहूजी से लगातार पूछा जाता था। विशेष रूप से पेशवा काल में लहुजी अछूतों की दयनीय स्थिति से परेशान थे। वह सोचता था कि उसके अछूत भाइयों के उद्धार के लिए उसके शरीर और कला का उपयोग किया जाना चाहिए। इसलिए वे अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए अछूतों की बस्तियों में गए और समानता के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने अपने प्रशिक्षण में सभी अनुयायियों को छुआछूत रोकने की शिक्षा भी दी। वस्ताद लहूजी साल्वे प्रशिक्षण में युवाओं से कहा करते थे कि, आप सभी जातियों के शिष्यों, इस प्रशिक्षण में संयुक्त मल्लविद्या और लष्करी शिक्षा लें और समाज में भी समानता कायम रहें, अस्पृश्यता का पालन न करें। लहुजी ने ऐसी समानता की शिक्षा दी। परिणामस्वरूप, जो लहूजी के संपर्क में आए, वे उदारवादी हो गए। उनमें से कई ने सामाजिक सुधार में भूमिका निभाई। इसलिए लहुजी साल्वे को अस्पृश्यता के मुख्य प्रवर्तक के रूप में उल्लेख किया जाना चाहिए।

महाराष्ट्र की जातिव्यवस्था से ऐसा प्रतीत होता है की, यहां उच्चवर्णियों की जातिव्यवस्था लेकिन निम्न वर्गीय जाति मे भी उच्चनिच्चता रखी गई थी। लहुजी ने देखा था कि एक जाति से दूसरी जाति को कम करके आंका जाने से जाति के भीतर जाति, पंथ और उप-जाति होती है। इसलिए उन्होंने अछूत वर्ग में मतभेदों को दूर करने के लिए अस्पृश्यता के उन्मूलन को प्राथमिकता दी। ऐसे समय में जब अंग्रेजों ने उच्च वर्ग का पक्ष लेने के लिए अछूतों की शिक्षा की उपेक्षा की। उस समय भारत की यात्रा पर आई राणी व्हिक्टोरिया को मिलकर महार, मांगों ने लहुजी साल्वे के नेतृत्व में, जोर देकर कहा कि 'अछूत भी मनुष्य के रूप में रहने के लिए सक्षम होना चाहिए।' इस अछूतों के अनुरोध पर रानी

व्हिक्टोरिया ने आपकी गरीबी और पीड़ा को दूर करने के लिए विनती की थी।[१] अछूत के साथ पेशवा काल में क्रूरता से व्यवहार करने के कारण लहुजी साल्वे ने प्रतिबंद लगाने का प्रयास किया था। इस काल में कैसे अछूतों को इमारत के निर्माण के समय जीवित गाढ़ा जाता था, कैसे जबरदस्ती मजबूर श्रम के लिए अछूतों को करवायां जाता था इसप्रकार की जानकारी रानी विक्टोरिया को दी थी। क्योंकि लहुजी एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे जिन्होंने पेशवा और ब्रिटिश काल का अनुभव किया था। लहुजी साल्वे की मानवीय विचारधारा के कारण पुना क्षेत्र में महार, मांग, चर्मकार, भंगी, साली, माली जैसी उपजातियां कम हो गईं और इन सभी समुदायों के बच्चे एक साथ स्कूल जाने लगे। लहूजी की शिक्षाओं के कारण मुक्ता साल्वे ने अपने निबंध में एक छात्रा के रूप में अस्पृश्यता को समाप्त करने का विचार रखा।[२]

४.३ फुले दम्पति को सामाजिक उपद्रवों से बचाना

हम देखते हैं कि महाराष्ट्र में सामाजिक व्यवस्था प्राचीन काल की तुलना में पेशवा में अधिक मेहनती हो गई है। क्योंकि पेशवा काल में महाराष्ट्र में चार्तुवर्ण व्यवस्था को बल मिला और सभी क्षेत्रों में ब्राह्मणों का एकाधिकार स्थापित हो गया। चूंकि अछूतों के लिए शिक्षा के दरवाजे स्थायी रूप से बंद थे, इस समुदाय का एक बड़ा वर्ग पशुवत जीवन जी रहा था। लेकिन अंग्रेजों के प्रभाव से जगह-जगह शिक्षा सुधार की हवा चल रही थी। इसलिए पुना में ज्योतिराव फुले नाम के एक महापुरुष का उदय हुआ। हालांकि ज्योतिराव फुले शैक्षिक और सामाजिक सुधार के लिए संघर्षरत व्यक्ति थे, लेकिन शुरूआत में उन्हें अकेला छोड़ दिया गया था। क्योंकि इस काल में ब्राह्मण गुरुजी द्वारा अपने अधीन अध्ययनरत गैर-ब्राह्मण युवकों का हाथ पकड़कर देश में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर पेशवा को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था।

जार्ज वाशिंगटन, शिवाजी महाराज आदि के चरित्र पठन ने स्वदेशाभिमान के स्वामी बनकर ज्योतिराव फूले और ब्राह्मण जाति के लंगोटीया यार सदाशिवराव गोवंडे, सखाराम पराजम्पे और मोरो विट्ठल वाल्वेकर ने गोलीबार करना और दाण्डपट्टा की शिक्षा विद्या गुरु लहुजीबुवा से अध्ययन किया था।[४] ब्रिटिश सरकार को विरोध करने के लिए महात्मा ज्योतिराव फुले ने 'गुलामगिरी' पुस्तक में दांण्डपट्टा और निशानेबाजी की कसरत करने के लिए लहुजी साल्वे ने प्रवेश लिया था। इसप्रकार अपने विचार व्यक्त किए हैं। तालीम

प्रशिक्षण में प्रवेश के बाद से ज्योतिराव फुले और लहूजी साल्वे के बीच घनिष्ठ और स्नेही संबंध थे। क्योंकि लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव और उनके दोस्तों को न केवल हथियार बल्कि सामाजिक समानता भी सिखाई। इसलिए ज्योतिराव फुले की सभी समस्याओं को लहूजी साल्वे का सक्रिय समर्थन मिला।

ज्योतिराव और सावित्रीबाई ने पुना से उनके शैक्षिक और सामाजिक सामग्री के लिए अनिष्ठ प्रथाओं को खत्म करने के लिए साम, दाम, भेद नीति से प्रयास किया। इससे गोविंदराव फुले ने अपने कुल की प्रतिष्ठा धूमिल करने की चिंता व्यक्त की थी। इतना ही नहीं, धर्म में बयालीस कुल डूबकर नर्क में जाएंगे, इसलिए उसने समाज के लोगों को बहुओं को स्कूल न भेजने की सलाह दी थी।[५] इतने पर नहीं रूके, उसने सड़क से आते समय सावित्रीबाई को परेशान किया। कनिष्ठ और अछूत बच्चों के माता-पिता से मिलने से उनके मन में भय पैदा हो गया। लेकिन इन सभी कठिन समय में लहुजी साल्वे ने फुले दंपति की हर तरह से रक्षा की। ज्योतिराव फुले के सुधार कार्य ने अछूत समाज में जागरूकता पैदा की थी। इससे पुना में मजदूर वर्ग डर गया था। उन्होंने फूले दंपतिओं के कार्य में बाधा डालने की कोशिश की। ज्योतिराव को मारने के लिए गुंडों को भी भेंजा गया था। लेकिन लहुजी साल्वे के वफादार शिष्यों ने हमले को नाकाम कर दिया। बाद में लहुजी साल्वे ने अपने शिष्यों पर कड़ी नजर रखी ताकि ज्योतिराव और सावित्रीबाई की जान खतरे में न पड़े।

सावित्रीबाई फुले सभी जातियों और धर्मो की लड़कियों को शिक्षित करने का पवित्र कार्य कर रही थीं। हालांकि कर्मठ समाजकंटकों ने सावित्रीबाई को इस कार्य से दूर रखने के लिए हर स्तर पर प्रयास किए। जिस रास्ते से सावित्रीबाई स्कूल जाती थी, उस रास्ते पर गाँव के गुंडे खड़े हो जाते थे और ये गुंडे सड़क पर आते-जाते सावित्रीबाई का अपमान करते थे। साथ ही कुछ मेहनती सामाजिक बदमाश सावित्रीबाई के शरीर पर गोबर, मिट्टी और कीचड़ फेंक देते थे। सड़क पर मारपीट के साथ-साथ स्कूल में भी मारपीट की गई। अतः अध्यापन का कार्य कक्षा की खिड़कियाँ बंद करके किया जाता था।[६] जिस दिन से लहूजी को इस खबर का पता चला तब से लहुजी साल्वे दो युवकों को सावित्रीबाई की रक्षा के लिए अपने कानों से उपर ऊंचा दण्डा लेकर भेजते थे ताकि स्कूल आते समय सावित्रीबाई को कोई परेशानी न कर सकें। लहूजी की इस सामाजिक और सक्रिय खोज

ने संकटमोचनों को एक अच्छी सीख दी थी। बाद के समय में लहूजी साल्वे के संरक्षण के कारण किसी ने भी ज्योतिराव और सावित्रीबाई को परेशान करने की हिम्मत नहीं की।[७] इसलिए, यह देखा जाता है कि लहूजी साल्वे ने फुले दम्पति की हर तरह से रक्षा की।

४.४ मानवीय धर्म के लिए पुरस्कार

छत्रपति शिवाजी महाराज के सर्व-धार्मिक रवैये के कारण, महाराष्ट्र में सभी जातियों और धर्मो को समान न्याय मिला। इसलिए शिवाजी महाराज के हर मावल प्रांत में मानवीय धर्म की भावना पैदा हुई कि हम सभी जातियों और धर्मो के लोग हैं। यह मानवीय विचार शुरू से ही लहूजी साल्वे के घर में निहित था। लहूजी साल्वे का परिवार सभी से इंसानीय का व्यवहार करता था और इंसानों और जानवरों के लिए उनके मन में बहुत सम्मान था। इसलिए, युवाओं को मल्लविद्या और लष्करी शिक्षा पढ़ाते हुए, लहुजी साल्वे ने कभी भी उच्च मानकों को बनाए नहीं रखा बल्कि युवाओं को मानवीय धर्म सिखाया था। इसलिए महाराष्ट्र के युवा जाति और धर्म के बंधनों को तोड़कर लहुजी की ओर आकर्षित हुए थे।[८]

हालाँकि पेशवा काल के अस्त के साथ ही महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की शुरूआत हुई, लेकिन इसकी जड़ें समाज में गहरी थीं। समाज को इससे बाहर निकालना बहुत मुश्किल था। इसलिए समाज में बहुत कर्मठता छायी हुई थी। विशेष रूप से अस्पृश्यता हर जगह व्यापक रूप से देखी जा रही थी। अछूतों पर अन्याय किया जा रहा था। अछूतों के इस अन्याय और उत्पीड़न के लिए कोई जिम्मेदार नहीं था। अछूत भले ही पारंपरिक हिंदू धर्म का पालन कर रहे थे, लेकिन उन्हें अपनी छाया को छूने की अनुमति नहीं थी। धर्म के नाम पर उन पर अंधविश्वास फैलाया गया। ऐसा कहा जाता है कि, गुल पहाड़ी के मैदान पर अछूतों की नसें को बॉल और तलवार का हैंडल करके खेला जाता था। ऐसी अमानवीय स्थिति थी। उच्चवर्णीयों के घरों के सामने भी खुल कर जाना संभव नहीं था। लहुजी साल्वे ने ऐसे अमानवीय धर्म का विरोध किया। ऐसा इसलिए है क्योंकि लहुजी साल्वे ने गुलामी की बेड़ीयों को तोड़कर पूरे समाज को लगातार मानवतावाद का धर्म सिखाया है जिसमें उन्हें सभी समाज को स्वतंत्रता प्रदान की।

४.५ अवांछनीय प्रथाओं के खिलाफ लड़ना

पेशवा काल के दौरान, महाराष्ट्र में अवांछनीय प्रथाएं व्याप्त थीं। ये अवांछनीय प्रथाएं केवल निचली जातियों और अछूतों में ही नहीं, बल्कि उच्च जातियों में भी थीं। लेकिन

निम्न जाति और अछूत समाज में धर्म और परंपरा के नाम पर सैकड़ों अवांछित प्रथाएं थीं। परिणामस्वरूप, गांवों में रहने वाले अछूत समाज में इस तरह की प्रथाओं का सख्ती से पालन किया जाने लगा। लहूजी साल्वे के समय में यह प्रथा पुना क्षेत्र में प्रचलित थी। लहूजी समझ गए कि कैसे गरीब समाज निचली जातियों और अछूतों की अवांछनीय प्रथाओं का शिकार हो रहा है। उस समय उन्होंने अपने समुदाय के सदस्यों से इस अवांछनीय प्रथा को छोड़ने की अपील की थी।

अवांछित प्रथाओं के खिलाफ लहुजी साल्वे की लड़ाई व्यापक थी। लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले के साथ अछूत समुदाय में अवांछनीय प्रथाओं को बंद करने का समर्थन किया। उच्च समाज में बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह प्रतिबंध, हज्जामख़ाना कुछ प्रथाएँ थीं। सती प्रथा पर प्रतिबंध लगाने वाला कानून १८२९ ई. में उनके काल में आगमन के बाद, पुना के कर्मठ सनातनी ब्राह्मणों ने केशवपन की कुप्रथा को प्रोत्साहित किया। इसलिए, अपने पति की मृत्यु के बाद, ब्राह्मण महिलाओं को अपने बाल काटने पड़े। इस अमानवीय प्रथा ने महिलाओं का शोषण किया। जब ज्योतिराव फुले ने नाभिक समुदाय में इस अवांछनीय प्रथा का प्रसार किया और अपनी बहन के सिर पर वस्तरा नहीं चलाने का अनुरोध किया था, तब नाभिक समुदाय ने उनका समर्थन किया। १८६५ ई. में एक दिवसीय हड़ताल की गई थी।[९] ज्योतिराव फुले की तरह, लहुजी साल्वे ने भी इस अवांछनीय प्रथा के खिलाफ नाभिक समुदाय को जागरूक करके अपना विचार बदल दिया था। इसी प्रकार यदि नाभिक समुदाय के इस आंदोलन का सनातनवादियों द्वारा विरोध किया जाता है, तो मैं इसके लिए पूरी तरह जिम्मेदार करूंगा। क्योंकि ज्योतिराव फुले का सामाजिक कार्य संपूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए है। इसलिए हमें उनके काम का समर्थन करना चाहिए। लहुजी साल्वे ने नाभिक समुदाय को आश्वासन दिया था।[१०] कि किसी भी अप्रिय घटना की स्थिति में वह अपने समुदाय की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होंगे। लहुजी साल्वे बाल विवाह, जरथ कुमारी विवाह और विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध लगाने की प्रथा के भी खिलाफ थे। उन्होंने अपने परिवार के किसी भी सदस्य पर बाल विवाह का दबाव नहीं डाला और न ही जरथ कुमारी के विवाह का समर्थन किया। लहुजी साल्वे को इस बात का बहुत दुख हुआ कि इस काल में बड़ी संख्या में जरथ कुमारी विवाह और बाल विवाह

होने के कारण महिलाओं का पूरा जीवन बर्बाद हो रहा था। इसके लिए वे ज्योतिराव फुले के कार्यो में निरंतर भाग लेते रहे।

शिक्षा की कमी के कारण कनिष्ठ और अछूत वर्गो में अंधविश्वास व्याप्त था। देवदासी, मुरळी कलाकारों को छोडना, पोतराज, पशुबलि, नवस, व्रत, धागे-डोरे, यात्रा-जत्रा, बलिदान, पर्यटन मेले आदि देवी-देवताओं के नाम पर अंधविश्वास आयोजित किए जाता थे। उन पर प्रतिबंध लगा दिया था। ऐसी स्थितियों में कुछ लोग स्वार्थी बन गए थे। चूंकि लहूजी साल्वे हमेशा ज्योतिराव फुले के साथ थे, वे दोनों समाज की अवांछनीय प्रथाओं के खिलाफ सोचते थे। यह पक्का हो गया था कि लहुजी साल्वे, ये नस्लें तब तक आगे नहीं बढ़ेंगी जब तक कि आपत्तिजनक प्रथाएं जाति और अछूतों को नीचा न दिखा दें। इसलिए लहुजी साल्वे ने इन सामाजिक रूप से अवांछनीय प्रथाओं के खिलाफ लड़ाई लड़ी। परिणामस्वरूप, अछूतों में सुधार होने लगा था।

४.६ पौरोहित्यशाही और भोंदूगिरी का विरोध

लहुजी साल्वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने समाज सुधार का पुरस्कार किया था। अपने पूरे जीवन में, उन्होंने समानता, मानवता और न्याय के सिद्धांतों को अपनाया। नीति और कृति में कभी कोई फर्क नहीं पड़ा और इसकी शुरूआत अपने घर से की थी। लहूजी ने अपने जीवन में कभी पुरोहिती को स्थान नहीं दिया।[११] वास्तव में हिंदू संस्कृति कहती है, मनुष्य के जन्म से लेकर मनुष्य की मृत्यु तक, विभिन्न अनुष्ठानों को करने के लिए एक पुजारी की आवश्यकता होती है। लेकिन लहुजी इस बात से पूरी तरह वाकिफ थे कि यह पुरोहित वर्ग धार्मिक विचारों के आधार पर गरीबों और आम लोगों का शोषण कर रहा है। इसलिए लहुजी ने अपने शिष्यों को संदेश देते हुए कहा कि केवल दो जातियां हैं, उसमें स्त्री और पुरूष है। और कोई भी जाति आधारित भेदभाव भगवान को स्वीकार्य नहीं है। न ही कोई भगवान लूटने को कहता है। इसलिए सच्ची मानवता को पुरस्कृत करें। समय-समय पर लहुजी ने पौरोहित्य और कट्टरता के शिकार न होने का संदेश दिया।

ज्योतिराव फुले ने पुना में कनिष्ठ जातियों और अछूतों के लिए स्कूल शुरू किए। इस कार्य के लिए लहूजी साल्वे उनके साथ मजबूती से खड़े रहे। इसलिए, हजारों वर्षो से ज्ञान से वंचित निम्न और अछूत जातियों के लिए शिक्षा की शुरूआत पुना में भिक्षुकशाही की प्रथा की शुरूआत थी। अगर ज्योतिराव ने बागवानों के बच्चों के साथ महार-मांग को

शिक्षा दी तो हमें देवबप्पा कौन कहेगा? हमारे पेट कैसे चलें? हमारी सेवा कौन करेगा? पुरोहितों के सामने ऐसे सैकड़ों प्रश्न उठ खड़े हुए थे।[१२] क्योंकि ब्रिटिश काल में भी पुरोहितों का प्रभाव बहुत अधिक था। देश के किसान, खेतीहर मजदूर को जन्म से लेकर इस धारणा को कायम रखनेवाले पुजारी थे ऐसा विचार ज्योतिराव फुले का था। पुजारी कौवे हैं जो किसान के शरीर पर चोंच मारते हैं। इसी संदर्भ में ज्योतिराव फुले ने 'ब्राह्मणाचे कसब' इस पुस्तक में ब्राह्मणों के कार्यो का व्यंग्यता से चित्रण किया और महाराष्ट्र में कुनबी, माली, मांग और महार को यह पुस्तक भेंट की। लहूजी साल्वे और ज्योतिराव फुले पुरोहितवाद और पाखंड के बारे में सोचते थे। हमारे देश के अधिकांश लोगों की अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण ही पौरोहित्य और पाखंड बच गया है। इसके लिए लोगों को जागरूक किया जाना चाहिए। लहूजी साल्वे और ज्योतिराव फुले आश्वस्त थे कि निम्न और अछूत वर्गों के पुरोहितत्व और पाखंड से भारी नुकसान हुआ है। लहुजी का घर उस समय सुधारवादी विचारों की कार्यशाला था। वास्तव में, उन दिनों हर जगह बहुत ही सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठान किए जाते थे और पुजारियों को घर पर ही देवताओं के रूप में अनुष्ठान करने के लिए कहा जाता था। अछूत समाज अंधविश्वास से ग्रसित था। धर्म के नाम पर बच्चों की रिहाई की गई थी। अछूत समाज में देव-धर्म के नाम पर बच्चों छोंड दिया जाता था। बाल बढ़ना, पोतराज, और आराधिनी छोंडी जाता थी, भिक्षा मांगना, करनी-धरनी, भानामति आदि प्रथाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। इसीप्रकार पशु बलि देने के लिए, राक्षसी उपचार, भूत-प्रेत, जो कई प्रकार के अंधविश्वास में समाज चल रहा था। लहुजी ने अपने मोहल्ले में ऐसे पाखंडियों को घूमने नहीं दिया।

लहूजी के भतीजी मुक्ता ने अपने निबंध में पेशवा में अछूत समुदाय की स्थिति का वर्णन किया है। सोवळे पहनकर नाचने वाले लोगों के चलने का एकमात्र कारण था की, हम कुछ लोगों के साथ धन्य थे। इस अहसास ने उन्हें खुश कर दिया। लेकिन हम सिलाई प्रतिबंध से कितना पीड़ित हैं। क्या उसके पास शुद्धता वाला हृदय है? कितना अमानवीय व्यवहार था उन लोगों का जो अछूतों के स्पर्श को नकारते थे और सोवले-ओवले की आवाज से खुद को पुजारी मानते थे। मुक्ता साल्वे ने अपने निबंध में इसके खिलाफ आवाज उठाई है। इसका मतलब है कि मुक्ता के घर में पाखंड और पुरोहितवाद के खिलाफ चर्चा हुई। लहूजी साल्वे बचपन से मुक्तास बाजीराव द्वितीय और भटशाही के अत्याचार को

सुनाया करते थे। उसी से मुक्ता का बचपन का मन सोच समझकर विवेकवादी विचार कर रहा था। अर्थात् मुक्ता का निबंध और उनमें लिखित विचारों में वस्ताद लहुजी के संस्कारों का ही लिखित रूप है। लहुजी ने अछूतों में वही भोंडुगिरी विरोधी विचार बोने की कोशिश की थी।

४.७ अछूतों के एकीकरण का प्रयास

लहुजी साल्वे एक समाज सुधारक थे जो जाति और धर्म से परे थे। विशेष रूप से, वह जाति व्यवस्था के घोर विरोधी थे। उनकी कंपनी में आए लोगों का इतिहास इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे लहुजी साल्वे ने उस समय अछूत और अछूत समाज को एकजुट करने का प्रयास किया था। लहुजी ने इस समय तालीम सुस्थापित प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण तत्व था, इन तालीम अभ्यासों की पहुँच उन सभी को मुक्त करने के लिए स्कूल है। इसलिए हम देखते हैं कि लहूजी के प्रशिक्षण में महार, मांग, चंबर, आदिवासी, कुनबी, धनगर, माली, कोली, ब्राह्मण, मराठा, कुंभार, मुस्लिम जैसे सभी जातियों और धर्मो के युवा लष्करी शिक्षा के लिए आते थे। एक दूसरे के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करें। लहुजी साल्वे के सभी धर्मो की समानता के सिद्धांत के कारण, उनके तालीम में मूर्त-अछूत भेद कभी नहीं रहा था।[१३]

लहुजी साल्वे को इस दौरान दो तरह के जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। प्रारंभिक स्पर्श समूह में कर्मठ जाति के लोगों ने फुले दंपति के सुधार कार्य का विरोध किया। क्योंकि फुले दंपति अछूतों को शिक्षा का अधिकार देना चाहते थे। दूसरी ओर, लहुजी को अछूतों के बीच जातीय संघर्ष भी सहना पड़ा। क्योंकि अछूत जाति में भी एक जाति दूसरे की कुरूपता धारण करती है। चंबार महार के जल में नहीं जाते, महार मंगा में नहीं जाते। उनके बीच कभी व्यापार और कभी सम्मान को लेकर झगड़े होते थे।[१४] महाराष्ट्र की जाति व्यवस्था में, ब्राह्मणों के रूप में कर्मठ जाति पिछड़े और अन्य पिछड़े समूहों में उभर आई थी। हालांकि, लहूजी की जाति की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति के कारण, रणबा महार और धूराजी अपाजी चमार ने लहूजी साल्वे की मदद की और अछूत जातियों के एकीकरण में मदद की। लहुजी साल्वे अछूतों के पास जाते थे और उनसे भेदभाव बंद करने को कहते थे। नतीजतन, अछूत जाति के कई युवा लहूजी के काम में भारी रूप से शामिल थे।

महात्मा ज्योतिराव फुले ने पुना क्षेत्र में अछूत लड़कों और लड़कियों के लिए तीन स्कूलों की स्थापना की थी। इस स्कूल की स्थापना में लहुजी साल्वे की सलाह और सहयोग बहुत महत्वपूर्ण था। ये स्कूल जानबूझकर मांग, महार, चर्माकार और भंगी क्षेत्रों में शुरू किए गए और अपने सहयोगी रानबा गायकवाड़ (महार) की मदद से लहुजी ने महारवाड़े में हर जगह शैक्षिक जागरूकता पैदा करके लड़कियों से स्कूल आने की अपील की। उन्होंने मुस्लिम समुदाय से अपने दोस्त उस्मान शेख के साथ अपने बच्चों को स्कूल भेजने की भी अपील की। लहुजी साल्वे ने सामाजिक जागृति के माध्यम से अछूतों को समाज की मुख्य धारा में लाने का काम किया। इससे ज्योतिराव फुले द्वारा स्थापित सभी अछूतों के स्कूल में अछूतों की कई जातियों के बच्चे आपस में जाति भेद को छोड़कर एक साथ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इससे जातीय संघर्ष को कम करने में काफी मदद मिली थी।

४.८ महिलाओं की उन्नति पर जागरूकता

लहुजी साल्वे का परिवार शिव काल के समय से ही एक सम्मानित और सुधारवादी परिवार था। इस परिवार में शुरू से ही महिलाओं का सम्मान किया जाता था। इस परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं से जानबूझकर सलाह ली जाती थी। लहूजी के जीवन में उनके माता-पिता की संगत का अधिक लाभ नहीं हुआ। लेकिन चूंकि उनके पिता राघोजी सेना में सेवारत थे, इसलिए लहुजी अपनी मां विठाबाई की छत्रछाया में बड़े हुए। उस समय विठबाई ने लहूजी पर मानवता का संस्कार किया। पेशवा काल में महिलाओं के साथ हुए अन्याय से विठाबाई की पत्नी को गहरा दुख हुआ। वहां से वह अपने बेटे लहुजी को पेशवा महिलाओं के खिलाफ अत्याचारों की कहानियां सुनाती थी। हर पुरुष को स्त्री के पीछे मजबूती से खड़ा होना चाहिए, उनकी माता विठाबाई ने सिखाया था की, स्त्री मन की बात जाननी चाहिए।

महाराष्ट्र में १८१८ ई. में पेशवा काल के अस्त के बाद स्थापित समाज में जातीयता, स्त्रीदस्य, सतीप्रथा, जराथकुमारी विवाह, बाल विवाह, महिला गर्भपात, महिला शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, महाराष्ट्र में विधवा विवाह प्रतिबंध, प्रथा-बीज परंपराओं का उपयोग किया गया था। लेकिन महिलाओं के प्रति लहुजी साल्वे का रवैया बहुत उदार था। इसके कई उदाहरण आप विभिन्न घटनाओं से देख सकते हैं। एक ओर, इस काल में बाल विवाह की प्रथा व्यापक थी। हालांकि, लहुजी ने अपनी बहन से शादी करने से इनकार कर

दिया। उन्होंने अपनी भतीजी मुक्ता के बाल विवाह को भी रोक दिया और उनकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया था। इसलिए मुक्ता उस समय के अछूत समाज में एक शिक्षित लड़की बनी थी।

इस काल में ज्योतीराव फुले के प्रयासों से महाराष्ट्र में महिला सुधार की शुरूआत हुई। ज्योतिराव फुले ने विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने बाल हत्या की रोकथाम के लिए एक घर भी बनाया। विधवाओं के बाल झड़ने से रोकने के लिए पुना में हड़ताल की घोषणा किया गया था। इस संदर्भ में लहुजी ने नाभिक समुदाय से अपील कर जागरूकता फैलाई और उनसे बालों के झड़ने का विरोध करने की अपील की थी। लहुजी साल्वे ने नाभिक समुदाय के काम का समर्थन करने और महिला सुधार के बारे में जागरूकता बढ़ाने का बहुत अच्छा काम किया है कि मेरे पहलवान आपको परेशान करने वाले मेहनती लोगों को देखेंगे। महिला सुधार पर उनके काम ने महाराष्ट्र में विभिन्न सुधार आंदोलनों को गति दी है।

४.९ अछूतों के लिए सार्वजनिक कुओं का निर्माण

लहुजी साल्वे का काम विविध था। साथ ही, उन्होंने उच्च जातियों के अन्याय और उत्पीड़न का विरोध करने के साथ-साथ समाज में पाखंड और अवांछनीय प्रथाओं और सभी प्रकार के शोषण के उन्मूलन के लिए और अछूतों समाज में आत्म-सम्मान जगाने के लिए कई सामाजिक सुधार किए। लहुजी साल्वे उस समय अछूत समुदाय के हिमायती के रूप में जाने जाते थे। खास बात यह थी कि उनका काम उन सभी जातियों और कबीलों को आगे ले जाना था जो अछूत मानी जाती थीं और उन्हें उस समय के क्रांतिकारी कार्य के रूप में समझा जाना चाहिए। क्योंकि यह भारतीय जाति व्यवस्था है। यहां जातिवाद का बोलबाला था। महार, मांग, चर्मकार, भंगी जैसी अछूत जातियों में भी शत्रुता थी। लेकिन लहुजी की बात सभी ने मान ली और उनके सामाजिक कार्यो का समर्थन किया। क्योंकि लहूजी सबकी समस्याओं का समाधान कर रहे थे। उन दिनों पीने के पानी की सबसे बड़ी समस्या थी।

पुना में कर्मठ सनातनी के साथ-साथ निचली जाति के समूह बड़े पैमाने पर जातिवाद और अस्पृश्यता का पालन कर रहे थे और अछूत समुदाय को पीने का पानी भी नहीं दिया जा रहा था। पुना में मांग लोगों के लिए कोई कुआं नहीं था। पानी के लिए उन्हें रोज कड़ी

मेहनत करनी पड़ती थी। गिरोह के सदस्य कोंडीयां जब देते थे तब कोई उन्हें पानी से घड़ा भरा पानी शुद्रों को मिलता था। इसके लिए उन्हें बिना देर किए एक घंटा, डेढ़ घंटे तक रोने के अलावा पानी नहीं मिलता था।[१५] अगर किसी अछूत को पीने के लिए पानी मिल दिया तो उसकी कोई खैर नही थी। वह पानी से व्याकुल होकर मर भी जाता था। अछूतों को जानवरों की तरह रहना पड़ा। अछूतों को घुटभर पानी के लिए दरबदर भटकना पडता था। पाणवठा पर छूआछूत हुआ तो अछूतों को ढ़ेर के कचरें की तरह जिंदा जलाया जा रहा था। उस समय अछूतों को पानी की सख्त जरूरत थी। घिसदी पुल के पास पानी का एक कुंड था। वहाँ सभी अछूतों को पानी मिलता था लेकिन जब गर्मी आती थी तो बहुत भीड़भाड पड़ती थी। तब अछूतों को पानी के लिए इधर-उभर भटकना पड़ता था। अपने भाइयों की हालत देखकर लहुजी परेशान हो जाते थे।

अपने भाइयों की पानी की समस्या को हल करने के लिए, लहुजी ने अछूत समुदाय के सभी युवाओं को एक साथ लाया और कहा कि हम सभी से पीने के पानी की भीख मांगे बिना अपनी पानी की समस्या का समाधान करेंगें। इसके लिए सभी ने समझाया कि कुओं की खुदाई और निर्माण के लिए कड़ी मेहनत से किया जाना चाहिए। उस समय सभी युवकों ने स्वयंस्फूर्त प्रतिसाद देकर इस सामाजिक कार्य का समर्थन किया और उन सभी ने मिलकर उमाल्या के स्थान पर एक पानी का कुआं खोदा। उसके बाद पुना में १८२३ में, एक सार्वजनिक कुआं अच्छी तरह का निर्माण हुआ था।[१६] इसप्रकार से अछूतों के पीने के पानी की समस्या स्थायी रूप से हल की गयी थी, लेकिन कुछ समय के बाद पुना में पीने के पानी की एक गंभीर समस्या निर्माण हूई। फिर ज्योतिराव फुले १८६८ ई. में उन्होंने अछूतों के लिए पीने के पानी के लिए अपने घर में एक कुआं और एक तालाब खोला था, यह बहुत ही मानवीय कार्य था।

४.१० शिवाजी महाराज और लहूजी साल्वे की समाधि

लहूजी साल्वे का परिवार लष्करी कर्तबगार बताने वालल परिवार था। लहूजी के पड दादा का नाम भी लहूजी था। वह हथियारों की कला में पारंगत थे और पुरंदर किले की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार थे। छत्रपति शिवाजी महाराज ने बड़े विश्वास के साथ उन्हें अनेक उत्तरदायित्व सौंपे था। थोरले लहूजी एक ऐसे व्यक्ति थे जो विभिन्न हथियारों को जानते थे। विशेष रूप से, वे इस हथियार में विशेष कौशल हासिल करते कर चुके थे। अफजल खान

के जीवा महल के दर्शन के अवसर पर, दाण्डपट्टा स्वयं महान लहुजी द्वारा बनाया गया था। इस दाण्डपट्टा के कारण शिवाजी महाराज की जान बच गई। इस सारे इतिहास का प्रभाव लहुजी पर शुरू से ही रहा था। इसका अहसास एक बार फिर ज्योतिराव फुले के समय में देखने को मिला था।

लहुजी साल्वे को हमेशा महाराष्ट्र के किलों पर गर्व था। छत्रपति शिवाजी के समय से ही लहुजी अपने प्रशिक्षण में युवाओं को बताते थे कि इन किलों पर उनके पूर्वजों का खून बहाया गया है। लहूजी साल्वे के पास सैन्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए कई युवक थे। वह सभी युवाओं को पुरंदर, सिंहगढ़, प्रतापगढ़ और रायगढ़ किलों में महीने में दो बार निशानेबाजी, घुड़सवारी और गनिमिकावा के युद्ध तकनीकों का प्रदर्शन और उपयोग करने के लिए ले जाते थे। लहूजी मैदान पर हथियारों और युद्धाभ्यास का प्रदर्शन करते थे। उन्होंने अपने शिष्यों के साथ युद्ध प्रदर्शन भी किए। एक ज़माने में १८४८ ई. में वे अपने शिष्यों के साथ रायगढ़ किले में गए थे। उनके साथ उनके शिष्य ज्योतिराव फुले और अन्य शिष्य भी थे। शुरूआत में लहुजी साल्वे ने अपने सभी शिष्यों को रायगढ़ किले की जानकारी दी और छत्रपति शिवाजी महाराज की समाधि दिखाई।[१७] इस समाधि की हालत खराब थी। इस समय ज्योतिराव फुले ने सबसे पहले समाधि के परिसर की सफाई की और समाधि की मरम्मत की। सभी ने मिलकर समाधि पर पुष्पवर्षाव किया। इसी सिलसिले में दिनबंधू अखबार में खबर आई थी कि छत्रपति शिवाजी महाराज की समाधि को तोड़ दिया गया है और उस पर घास और झाड़ियां उग आई जा रही हैं। यह वृत्तांत प्रसिद्ध हुआ था। ज्योतीराव को शिवाजी महाराज पर बहुत गर्व था। इसी भावना के साथ उन्होंने शिवाजी महाराज पर जून १८६९ में पोवाड़ा लिखा था और शिव जयंती का उत्सव सबसे पहले पुना में शुरू किया था।

लहुजी साल्वे बचपन से ही कई किलों से जुड़े हुए थे, इसलिए वे स्वराज्य के सभी किलों के साथ-साथ छत्रपति शिवाजी महाराज की समाधि को भी जानते थे। लेकिन उनके शिष्य ज्योतिराव फुले और उनके द्वारा लिखे गए पोवाड़ा के कार्य ने पूरे महाराष्ट्र का ध्यान शिवाजी महाराज की समाधि की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। इसमें लहुजी साल्वे का योगदान महत्वपूर्ण था।

सन्दर्भ

१) मारवाडे नरेंद्र, क्रांतिसूर्य लहूजी साल्वे, लोक साहित्य प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण २०१०, पृ. १३.

२) ज्ञानोदय, दि. १५ फरवरी, १८५५ और दि. १ मार्च, १८५५.

३) पाटिल पंढरीनाथ, ज्योतिबा फुले के चरित्र, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथम संस्करण, २००७, पृ. ५.

४) गोवंडे वि. भा., त्रिमूर्तिदर्शन या सदाशिव गोवंडे का चरित्र, प्रकाशिका श्रीमती लक्ष्मी गोवंडे, पुना, प्रथमावृत्ति, १, ९, ५३, पृ. ३३.

५) पाटिल पंढरीनाथ, पूर्वोक्त, पृ. १५.

६) उगले जी. ए., सावित्रीबाई फुले, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, द्वितीय संस्करण, २००९, पृ. १४.

७) वाघमारे गणपत, आदिक्रांतिगुरु लहूजी साल्वे, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०१२, पृष्ठ. २३.

८) राक्षे रमेश, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. १९ मई २०१८.

९) नरके हरि (सं.), महात्मा फुले गौरव ग्रंथ, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, एम. फुले, राजर्षि शाहू चरित्र प्रकाशन समिति, मुंबई, संशोधित तृतीयक, २००६, पृ. १२.

१०) तड़ाखे शंकरभाऊ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. २८ अक्टूबर २०१६.

११) जाधव किशन निवृति (लहुजी साल्वे के पड दादा), गंजपेठ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४.

१२) पाटील पंढरीनाथ, पूर्वोक्त, पृ. २३.

१३) शेवडे सच्चिदानंद, वासुदेव बलवंत फड़के, अभिजीत प्रकाशन, पुना, द्वितीय संस्करण, २००९, पृ. २३.

१४) अत्रे त्रि. ना., गावगाडा, समन्वय प्रकाशन, कोल्हापुर, संस्करण २०१२, पृ. २०३.

१५) आत्मज्ञान, दि. १५ मार्च, १८५५.

१६) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।

१७) तड़ाखे शंकरभाऊ, पूर्वोक्त।

अध्याय पांच

शिक्षा के क्षेत्र में लहुजी साल्वे का योगदान

५.१ प्रस्तावना

५.२ अछूतों को शिक्षा

५.३ अछूतों की विचारधारा के प्रचारक

५.४ महिला शिक्षा को बढ़ावा देना

५.५ प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना

५.६ शैक्षणिक विरोधियों की खबर

५.७ अभय शिक्षकों को

५.८ स्कूल के लिए वित्तीय सहायता और पुस्तकालय का निर्माण

५.९ अछूत भाइयों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की शुरूआत

संदर्भ

अध्याय पांच

शिक्षा के क्षेत्र में लहुजी साल्वे का योगदान

५.१ प्रस्तावना

हजारों वर्षो से ज्ञान से वंचित निम्न और अछूत जातियों के लिए ब्रिटिश शासन के दौरान शिक्षा के द्वार खुलने से शिक्षा के सामाजिक विस्तार में मदद मिली। लेकिन ब्रिटिश के काल में शिक्षा के वितरण के सिद्धांत के अनुसार, शिक्षा सामान्य आबादी तक नहीं पहुंची बल्कि उच्च जातियों तक ही सीमित थी। इस दौरान कुछ ईसाई मिशनरियों ने पढ़ाया। लेकिन शिक्षा निचली जातियों और अछूतों तक नहीं पहुंची। इस समय पहली बार ज्योतिराव फुले ने अछूत जातियों और लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता दी। इस समय इस कार्य में उन्हें लहूजी साल्वे का पूर्णतः समर्थन प्राप्त था।

लहुजी साल्वे इस बात से अवगत थे कि अछूतों के समग्र विकास के लिए शिक्षा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि भारतीय महिलाओं है। इसलिए, जब वे तालीम प्रशिक्षण में पढ़ रहे थे, तब उन्होंने ज्योतिराव फुले का ध्यान अछूतों की शिक्षा की ओर आकर्षित किया। महात्मा ज्योतिराव फुले के अथक प्रयासों ने अछूतों के लिए शिक्षा के लिए द्वार खोल दिए। लहूजी साल्वे इसमें सक्रिय रूप से शामिल थे। ऐसा इसलिए है क्योंकि ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले के शैक्षिक कार्यो के संरक्षक के रूप में लहूजी साल्वे की भूमिका बाद की अवधि में महत्वपूर्ण हो गई। उन्होंने फुले दंपति को स्कूल शुरू करने, चंदा इकट्ठा करने और अछूतों के बीच शिक्षा फैलाने के लिए जगह दिलाने में मदद की। इसप्रकार से पुना की तरह, लहुजी साल्वे ने अहमदनगर, नासिक, पंढरपुर और सातारा में अछूतों को शिक्षा के महत्व के बारे में समझाने के लिए कड़ी मेहनत की।

५.२ अछूतों के लिए शिक्षा

भारत में हजारों वर्षो से शूद्रों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। अतिशूद्र की हालत इससे भी बहुत खराब थी। पानी का अभाव, भूखा पेट रहना, कोई आस-पास रहने देता नहीं, कोई पानी पिलाता नहीं, उसके धंधे अच्छे चलते नहीं, झाडू लगाना, गंदगी साफ करना, मरे हुए जानवरो को खिंचना, बांसी खाना खाना इसप्रकार की अछूतों की स्थिती थी। उन्हें कक्षा में ज्ञान पढ़ाना बहुत बड़ा पाप समझा जाता था।[१] अनंत काल के दमन के

कारण अछूत मृत्यु के कगार पर थे। अछूत समाज में आत्म-सुधार के लिए आवश्यक आत्म-सम्मान जीवित नहीं था। उसके कारण पापपुण्य की लकीर के फकीर, असमझदारी, उदासीनता, तीव्र नस्लवाद और वंश के अंधविश्वासों और पापों, उस समय शिक्षा प्राप्त न करने के कारण अछूत समाज के नशीब में एक भयानक उदासीनता छायी हुई थी। लेकिन ब्रिटिश सत्ता की समतावादी भूमिका और लहुजी साल्वे और ज्योतिराव फुले द्वारा अस्पृश्यता के उन्मूलन के कारण, अछूत शिक्षा के महत्व को समझने लगे। जबकि ज्योतिराव फुले ने शिक्षा के महत्व पर जोर दिया, वोट शिक्षा के बिना चला गया। नीति बिना वोट के चली गई। नीति के बिना गति। वित्त गति के बिना चला गया। शूद्र ने बिना वित्त के खर्च किया। अज्ञान ने बहुत दुर्भाग्य किया। उन्होंने समय-समय पर अछूतों को शिक्षित करने के महत्व को समझाया और अछूतों के लिए कई स्कूलों की स्थापना की। फुले ने कहा, 'लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने से हिचक रहे थे।' गरीबी के कारण, कई अछूत माता-पिता अपने बच्चों को भीख मांगने या अपने बच्चों को पालने के लिए भेजते हैं। ये बच्चे आलसी और चंचल थे। गरीबी और अज्ञानता के कारण उन्हें शिक्षा पसंद नहीं थी। लेकिन लहूजी बीन रघु राउत मांग और राणबा महार ने अपनी जातियों को समझाया कि वे शिक्षा से कैसे लाभान्वित होते हैं और अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए तैयार होते हैं। ज्योतिराव फुले ने समाज को खरोंच से सुधारने का फैसला किया। उन्होंने अन्य सुधारकों की तरह गपशप ही नहीं की बल्कि इसमें कार्रवाई जोड़कर महार, मांग, चमार और ढ़ोर के लिए स्कूल शुरू किए। इससे पहले कभी भी शूद्र-अतिशूद्रों को शिक्षित करने का प्रयास नहीं किया गया था। जैसे ही ज्योतिराव फुले ने एक अछूत पड़ोस में एक स्कूल शुरू किया, लहूजी साल्वे और राणबा महार ने उनकी बहुत मदद की। लेकिन ज्योतिराव के इन साथियों पर ध्यान नहीं गया। ज्योतिराव के कुछ साथी महार-मांग स्कूल कमेटी के भी सदस्य थे।[२]

अछूतों के स्कूल पर महात्मा ज्योतिराव फुले के विचार १५ दिसंबर, १८५३ को ज्ञानोदय इस मासिक में प्रकाशित हुए थे। यहां तक कि जब ज्योतिराव ने महार, मांग, चमार, ढोर, कैकाड़ी जैसी अछूत जातियों के बच्चों के लिए स्कूल स्थापित किए, तब भी अछूत बच्चों के माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने से हिचकते थे। इस समय लहुजी साल्वे ने अछूतों को शिक्षा के लाभ बताकर उनमें स्वाभिमान का संचार किया और अपने

प्रशिक्षण में योद्धाओं से उनकी रक्षा की। इसी तरह, जब ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले को कर्मठ सनातन द्वारा परेशान किया जा रही थी और स्कूल को बंद करने की धमकी दी जा रही थी, लहुजी साल्वे ने फुले दंपति के साथ मजबूती से खड़े हुए।[३] इसलिए अछूत समाज अपने बच्चों को स्कूल भेंजने के लिए प्रवृत्त हुआ था।

ज्योतिराव फुले ने अछूतों के लिए एक स्कूल शुरू करने के बाद, लहूजी साल्वे और रानबा गायकवाड़ ने बच्चों को स्कूल लाने का काम किया। इसलिए, ज्योतिराव फुले कनिष्ठ और अछूत जातियों के बीच शिक्षा आंदोलन की सफलता पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम थे। उनके स्कूलों में लड़के और लड़कियों का बड़े उत्साह के साथ अध्ययन करवाया जाता था। ज्योतिराव की स्कूल परीक्षा २१ मार्च, १८५३ को किया गया। इस दौरान एक बड़ा समारोह आयोजित किया गया। कई कुलीन देवियाँ और सज्जन उपस्थित थे। इन महार, मंगा स्कूलों में पढ़ना, लिखना, व्याकरण, भूगोल, इतिहास आदि विषयों को से मनःपूर्वक पढ़ाया जाता था।[४]

१८५४ ई. में वुड के विवरण पत्र में, पत्र संख्या ४९ यह स्पष्ट किया गया था की, जिन लोगों को शिक्षा से दूर रखा गया है उन वर्ग को शिक्षित करने की दिशा में सरकार के द्वारा हर संभव प्रयास किए गए थे, फिर भी वह शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ थे और हम चाहते हैं कि इस तरह के प्रयासों जिसके के लिए एक अतिरिक्त अनुदान दिया जाएगा, ऐसा सुझाव है। लेकिन १८५४ से १८८१ ई. तक की अवधि के आधिकारिक अभिलेखों के अनुसार, निचली जातियों और अछूतों की शैक्षिक स्थिति बहुत खराब थी। लेकिन जो विकास हुआ वह समाज सुधारकों के प्रयासों के कारण हुआ था। उन समाज सुधारकों में लहुजी साल्वे अग्रगणी थे।

५.३ अछूतों के स्कूल के प्रसारक

ब्रिटिश काल में शिक्षा प्रणाली में उच्च जातियों का प्रभुत्व था। अतः शिक्षा का लाभ प्राप्त करने की प्रक्रिया में अछूतों को प्रारम्भ में शिक्षा से दूर रखा गया। जैसे जिस स्कूल में हमारे बच्चे जाते थे वहां अछूतों के बच्चे नहीं होने चाहिए। कर्मठ सनातनीयों ने धमकियां दि थी की,[५] अछूतों के बच्चे अगर घर और स्कूलों में आते तो स्कूल अशुद्ध माने जाने चाहिए। इन कर्मठ वामपंथियों को नष्ट करने के लिए एक शुद्धतावादी सनातन लोंगों से सरकार पर प्रतिबंध लगाया जाता था। १८५१ ई. तक महाराष्ट्र में अछूतों के लिए कोई

स्कूल नहीं थे। पूना ऑबझर्व्हर २ सितंबर, १८५२ के एक मासिक की सामग्री में 'परोपकार ज्ञान से प्रेरित ज्योतिराव फूलों ने अपने घर में ही अछूतों के लिए स्कूल खोल दिया था, जिसमें अछूत महार समुदाय के मांग, ढोर, मोची, कैकाडी लड़कियों और लड़कों को पढ़ाया जा रहा था।'[६] लहुजी साल्वे को इस बात पर हमेशा गर्व था कि महात्मा ज्योतिराव फुले ने पुना में लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया था।

लहुजी सालवे के सामने समाज की जो अछूत जातियां आगे थी जिसमें महार, मांग ढोंर, मोची, समाज की स्थिति को देखकर कैकाडी समाज की स्थिती को देखकर लहुजी को बहुत बुरा लगता था। क्योंकि इस जाति के बच्चे दिन भर इधर-उधर भटकते रहते थे। इसी तरह इस जाति की लड़कियों को भी शिक्षा का अधिकार नहीं था। उस समय ये अछूत बच्चे ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू किए गए सभी धर्मो के स्कूल में नहीं जा सकते थे। इसलिए लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले को अछूतों के शैक्षिक कार्यो से अवगत कराया और अछूतों के लिए अछूतों के लिए एक विशेष स्कूल शुरू करने का सुझाव दिया था। ज्योतिराव फुले ने पहला अछूत स्कूल १८५१ ई. में शुरू किया था। लेकिन इस बार पुना में कुछ मजदूर लोगों को बुरा लगा था। उन्होंने स्कूल बंद करने की धमकी दी। उसी तरह, ब्रिटिश सरकार की योजना है कि, आप अपने बच्चों को एक अछूत पड़ोस में स्कूल भेजें और अपने व्यवसाय को डुबो दें। आपको अपना धंधा छोड़कर अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहिए।[७] इसलिए, कई अछूत अपने बच्चों को स्कूल से निकाल देते थे और वरिष्ठ वर्ग से धमकियों और उत्पीड़न के कारण उन्हें घर भेज देते थे।

अपने भाई की शिक्षा मिले इसलिए लहुजी साल्वे ने उनके दिलों में का डर कम करने के लिए राणबा गायकवाड (महार) को साथ में लेकर अछूतों लोंगों के मोहल्ले में तालीम जागरूकता के लिए जाया करते थे। उन्होंने उन्हें शिक्षा के फायदे बताए। इसी तरह अछूत माता-पिता को लहुजी कहते थे की, शिक्षा ही अछूत बच्चों का कल्याण करेंगी। ज्योतिराव फुले ने अपने भाइयों के कल्याण के लिए एक स्कूल शुरू किया था। इसलिए अब किसी की धमकी से डरने की जरूरत नहीं है। इस तरह लहुजी साल्वे अपने भाइयों को फुले दंपति के नेक इरादों के बारे में समझाते थे। वह उनके साथ रहे थे, जिससे उन्हें अपने बच्चों को स्कूल भेजने का विश्वास मिला था। नतीजा यह हुआ कि ज्योतिराव फुले द्वारा स्थापित अछूत स्कूल में बड़ी संख्या में बच्चे आने लगे थे। उसके बाद ज्योतिराव

फुले को दो और स्कूल शुरू करने पड़े। लहूजी साल्वे मांग और रानबा गायकवाड़ स्कूलों के प्रचारक बने और स्कूल बोर्ड में बड़ी संख्या में बच्चों को भर्ती किया।[८] लहुजी साल्वे अछूतों के स्कूल के प्रचारक थे। निम्न तालिका से पता चलता है कि उनके अथक प्रयासों के कारण, अछूतों के स्कूल में छात्रों की संख्या में काफी वृद्धि हुई थी।

स्कूल का स्थान, कक्षा, छात्रों की संख्या और
कक्षा शिक्षक को दर्शाने वाली तालिका

स्थान	कक्षा	कक्षा शिक्षक	छात्रों की संख्या
स्कूल नं. १ भोकरवाड़ी, पुना	प्रथम	विष्णु मोरेश्वर	१८
	द्वितीय	रामचंद्र मोरेश्वर	१८
	तीसरा	राघो सखाराम	१६
	चौथा	धूराजी अपाजी चंबर	५४
		छात्रों की कुल संख्या	१०६
स्कूल नं. २ नानापेठ, पुना	प्रथम	मामला त्र्यंबक	१५
	द्वितीय	विठोबा बिन बापूजी	१८
	तीसरा	विनायक गणेश	५०
		छात्रों की कुल संख्या	८३
स्कूल नं. २ गंजपेठ, पुना	प्रथम	धोंडो सदाशिव	१८
	द्वितीय	गनोजी बिन राजोजी	१८
	तीसरा	गनु शिवाजी मंगल	३३
		छात्रों की कुल संख्या	६९

ऊपर दी गई तालिका में ज्योतिराव फुले ने अछूत लड़कों और लड़कियों के लिए स्थापित स्कूल के स्थान, कक्षा, छात्रों की संख्या और कक्षा शिक्षकों के बारे में जानकारी दी गई है।[९] ज्योतिराव फुले ने अछूतों के लिए अनेक स्कूल स्थापन करके हजारो वर्ष से चली आ रही अस्पृश्य व्यवस्था को शिक्षा के अधिकार प्राप्त करवां था।

ज्योतिराव फुले के शैक्षिक कार्यो के कारण लहुजी साल्वे ने अछूत भाइयों को शिक्षा के महत्व पर जोर दिया और स्कूल प्रचारक की भूमिका ठीक से निभाई थी। नतीजतन,

इन सभी स्कूलों में लड़कों और लड़कियों की संख्या बढ़ने लगी। लेकिन बाद में, जैसे-जैसे छात्रों की संख्या बढ़ी, स्कूल की आपूर्ति, शिक्षकों के वेतन और अन्य जरूरतों के लिए पैसे की बहुत जरूरत थी। ज्योतिराव फुले और लहूजी साल्वे ने इससे बाहर निकलने का रास्ता खोजने की कोशिश की। लेकिन अंत में ज्योतिराव फुले ने सभी स्कूलों को पुना नगर पालिका को सौंप दिया था।

हंटर शिक्षा आयोग को सौंपे गए एक बयान में, ज्योतिराव फुले ने कहा कि अछूत स्कूलों की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है। उसने इसके माध्यम से ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। ब्रिटिश सरकार ने अछूतों की शिक्षा की भी उपेक्षा की। इन स्कूलों में उस समय के ब्राह्मण शिक्षक कनिष्ठ वर्ग के बच्चों को स्कूल छोड़ने के लिए हतोत्साहित या डराते थे।[१०] इसलिए बाद के समय में छात्रों की संख्या में कमी आई और अछूतों की शिक्षा का स्तर कम हो गया था।

५.४ महिला शिक्षा को बढ़ावा देना

भारतीय समाज में अछूतों और महिलाओं को हजारों वर्षो से शिक्षा की पहुंच से दूर रखा गया है। स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिए क्योंकि स्वाभाविक रूप से दुष्ट, कपटी, अविचारी, झूटी और मूर्ख होती थी। उसे अपने पति की शुभकामनाओं को संतुष्ट करना चाहिए, यही उसका धर्म है और यही उसका जन्म का कर्तव्य और सफलता है। इसलिए, महिलाओं को शिक्षा के अधिकार से हजारों वर्षो तक वंचित रखा गया क्योंकि ब्राह्मणवादी शास्त्रों ने उन्हें सिखाया था कि महिलाओं को शिक्षित करने से आपदा आएगी। इसलिए, भारतीय महिलाओं और अछूतों दोनों की स्थिति बहुत खराब थी। महिलाओं की स्थिति, विशेषकर अछूत समाज में, गुलामी की स्थिति थी। लेकिन ब्रिटिश शासन के चलते इसमें काफी बदलाव हो रहे थे। ऐसे में लहुजी साल्वे ने महिलाओं और अछूतों के समग्र विकास के लिए शिक्षा का मुद्दा उठाया था। लेकिन करना कठिन होता जा रहा था। उस समय लहुजी साल्वे के सामने ज्योतिराव फुले ही एकमात्र विकल्प थे। क्योंकि एक सुशिक्षित और प्रगतिशील विचारक ज्योतिराव फुले लहुजी साल्वे के संरक्षण में मल्लविद्या और लष्करी शिक्षा का प्रशिक्षण ले रहे थे। इस अवसर पर लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले से कहा था की, 'महिलाओं की अज्ञानता के कारण भारतीय समाज में अज्ञानता और अंधविश्वास की

जड़ें गहरी थी। इसलिए महिलाओं की इस अज्ञानता को मिटाने के लिए शिक्षा ही एकमात्र उपाय है। इसलिए हमें इस कार्य के लिए पहल करनी चाहिए।[११] इस प्रकार लहुजी साल्वे ने न केवल ज्योतिराव फुले को नारी शिक्षा के लिए प्रेरित किया बल्कि उन सभी का सहयोग करने का वचन भी दिया। इसी तरह, शुरूआती दिनों में, उन्होंने पूरे पुना की यात्रा की और ज्योतिराव फुले को महिलाओं की शिक्षा के लिए स्कूल स्थापित करने में मदद की।

महात्मा ज्योतिराव फुले ने अगस्त १८४८ ई. में पुना में तात्या भिडे की हवेली में लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया था। लड़कियों की शिक्षा के लिए किसी भारतीय पुरुष द्वारा स्थापित यह पहला स्कूल था। स्कूल चार ब्राह्मणों और दो बहुजन लड़कियों के प्रवेश के साथ शुरू हुआ था। इसके लिए लहूजी साल्वे, सदाशिवराव गोवंडे, सखाराम परजम्पे को बहुमूल्य सहयोग मिला था। उसके बाद लहुजी साल्वे ने अछूत समुदाय की शिक्षा के लिए ज्योतिराव फुले का ध्यान आकर्षित किया। इसके अनुसार १८५२ ई. में, अछूत लड़कों और लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की गई। इस समय लहुजी साल्वे ने पहल की और सबसे पहले अपने भाई शिवाजी की बेटी मुक्ता को ज्योतिराव फुले के स्कूल में भेजा था। वह अछूत पड़ोस में रानबा गायकवाड़ के साथ भी गए और माता-पिता को लड़कियों को शिक्षित करने के महत्व के बारे में आश्वस्त किया। उन्होंने लड़कियों के माता-पिता से मुलाकात की और कहा कि वह उनके पीछे मजबूती से खड़े हैं। इससे अछूत समुदाय में महिलाओं की शिक्षा के मामले में सकारात्मक माहौल बना और उनके उत्साह से अछूत लड़कियों को शिक्षा मिलने लगी। लड़कियों में से एक, लहुजी की भतीजी मुक्ता साल्वे, बाद में एक लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सामने आयी है।

५.५ प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना

लहूजी साल्वे १८२२ ई. में गंजपेठ, पुना में तालीम की स्थापना की गई थी। इस प्रशिक्षण में मल्लविद्या के साथ-साथ लष्करी शिक्षा भी दिया जाता था। तालीम की स्थापना से लेकर १८४८ ई. तक यह प्रशिक्षण लष्करी शिक्षा का केंद्र बन गया था। लेकिन ज्योतिराव फुले ने इस प्रशिक्षण में प्रवेश किया। जैसा कि वर्ष १८४७ ई. में हुआ था, उनके विचार को वस्ताद लहुजी साल्वे के रूप में एक मजबूत समर्थन मिला। इसलिए ज्योतिराव

फुले सुधार कार्य पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम थे। ज्योतिराव फुले ने लहूजी साल्वे की सलाह पर सामाजिक और शैक्षिक कार्यो में काम करते थे। इस दृष्टि से कि प्रशिक्षण में युवाओं को कम से कम अक्षर पहचान और अंकगणित का ज्ञान होना चाहिए था प्रशिक्षण में प्रौढ़ शिक्षा प्रदान करने वाला रात्रि विद्यालय लहुजी साल्वे की सलाह पर शुरू किया गया था। इसकी शुरूआत १८४७ ई. में हुई थी। इस स्कूल में ज्योतिराव फुले अछूत भाइयों को पढ़ाते थे।[१२]

ज्योतिराव फुले ने १८४८ ई. में पुना में तात्या भिडे की हवेली में पहला लड़कियों का स्कूल स्थापित किया गया था। इस स्कूल की स्थापना में ज्योतिराव फुले को लहूजी साल्वे की मदद मिली थी। अछूतों को शिक्षा मिलनी चाहिए। अछूतों की हजारों साल की गुलामी को सिर्फ शिक्षा ही खत्म कर सकती है। इसलिए लहुजी साल्वे इस बात से वाकिफ थे कि उन्हें शिक्षा का अधिकार दिए जाने की जरूरत थी। इसलिए वे लगातार ज्योतिराव फुले से अछूतों की शिक्षा पर चर्चा कर रहे थे। ज्योतिराव अछूतों के लिए एक स्कूल स्थापित करने के लिए भी सहमत हुए। लेकिन इस दौरान उनके दो सवाल थे। पहले क्या लड़के और लड़कियां स्कूल आएंगे? और दूसरा, स्कूल कहाँ चलेगा? लेकिन इन दोनों सवालों का जवाब लहुजी साल्वे के पास था। लहूजी साल्वे और रानबा गायकवाड़ ने लड़कों और लड़कियों को स्कूल भेजने और माता-पिता को इसके लिए राजी करने की जिम्मेदारी ली। १८५१ ई. में जब स्कूल शुरू करने का फैसला लिया गया तो शुरू में जगह की समस्या पैदा हुई। लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले को कहा था की, जगह की चिंता करने की कोई बात नहीं है। मैं आपको तालीम प्रशिक्षण का स्थान देता हूं। सुबह, शाम सराव करेंगे और सुबह की तालीम होने के बाद स्कूल भरवां जाएगा।[१३] इसप्रकार से लहूजी साल्वे की तालीम में पहले कुछ दिनों तक अछूतों के लिए स्कूल भरवाया गया था। भविष्य में छात्रों की संख्या में वृद्धि के कारण, इस स्कूल को भोकरवाड़ी में स्थानांतरित कर दिया गया था।

५.६ शैक्षणिक विरोधियों का समाचार

शिक्षा को आत्मा का विकास कहा गया है। लेकिन भारत में केवल ब्राह्मणों और उच्च जातियों को ही शिक्षा का अधिकार था। ऐसा विषम समाज भारत में प्राचीन काल से मौजूद है। मनुस्मृति का भारतीय समाज में सबसे अधिक प्रभाव था। मनुस्मृति को एक पुस्तक में बताया गया है, अछूत और धर्म की अवमानना महिलाओं को शिक्षित करना

है। लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद भारतीय समाज की संरचना में आमूल परिवर्तन आया था। अंग्रेजों ने बिना किसी भेदभाव के उच्च जातियों के साथ-साथ निचली और अछूत जातियों के लिए शिक्षा के द्वार खोलकर शैक्षिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिए, ज्योतिराव फुले शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम थे। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने उन्हें पश्चिमी दुनिया के साथ-साथ समतावादी विचारकों से भी परिचित कराया। साथ ही, लहुजी साल्वे के विचारों ने उन्हें शूद्रतिशूद्र तत्वों के बीच शिक्षा का प्रसार करने के लिए प्रेरित किया और उन्होंने कई स्कूलों की स्थापना की।

महाराष्ट्र में जाति व्यवस्था के पैरोकार और मेहनती लोग ज्योतिराव फुले के काम को पचा नहीं पाए हैं। उन्हें डर था कि अगर अछूतों और महिलाओं को शिक्षा मिल गई तो उनका स्वाभिमान जाग जाएगा और वे तथाकथित धर्म को मानने लगेंगे। इसलिए उन्होंने जोतीराव फुले और सावित्रीबाई फुले का कई तरह से विरोध करने की कोशिश की। ज्योतिराव फुले, सावित्रीबाई फुले, उस्मान शेख के साथ-साथ स्कूल आने वाले छात्रों के माता-पिता, अछूत वर्ग के माता-पिता और स्कूल के शिक्षकों को भी धमकियां मिलने लगीं। उस समय वस्ताद लहूजी साल्वे को शैक्षिक विरोध की खबर आई और विद्रोही कठोर तरीके से इन धमकियां लहुजी ने उन्हे धमकाया था, की इसके आगे ज्योतिराव फुले की शैक्षिक बाधाओं में आने वाले अछूत और लड़कियों के माता-पिताओं को धमकायां दी तो उसी भेंट मेरे साथ होगी। इसलिए लहूजी के उग्र प्रतिरोध और लाल आंखों से सशस्त्र अनुयायियों से पुना कला अकादमिक से विरोधी समाचार ताल्या में लाते थे।[१४] उसके बाद शैक्षिक विरोधी करनेवाले लोग शांत हो गए थे। साथ ही, कनिष्ठ वर्ग के साथ-साथ अछूत वर्ग की शैक्षिक और सामाजिक जागरूकता बड़े पैमाने पर बढ़ने लगी। इतना ही नहीं, बल्कि बाद के समय में ब्राह्मण समुदाय के कुछ उदारवादियों ने सहकारिता की भूमिका निभाई। इसलिए, यदि लहुजी साल्वे ने इस अवधि के दौरान ज्योतिराव का विरोध करने वाले अकादमिक विरोधियों पर ध्यान नहीं दिया होता, तो ज्योतिराव फुले के लिए इस अकादमिक नंददीप को रखना मुश्किल होता था।

५.७ शिक्षकों को सुरक्षा

भारतीय समाज में शिक्षा का अधिकार केवल ब्राह्मणों और उच्च जातियों को था। सभी जातियों की महिलाओं को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया। इसी तरह

अछूत समुदाय के लिए शिक्षा के दरवाजे हजारों सालों से हमेशा के लिए बंद हैं। लेकिन ब्रिटिश काल के दौरान इसमें सुधार होने लगा। ईसाई मिशनरियों ने हर जगह स्कूल शुरू किए। साथ ही ज्योतिराव फुले ने शैक्षणिक संस्थान शुरू किए। इन स्कूलों में शुरू में शिक्षकों और छात्रों की कमी थी। पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं मिला। अगर उसे एक मिल गया, तो उसके साथ समाज में बुरा व्यवहार किया जाएगा।

पुना की रूढ़ीवादी सोच को लोगों ने ज्योतिराव की शैक्षिक गतिविधियों के बड़े सवाल पर संरचनाओं के साथ कठिनाई को दिखाया, परिसर को गिराने की धमकी दी। फिर भी लहूजी साल्वे के मार्गदर्शन में ज्योतिराव फुले ने हार नहीं मानी थी। नतीजतन, कुछ उच्च वर्ग के बच्चे स्कूल आने लगे। जैसे-जैसे छात्रों की संख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे शिक्षक भी बढ़ते गए। क्योंकि ज्योतिराव के स्कूल में आने वाले ब्राह्मण शिक्षकों को कर्मठ ब्राह्मणों ने डरा दिया और स्कूल न जाने की धमकी दी। उस समय, लहूजी साल्वे की सलाह पर, ज्योतिराव सावित्रीबाई और फातिमा को शिक्षित और प्रशिक्षित करने वाले पहले व्यक्ति थे। सावित्रीबाई को लड़कियों को शिक्षित करने की जिम्मेदारी दी गई थी। वह एक शिक्षिका के रूप में काम करने लगी। लेकिन मेहनतकशों का उत्पीड़न बंद नहीं हुआ। सावित्रीबाई को प्रताड़ित किया जाने लगा। उस समय लहुजी साल्वे ने सावित्रीबाई की रक्षा के लिए अपने तालीम प्रशिक्षण शिविर से एक पहलवान को भेजा और स्वयं ध्यान दिया था। परिणामस्वरूप कर्मठ विचारधारा के लोगों की परेशानी स्वतः कम हो गई थी।

महात्मा ज्योतिराव फुले के स्कूल में जैसे-जैसे छात्रों की संख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे शिक्षकों की कमी और आर्थिक तंगी भी होती गई। उच्च जातियों के शिक्षक अछूतों के स्कूलों में पढ़ाने के लिए तैयार नहीं थे, खासकर उच्च वेतन प्राप्त किए बिना।[१५] इसलिए, ज्योतिराव के सामने यह सवाल उठा कि क्या किया जाए। इस काल में भारत में मेहनतकश लोगों की तानाशाही के दबदबे के कारण कोई भी शिक्षित व्यक्ति अछूतों के स्कूल में शिक्षक के रूप में काम करने को तैयार नहीं था। ज्योतिराव फुले के सामने यह बड़ी दुविधा खड़ी हो गई। ऐसे कठिन समय में, लहूजी साल्वे बचाव के लिए आए और उन्होंने दो उत्साही युवकों को भेजा, लहूजी साल्वे के छोटे भाई शिवाजी के बेटे गणू, जिन्होंने अपने तालीम में वयस्क शिक्षा प्राप्त की थी, और उनके शिष्य धूराजी आपाजी चमार को शिक्षकों के रूप में कार्य करने के लिए भेजा था। उनमें से, धूराजी आपाजी ने बाराखाड़ी को पढ़ाया,

जबकि गनु शिवाजी ने उन्हें सबक लेना सिखाया। उस समय कुछ बदमाशों ने उन्हें बहला-फुसलाकर इस शैक्षणिक कार्य से वंचित करने का प्रयास किया। लेकिन कर्मठ लोगों को सफलता नहीं मिली। क्योंकि उस समय लहूजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले के स्कूल के शिक्षकों को हर तरह की सुरक्षा दी थी। साथ ही धूराजी आपाजी और गनु शिवाजी यह ताकतवर पहलवान थे।

५.८ स्कूल और पुस्तकालय के निर्माण के लिए आर्थिक सहायता

लहुजी साल्वे का कार्य भारतीय युवाओं को सैन्य शिक्षा देना था और साथ ही उनका सामाजिक और शैक्षिक कार्य भी महान था। ज्योतिराव फुले ने पुना में विभिन्न स्थानों पर शुरू किए गए स्कूलों का विकास अक्सर आर्थिक कठिनाइयों के कारण बाधित होता था। साथ ही, जैसे-जैसे स्कूल में बच्चों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती गई, शिक्षकों के वेतन और बुनियादी स्कूल सुविधाओं का मुद्दा अक्सर उठता रहा। लहूजी साल्वे नोटिस करते थे कि जोतीराव फुले अक्सर वित्तीय कठिनाइयों में रहते थे क्योंकि कुछ स्कूल किराए के स्थान पर चल रहे थे और उनका किराया भी समाप्त हो गया था।[१६] उस समय, उन्होंने सोचा, ज्योतिराव फूले उनके अछूत समाजबंधूओं ने सिखाए जाने के लिए दिन-रात कठिन था। इसलिए हमें उनसे चंदा लेना चाहिए। उन्होंने ऐसा सोचा और अपने सहयोगी रानबा गायकवाड़ से इस पर चर्चा की। इसके अनुसार दोनों ने ज्योतिराव के स्कूलों के लिए उदार लोगों की आर्थिक मदद करने का वादा किया था।[१७]

जैसा कि लहूजी साल्वे एक सम्मानित व्यक्तित्व हैं, कई मदद के हाथ ज्योतिराव के स्कूलों के लिए आगे आए और यह उल्लेख किया गया है कि उन्होंने ज्योतिराव फुले के स्कूलों के लिए दान दिया था। ज्योतिराव फुले ने अछूतों के लिए कई स्कूल शुरू किए थे। उनके स्कूल की दूसरी वार्षिक परीक्षा आयोजित की गई थी। यह १२ फरवरी, १८५३ को लिया गया था। इस परीक्षा में २३७ विद्यार्थी शामिल हुए थे। इस संदर्भ में यह स्पष्ट है कि प्रकाशित रिपोर्ट, राष्ट्रपति, श्रीमती आदि छात्र कार्यक्रम के अवसर पर आते थे। ई.सी. जोन्स के हाथों से पुरस्कार वितरित किए जाते थे। एक छोटीसी भगिनी पुरस्कार स्वीकार करते समय बताया थी की इनाम में साडी-चोली के इनाम नहीं चाहिए, हमें स्कूल में पुस्तकालय की व्यवस्था चाहिए। इसप्रकार से स्पष्ट सुझाव दिया था।[१८] तो इनमें से जोतिरवा फूल अपने स्वयं के लहूजी साल्वे और रानाबा गायकवाड़ के संदर्भ में विभिन्न

स्थानों के माध्यम से दान एकत्र किए और स्कूल पुस्तकालय की आवश्यकता थी। सदाशिव गोवंडे, बालाचार्य, लहुजीबुवा, रानोजी, भाऊ दाजी, नाना शंकरशेठ और कई अन्य शिक्षाविदों ने दान देकर ज्योतिराव की मदद की थी।[१९] इसलिए, ज्योतिराव पुना में बच्चों के लिए पहला मुफ्त पुस्तकालय स्थापित करने में सक्षम रहे थे। कई आर्थिक रूप से स्कूलों ज्योतिराव फुले ने स्थापित समर्थित किया था। कुछ दान में स्कूल की जगह, कुछ प्रदान की बोर्ड, किताबें और कुछ दान में कपड़े और शैक्षिक सामग्री दिए थे। इस प्रकार, लहूजी साल्वे ने ज्योतिराव के शैक्षिक कार्यो में आर्थिक रूप से योगदान देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

५.९ अछूत भाइयों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की शुरूआत

भारत में जाति व्यवस्था प्राचीन काल से ही कठोर रही है। इस जाति व्यवस्था के अनुसार शूद्रों और अछूतों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। मध्य युग के बाद, जब बंगाल, पंजाब और मुंबई में ब्रिटिश शासन स्थिर हो गया, तो अंग्रेजों ने शिक्षा प्रणाली में बदलाव किए। उन्होंने सभी के लिए शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षा का वितरण सिद्धांत पेश करने वाले पहले व्यक्ति लॉर्ड मेकॉले थे। इस सिद्धांत के अनुसार सबसे पहले उच्च जातियों को शिक्षित किया गया। तब यह शिक्षा उच्च वर्गो में से निम्न वर्गो तक पहुँचती थी। लेकिन वास्तव में शूद्र, महिलाएं और अछूत शिक्षा से वंचित थे। इसलिए बाद के दौर में ज्योतिराव फुले ने इसके लिए विशेष पहल की और महिलाओं, कनिष्ठ वर्गो और अछूतों के लिए स्कूलों की स्थापना की और लड़कों और लड़कियों को शिक्षा का अधिकार दिया। लेकिन इस स्कूल की स्थापना से पहले ही लहूजी साल्वे के संरक्षण में हथियारों का अध्ययन करते हुए। १८४७ ई. में ज्योतिराव फुले ने लहूजी साल्वे के अनुरोध पर प्रौढ़ शिक्षा का स्कूल शुरू किया था।[२०]

ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए लहुजी साल्वे ने इस अवधि के दौरान बड़ी मुश्किल से सशस्त्र प्रशिक्षण आयोजित कर रहे थे। यह प्रशिक्षण उस समय के प्रतिष्ठित प्रशिक्षण केंद्र के रूप में जाना जाता था। लहूजी साल्वे की समतावादी नीति के कारण सभी जातियों और धर्मो के युवा पहलवान अपने प्रशिक्षण के साथ-साथ सैन्य शिक्षा का पाठ भी ले रहे थे। इस दौरान, १८४७ ई. में ज्योतिराव फुले और उनके दोस्त सदाशिव गोवंडे, सखाराम परांजपे और मोरो वालवेकर मल्लविद्या के साथ-साथ लष्करी शिक्षा के लिए आ

रहे थे। इस समय वयस्क शिक्षा के बारे में सोचने वाले पहले व्यक्ति लहूजी साल्वे थे। यह महसूस करने के लिए कि लहुजी ने आपके सभी युवा जो शारीरिक दृष्टी से सक्षम थे उन्हें तालीम में लाने का प्रयास किया था। लेकिन उन्हें शिक्षा नहीं हूई थी। लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले को युवाओं को सिखाने के लिए कहा था। ताकि वे कम से कम सांख्यिकी, अंकगणित और अपना नाम भी लिख सकें। ज्योतिराव फुले ने खुशी-खुशी उसने लिए होकार दिया था। तद्नुसार लहुजी साल्वे ने अपने सभी शिष्यों से ज्योतिराव फुले को पढ़ने-लिखने सीखने की अपील की थी। इस प्रकार लहूजी साल्वे के संरक्षण में प्रौढ़ शिक्षा का विद्यालय की शुरूआत १८४७ ई. में हुई थी।[२१]

शिक्षा प्राप्त करने की बात आने पर युवा उदास थे। इसलिए बहुत कम युवा इस स्कूल में आ रहे थे। इसमें धूराजी आपाजी चभार और गनु शिवाजी मांग शिक्षित थे। अन्य युवकों को दस्तावेजों के अभाव में जानकारी नहीं मिल पाती है। लेकिन ये दो युवक, जिन्होंने प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त की थी, अछूतों के लिए ज्योतिराव फुले ने स्कूल में १८५२ ई. में एक शिक्षक के रूप में कार्य किया। धूराजी आपाजी और गनु शिवाजी साल्वे ने भी प्रशिक्षण में युवाओं को शिक्षित करने के लिए वयस्क शिक्षा की जिम्मेदारी ली थी। ये प्रौढ़ शिक्षा कक्षाएं लहूजी साल्वे के संरक्षण में संचालित की जा रही थीं। साथ ही, लहूजी साल्वे ने मुक्ता साल्वे से महिलाओं को अछूतों की महिलाओं को वर्णमाला सिखाने के लिए कहा था। ये कक्षाएं लहूजी साल्वे के घर पर चलाई जा रही थीं। इस प्रकार लहुजी का प्रशिक्षण न केवल तालीम प्रशिक्षण केन्द्र था, बल्कि प्रौढ़ शिक्षा का भी केन्द्र था।

साल्वे वंश एक शक्तिशाली वंश था जिसने लगातार स्वराज्य की रक्षा की। वह छत्रपति शिवाजी महाराज के सिद्धांतों, सामाजिक समानता और देशभक्ति से बहुत प्रभावित थे। इसीलिए पेशवा अराजकता के दौरान, राघोजी नाईक ने पेशवा की नौकरी को इस भावना के साथ स्वीकार किया कि वह शिवछत्रपति का एक सैनिक था और स्वराज्य की रक्षा के लिए अंग्रेजों की रक्षा करते हुए अंत तक संघर्ष और बलिदान किया। बाद में, उनके बेटे लहुजी साल्वे ने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए पुना में देश का पहला सैन्य अड्डा स्थापित किया, सभी जातियों के युवाओं को एक साथ लाकर और उन्हें हथियारों के साथ-साथ सामाजिक समानता का पाठ पढ़ाया था।

जिस तरह लहुजी साल्वे ने ब्रिटिश शासन का विरोध किया, उसी तरह उन्होंने भारत में कर्मठ सनातनी व्यवस्था के खिलाफ सामाजिक, शैक्षिक और धार्मिक सुधार आंदोलन को तेज करने का कार्य किया। क्योंकि भारत में पेशवा के अस्त के बाद भी समाज में पेशवा का प्रभाव इतना अधिक था कि निम्न और अछूत जातियों को अमानवीय जीवन व्यतीत करना पड़ा था। इसके लिए लहुजी साल्वे ज्योतिराव फुले के साथ मजबूती से खड़े रहे और अछूत समुदाय को मुख्य धारा में लाने के लिए सामाजिक, शैक्षणिक और धार्मिक सुधार लाए थे।

सन्दर्भ :

१) माळी सी. द., महात्मा ज्योतिराव फुले, बी. एल. राणे प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, १९६७, पृ. ३९.

२) उगले जी. ए., महात्मा - एक मुक्त चिंतन, कौशल्य पब्लिकेशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ती, २०००, पृ. १६२.

३) किर धनंजय, महात्मा ज्योतिराव फुले, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २००५, पृ. ३०.

४) जोशी लक्ष्मण शास्त्री, जोतिचरित्र, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, पृ. १३.

५) गोवंडे वि. भा., त्रिमूर्तिदर्शन या सदाशिव गोवंडे का चरित्र, प्रकाशिका श्रीमती लक्ष्मीबाई गोवंडे, पुना, प्रथमावृति, १९५३, पृ. ६९

६) कित्ता, पृ. ५९.

७) पाटिल पंढरीनाथ, ज्योतिराव फुले यांचे चरित्र, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथम संस्करण, २००७, पृ. ३.

८) निमखेड़कर मालती, क्रांतिसूर्य जोतिबा, कौस्तुभ प्रकाशन, नागपुर, प्रथमावृत्ती, १९९२, पृ. १६.

९) किर धनंजय, स. गं. मालशे और फड़के य. दी.(संपा.), महात्मा फुले समग्र वाङ्मय, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति मंडळ, मुंबई, छठा संस्करण, २००६, पृ. ७०१, ७०२.

१०) किर धनंजय, २००५, पूर्वोक्त, पृ. १३४.

११) तड़ाखे शंकरभाऊ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. २८ अक्टूबर २०१६।
१२) कित्ता।
१३) जाधव किशन निवृति (लहुजी साल्वे के पड दादा) गंजपेठ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४।
१४) सिंदगीकर अंकुश, लहूजी साल्वे और मातंग समाज, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, पहला संस्करण, २००९, पृ. १९.
१५) गोवंडे वि. भा., पूर्वोक्त, पृ. ६५.
१६) कित्ता, पृ. ५८.
१७) तड़ाखे शंकर, पूर्वोक्त।
१८) उगले जी. ए., सावित्रीबाई फुले, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, द्वितीय संस्करण, २००९, पृ. १६.
१९) निर्मळ गुरूजी, महात्मा ज्योतिराव फुले, श्रीविद्या प्रकाशन, पुना, प्रथमावृत्ति, १९९०, पृ. ३२.
२०) तड़ाखे शंकरभाऊ, पूर्वोक्त।
२१) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।

अध्याय ६

लहूजी साल्वे और सत्यशोधक समाज

६.१ प्रस्तावना

६.२ सत्यशोधक समाज की स्थापना में भागीदारी

६.३ सत्यशोधक समाज के प्रवर्तक और रक्षक

६.४ अछूत समाज में सत्य की खोज करने वाले समाज का प्रसार

६.५ स्वामी दयानन्द सरस्वती को संरक्षण

६.६ सच्चाई की तलाश में अंतिम संस्कार

संदर्भ

अध्याय छह

लहूजी साल्वे और सत्यशोधक समाज

६.१. प्रस्तावना

लहुजी साल्वे ने उन्नसवीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। लहुजी साल्वे ने समाज के समग्र विकास के उद्देश्य से महाराष्ट्र में सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों और सुधारकों को प्रोत्साहित किया। इस मत के कारण कि लहूजी साल्वे, समुदाय जातिभेदी, धर्मभेदता, स्वार्थी और अहंकारी सामाजिक विषमता माता-पिता रूढ़ीवादी थे। उन्होंने पुराणों, स्मृतिग्रंथों आदि के आधार पर धर्म के नाम पर निचली और अछूत जातियों पर धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक दासता थोप दी और उनका शोषण किया। उनकी साज़िशों के कारण अछूत जातियों के साथ-साथ निचली जातियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इसलिए लहुजी साल्वे ने अपने प्रशिक्षण में युवाओं को लगातार सत्य की शिक्षा देकर उन्हें बार-बार याद दिलाया कि मानवता ही धर्म है।

लहुजी साल्वे के विचारों ने उनके भतीजे मुक्ता साल्वे को प्रभावित किया। बाद में मुक्ता साल्वे ने चौथी कक्षा में पढ़ते हुए मांग-महारों के दुःख पर एक निबंध लिखा था। यह निबंध ज्ञानोदय समाचार पत्र में दो अंक में प्रकाशित हुआ था। इस निबंध में, मुक्ता ने स्थापित धर्म में अधर्म और असमानता, ब्राह्मणों के पाखंड को उजागर किया। यद्यपि बहुसंख्यक अछूत समुदाय हिंदू धर्म का एक घटक है, फिर भी उन्हें हर तरह से अपात्र घोषित किया गया। उन्हें गलत अमानवीय तरीका, अत्याचार किया जा रहा था। इस समय मुक्ता साल्वे ने पूछा हमारे अछूतों का धर्म क्या है? ऐसा ही एक प्रश्न निबंध में प्रस्तुत किया गया था। यह निबंध उस समय बहुत लोकप्रिय था। इसका अर्थ आज भी लागू होता है। क्योंकि आज भी २१ वीं सदी में भी भारतीय समाज में जाति की जड़ें जस की तस हैं। ज्योतिराव फुले इस निबंध से अवश्य ही प्रेरित हुए होंगे और उन्होंने एक सत्य खोजी समाज की स्थापना करके अछूतों को यह अहसास कराया कि भारत में शूद्रतिशूद्र जाति के हित न केवल भिन्न थे, बल्कि ब्राह्मण उच्च जातियों के हितों के विपरीत थे।

६.२ सत्यशोधक समाज की स्थापना में भागीदारी

सत्यशोधक समाज का मुख्य उद्देश्य शूद्रतिशूद्र समुदाय को कर्मठ विचारधारा के जाति वर्चस्व और गुलामी से मुक्त करना था। इसलिए लहुजी साल्वे ने सत्यशोधक समाज की स्थापना में सहयोग किया था। क्योंकि कर्मवादी सोच रखनेवाले लोगों ने धर्म के नाम पर कई नकली ग्रंथ बनाए और शूद्रतिशूद्रों को बौद्धिक दास बना दिया। महात्मा ज्योतिराव फुले ने इस जाल के उन्मूलन के अवसर पर सत्यशोधक समाज की स्थापना की थी। २४ सितंबर, १८७३ को किया गया। सत्यशोधक समाज की स्थापना के समय ज्योतिराव फुले की पुराने गंजपेठ में तुकाराम नाईक के स्थान पर एक दुकान थी। वहीं, मकान नं. ५२७ में सत्यशोधक समाज की स्थापना के संबंध में चर्चा हुई।[१] इस चिंतन में लहुजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले को बहुमूल्य मार्गदर्शन और सहयोग दिया था। तैयारी के लिए लहूजी साल्वे और उनके प्रशिक्षण शिष्य ज्योतिराव फुले उनके साथ थे। लहूजी उनकी प्रत्येक गतिविधि में सक्रिय रूप से शामिल थे। सत्यशोधक समाज की स्थापना के अवसर पर सबसे पहले ६० व्यक्तियों ने सत्यशोधक समाज की सदस्यता स्वीकार की। इसमें लहूजी साल्वे और उनके कई शिष्य शामिल थे।[२] सत्यशोधक समाज के शुरूआती अनुयायी ज्यादातर शूद्र जाति के थे।[३]

सत्यशोधक समाज की स्थापना के बाद जो व्यक्ति सत्यशोधक समाज का सदस्य बना उसका एक रजिस्टर रखा गया। इस पंजीकरण पुस्तिका में सत्यशोधक समाज में शामिल होने वाले व्यक्ति का नाम लिखा हुआ था और उसके हस्ताक्षर लिए गए थे। यह पंजीकरण पुस्तक महात्मा ज्योतिराव फुले के पास थी। उनके उत्तराधिकारी यशवंतराव थे। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि यशवंतराव के बाद यह किसे मिला। इसकी तलाश जारी है।[४] इसलिए सत्यशोधक समाज के संस्थापक सदस्यों के शुरूआती दो सौ पच्चीस सदस्यों में से केवल एक सौ चौदह के नाम ही मिलते हैं। इसमें लहूजी साल्वे और सावित्रीबाई फुले का नाम नहीं है। शेष सदस्यों के नाम प्रकाशित नहीं किए गए हैं।[५]

६.३ सत्यशोधक समाज के प्रवर्तक और संरक्षक

महात्मा ज्योतिराव फुले ने हजारों वर्षो से अंधकार में पड़े अछूत समाज को ज्ञान का प्रकाश दिया। परिणामस्वरूप, हमारे साथ हो रहे अन्याय से अछूत समुदाय जागरूक हो गया। मुक्ता साल्वे के निबंध में यह स्पष्ट है की जब यह निबंध ज्ञानोदय समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ, तो अगले अंक में ज्ञानोदय को पढ़ने वाले पाठकों ने मुक्ता साल्वे के

निबंध पर अपने विचार प्रकाशित किए थे। ज्योतिराव के स्कूल में इस विचार ने बहुत फल दिया। महार-मांग ने महसूस किया कि कोई शास्त्र नहीं है। फिर भी उन्हें बाइबल पढ़नी चाहिए, एक ऐसा शास्त्र जो सभी राष्ट्रों और लोगों के लिए उपयोगी है। ऐसी सूचना ज्ञानोदय पढ़ने वाले को दिया था।[६] लहुजी साल्वे इस बात से दुखी थे कि मांग और महार जातियों के बहुत से लोग ईसाई धर्म में परिवर्तित हो रहे थे। क्योंकि जिस तरह हिंदू धर्म में ब्राह्मणों का वर्चस्व है, उसी तरह ईसाई धर्म में धार्मिक नेताओं का वर्चस्व है। इसलिए ईसाई धर्म अपनाने से हमारे अछूत समुदाय को कोई लाभ नहीं होगा। इस बात की जानकारी लहूजी साल्वे को थी। इस दृष्टि से उन्होंने ज्योतिराव फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज के प्रवर्तक और रक्षक के रूप में कार्य किया।

महात्मा ज्योतिराव फुले द्वारा सत्यशोधक समाज की स्थापना के बाद पुना में कर्मठ विचारधारा के लोगों ने उनका विरोध करना शुरू कर दिया। क्योंकि अछूत जातियों के साथ-साथ कई निचली जातियां सत्य की खोज करने वाले समाज के विचार के साथ आगे बढ़ने लगीं। इसलिए किसी को भी सत्यशोधक समाज का सदस्य बनने से रोकने के लिए पुना के लोग घर-घर जाकर भोले-भाले लोगों को सत्यशोधक समाज से दूर करने का प्रयास करते थे। इतना ही नहीं, वे घर के सदस्यों में ही चोरी करवातें थे। सत्यशोधक समाज की सदस्यता स्विकार करनेवाले सदस्यों के घर पर दिन-रात में पत्थर फेंकते थे, उन्हें अपशब्द बोलते थे। आदि अनेक प्रकार किए थे।[७] इस समय लहूजी साल्वे ने ज्योतिराव फूले और सत्यशोधक समाज की आलोचना करने वाले रूढ़ीवादी के बारे में कठोर शब्दों में बोलना शुरू किया।[८] सभी को इस बात से सहमत होना होगा कि लहूजी साल्वे के समर्थन के कारण ज्योतिराव फुले ऐसे कर्मठ लोगों से परेशानी नहीं हुई थी। अर्थात सत्य चाहने वाले समाज की हर तरफ से रक्षा करने वाले लहूजी साल्वे इस समाज के रक्षक बनते थे।

६.४ अछूत समाज में सत्यशोधक समाज का प्रसार

पेशवा काल के पतन के बाद कई वर्षो तक अंग्रेज सत्ता में रहे थे। लेकिन अछूतों के खिलाफ उत्पीड़न और जातिगत भेदभाव कम नहीं हुआ था। इसलिए ज्योतिराव फुले ने महसूस किया कि उच्च जातियों के उत्पीड़न के कारण अछूत जाति के महार और मांग इस्लाम या ईसाई धर्म में परिवर्तित हो रहे थे। क्योंकि इस्लाम और ईसाई धर्म में भी धर्मगुरुओं का उत्पीड़न होता है। अतः अन्य धर्मो को स्वीकार किए बिना सत्य की खोज करने वाले

उस समाज की राय के अनुसार कार्य करें जो मैंने स्थापित किया है, ताकि जाति भेद को तोड़कर समानता की स्थापना की जा सके। ब्रिटिश शासन ने हम सभी को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दी है। इसलिए जोतीराव फुले ने अछूतों को शिक्षा ग्रहण कर सत्य की खोज करने वाले समाज का उद्देश्य समझाकर बुद्धिमान बनने की अछूतों को अपील की थी।[९]

लहुजी साल्वे अछूत समुदाय में मानवीय धर्म के समर्थक थे। उनका सत्य की खोज करने वाले समाज की स्थापना में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने हिंदू धर्म में जातिवाद और छुआछूत को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उनका मानना था कि अछूत समाज को गुलामी से मुक्त करने के लिए सत्य की खोज करने वाला समाज ही एकमात्र रास्ता है। १८७३ से १८८० ई. तक के काल में महात्मा ज्योतिराव फुले ने जातीयता के द्वारा स्थापित सत्यशोधक अछूत समुदाय के माध्यम से समाज में जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्य लगातार कर रहे थे।[१०] कारण जातियता और अस्पृश्यता पर आधारीत समाज के लिए अंधविश्वास, आध्यात्मिक पूजा, उधारदाताओं पर बड़ी संख्या में ब्राह्मण एकाधिकार का बोलबाला था। इस परंपरा में लिपटे अछूत समाज को जगाने के लिए लहूजी साल्वे ने सत्य की खोज करने वाले समाज को उपदेश दिया। लहुजी साल्वे का काम सत्यशोधक समाज प्रसार किया। लहुजी साल्वे के इस कार्य लिए अछूत व्यक्तियों के सुधार हेतू से सत्यशोधक विवाह का अवसर, समाज की रक्षा और अछूत जाति की स्थापना करके संरक्षण किया।[११] सत्यशोधक समाज की स्थापना के कारण अछूत जातियों में इस्लाम या ईसाई धर्म धर्मांतर करने का प्रमाण बहुत कम हो गया था।

६.५ स्वामी दयानंद सरस्वती को संरक्षण

यह आंदोलन ब्रिटिश काल के मुंबई, पंजाब और बंगाल के विभाग में बड़े पैमाने पर शुरू हुआ था। इस आंदोलन का स्वरूप सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक था। और आंदोलन का नेतृत्व करने वाले लोगों ने उपरोक्त तीनों वर्गो को लगातार जाग रहे थे। इस समय महाराष्ट्र को देखते हुए, ऐसा लगता है कि सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन दृढ़ता से आगे बढ़ाने और इस व्यवस्था का विरोध करके लहूजी साल्वे जैसे सच्चे समर्थकों के साथ, विभिन्न समाज सुधारकों को आंदोलन को गति देने के लिए प्रोत्साहन दिया गया। लहूजी साल्वे ने समय-समय पर पुना में चल रहे विभिन्न

आंदोलनों का नेतृत्व करने वाले समाज सुधारकों को मदद और प्रोत्साहित किया था। इन समाज सुधारकों में ज्योतिराव फुले, न्याय. रानाडे, भंडारकर, तर्खडकर इन का समावेश ।[१२] इन सभी समाज सुधारकों ने महाराष्ट्र में सामाजिक सुधार आंदोलन में अस्पृश्यता उन्मूलन के सुधार कार्यक्रम को चलाया। उस समय पुना क्षेत्र में अछूत समुदाय में लहुजी साल्वे एकमात्र व्यक्ति थे जो एक समाज सुधारक और क्रांतिकारी के रूप में प्रमुखता से आए। साथ ही, चूंकि छुआछूत भारतीय समाज की एक अभिशाप है, लहुजी साल्वे इसे मिटाने की पूरी कोशिश कर रहे थे। इसलिए लहुजी ने हमेशा समाज सुधारकों को ऐसे पवित्र कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया।

महाराष्ट्र में समाज की बेहतरी और आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने १८७५ ई. में पुना आर्य समाज की स्थापना की गई थीं। इस समय पुना के कर्मठ लोगों ने उनका कड़ा विरोध किया था। इस समाज के लोगों ने गधे के गले में गर्दभनन्द लिखी गई पाठी बांधकर और उसका जुलूस निकालकर होली का त्यौहार मनाया था। सत्यशोधक समाज के संस्थापक ज्योतिराव फुले ने पुना में स्वामी दयानंद सरस्वती की जनसभा का आयोजन किया था। लेकिन पुना में कर्मठ विचारधारा के लोगों ने स्वामी दयानंद सरस्वती के जुलूस का विरोध किया।[१३] इसलिए, सुधारकों ने ज्योतिराव को उनकी रक्षा के लिए एक गंभीर अनुरोध किया था। इस समय ज्योतिराव फुले ने लहुजी साल्वे और महार, मांग मोहल्ले से दोसो तालीमबाजों को लोगों की सुरक्षा के लिए बुलाया था।

स्वामी दयानंद सरस्वती के जुलूस को बाधित करने की साजिश पुना के कर्मठ लोगों के द्वारा रची हुई थी, उसे लहुजी साल्वे ने कुचल दिया था। अतः स्वामी दयानन्द सरस्वती का जुलूस अनुचित तरीके से न निकले, इसके लिए लहुजी साल्वे और उनके अनुयायी बड़ी संख्या में जुलूस की रक्षा के लिए खड़े हुए थे।[१४] जुलूस के दौरान, लहुजी के शिष्य सक्त पहरे पर थे। जुलूस की रक्षा के लिए लहूजी के शिष्यों को हथियारों से लैस देखकर पुना के कर्मठ लोगों ने विरोध करने की हिम्मत नहीं की। इसलिए जुलूस सुचारू रूप से और समय पर निकल गया था। अर्थात ज्योतिराव फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती सहित अन्य समाज सुधारकों को सामाजिक कार्यो में प्रोत्साहित और संरक्षित किया गया और

लहुजी और उनके शिष्यों ने अछूत समाज में इन सुधारकों के विचारों को बोने का कार्य किया।

६.६ अंतिम संस्कार विधि

लहुजी साल्वे ने अंत तक सामाजिक, शैक्षिक और राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। इसलिए, उनकी उन्नत उम्र के बावजूद, लहुजी साल्वे का काम जारी रहा। लेकिन बुढ़ापे में उन्हें घुटने में दर्द हो गया। ८७ साल की उम्र में १७ फरवरी, १८८१ को उनका मृत्यू हो गया।[१५] उनकी मृत्यु के साथ, एक उग्र व्यक्तित्व का निधन हो गया। यह उल्लेख करने के लिए प्रकट होता है कि, लहुजी के अंत्यसंस्कार के समय महात्मा ज्योतिराव फुले के उनके पसंदीदा शिष्य सावित्रीबाई फूले के साथ-साथ कई प्रतिष्ठित व्यक्ति, सत्यशोधक मंडली और उनके शिष्य बड़ी संख्या में मौजूद थे। इस समय, संगमवाड़ी (पुना) में लहुजी का अंतिम संस्कार सत्यशोधक विधी से किया गया था।[१६] उनकी समाधि बाद में बनाई गई थी। लहुजी साल्वे का जन्मदिन १४ नवंबर को यहां बड़ी जागरूकता के साथ गतिविधियां आयोजित की जाती हैं।

सन्दर्भ :

१) उगले जी.ए., महात्मा फुले- एक मुक्त चिंतन, कौशल्य पब्लिकेशन, औरंगाबाद, प्रथमावत्ती, २०००, पृ. १२०.

२) जाधव किशन निवृति, (लहुजी साल्वे के पड दादा), गंजपेठ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४.

३) मोर सदानंद, लोकमान्य ते महात्मा, खंड पहला, राजहंस प्रकाशन, पुना, द्वितीय संस्करण, मार्च २००७, पृ. २७१.

४) महात्मा फुले यांच्या अप्रकाशित आठवणी, पृ. ६९.

५) पाटील पंढरीनाथ, ज्योतिबा फुले यांचे चरित्र, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथम संस्करण, २००७, पृ. ६१.

६) ज्ञानोदय, दि.१५ मार्च, १८५५.

७) पाटिल पंढरीनाथ, पूर्वोक्त, पृ. ५८.

८) राक्षे रमेश, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. १९ मई २०१८.

९) महात्मा फुले यांची अप्रकाशित आठवणी, पूर्वोक्त, पृ. ३८.
१०) तड़ाखे शंकरभाऊ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. २८ अक्टूबर २०१६.
११) उगले जी. ए., पूर्वोक्त, पृ. १२३.
१२) तड़ाखे शंकरभाऊ, पूर्वोक्त।
१३) नरके हरी (संपा.), महात्मा फुले गौरवग्रंथ, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, महात्मा फुले, राजर्षि शाहू चरित्र प्रकाशन समिति, मुंबई, तीसरा संस्करण, २००६, पी। १४.
१४) महात्मा फुले यांच्या अप्रकाशित आठवणी, पृ. ३९.
१५) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।
१६) राक्षे रमेश, पूर्वोक्त।

अध्याय सात

लहूजी साल्वे और महाराष्ट्र से समाज सुधारक संबंध

७.१ प्रस्तावना

७.२ महात्मा ज्योतिराव फुले

७.३ सावित्रीबाई फुले

७.४ सदाशिव गोवन्दे

७.५ सखाराम परजम्पे

७.६ मोरो विट्ठल वालवेकर

७.७ रणबा गायकवाड़ (महार)

७.८ उस्मान शेखश्छ्द

७.९ फातिमा शेख

७.१० गानू शिवाजी साल्वे (मांग)

७.११ धूराजी आपाजी (चंबर)

७.१२ मुक्ता साल्वे

संदर्भ

अध्याय सात

लहूजी साल्वे और महाराष्ट्र से समाज सुधारक संबंध

७.१ प्रस्तावना

१७९४ से १८८१ ई. लहुजी साल्वे का कार्यकाल है और इस दौरान वे पेशवा काल और ब्रिटिश शासन के संपर्क में आए थे। नतीजतन, पेशवा काल में अस्पृश्यता और अराजकता के साथ-साथ भारत में नए स्थापित विदेशी ब्रिटिश शासन ने लहुजी के मन में काफी आक्रोश पैदा किया था। इस बार भारत के इतिहास में अस्पृश्यता की प्रथा, जातीयता, भेदभावपूर्ण या अवगुणनी का आधिपत्य था। लेकिन जब लहुजी साल्वे का जन्म अछूतों के रूप में जानी जाने वाली मांग जाति में हुआ था, तब भी वे अपने राष्ट्रीय और सामाजिक विचारों से प्रभावित थे और अछूत जाति के युवाओं के साथ-साथ सभी जातियों ने बड़ी संख्या में प्रशिक्षण में भाग लिया और सामाजिक शिक्षा का पाठ लिया। हथियारों के साथ समानता। ऐसे में लहुजी साल्वे कई समाज सुधारकों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे। शूद्रातिशुद्र के परिवार मे ज्ञान गंगोत्री ने उन्हें सत्यशोधक सामाजिक तरीके से ले जाने कि दिशा महात्मा ज्योतिराव फूले और सावित्रीबाई फूले इतने सक्रिय सामाजिक सुधार का कार्य करते थे। जिसमें- सदाशिवराव गोवंडे, परजम्पे, मोरो विट्ठल वालवेकर, रानबा गायकवाड़, उस्मान शेख, फातिमा शेख, गनु शिव साल्वे, गनु शिव साल्वे, आपाजी और मुक्ता साल्वे के रिश्ते की व्याख्या इस प्रकार है।

७.२ महात्मा ज्योतिराव फुले

महात्मा ज्योतिराव फुले को आधुनिक भारत के इतिहास में महिलाओं की शिक्षा के अग्रदूत और सामाजिक क्रांति के अग्रदूत के रूप में जाना जाता है। उनका जन्म ११ अप्रैल, १८२७ को हुआ था। लेकिन हजारों सालों से भारतीय समाज ने महिलाओं, कनिष्ठों और अछूतों को शिक्षा से दूर रखा था। उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं था। लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान, ईस्ट इंडिया कंपनी १८१३ ई. के चार्टर के अनुसार, भारत में पहली बार शिक्षा के द्वार महिलाओं, कनिष्ठों और अछूतों के लिए खोले गए थे। इसलिए १५ साल की उम्र में गोविंदराव फुले ने ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित स्कूल में ज्योतिराव का दाखिला करवाया दिया था। छात्र शिक्षा में अच्छी प्रगति करने वाले ज्योतिराव ने छत्रपति शिवाजी

महाराज, जॉर्ज वाशिंगटन और अन्य लोगों के और महापुरुषों की जीवनी पढ़ें थे।[१] थॉमस पेन के विचारों को की प्रेरणा का उन पर प्रभाव था। इसलिए उनमें देशभक्ति, उदारता, मानवता, वीरता, समानता आदि गुण से उनके विचार जाग्रत हुए थे।

इस काल में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अनेक छोटे-बड़े विद्रोह हुए। इन विद्रोहों ने स्वतंत्रता की भावना को प्रतिबिंबित किया था। उमाजी नाईक, राघोजी नाईक, चिमणाजी जाधव, रामचंद्र गोरे, बापू भांग्रे, रघु भांग्रे आदिने मिलकर देशभक्ती का संघर्ष किया था। ज्योतिराव फुले और उसके दोस्तों के बारे में सुना था। साथ ही सशस्त्र प्रशिक्षण पुना से लहुजी साल्वे के द्वारा किए गए थे। इसलिए वे स्वतंत्रता के विचार से अभिभूत थे। ज्योतिराव फुले और उनके दोस्त सदाशिव गोवंडे, सखाराम परजम्पे और मोरो विट्ठल वालवेकर उत्साही और महत्वाकांक्षी युवक थे। और वे होंगे, आपके रोने से छूटकारा पाने के लिए विदेशी जोखीम से, देशबंधूओं के लिए जोड़ें ताकि आप अपना जीवन गरीबी और अज्ञानता के साथ बिता सकें। यह सब करने के लिए उन्हें अपने शरीर को मजबूत रखने की जरूरत है। इसीलिए वह १८४७ में लहुजी साल्वे ने कुश्ती के साथ-साथ सभी प्रकार की सैन्य शिक्षा ग्रहण करना शुरू कर दिया।[२]

लहुजी साल्वे अछूतों के रूप में जानी जाने वाली मांग जाति के थे और लष्करी शिक्षा में एक कर्तबगार, साहसी, पराक्रमी और कुशल व्यक्ति थे। वह मल्लविद्या प्रशिक्षण के साथ-साथ अपने युवाओं को सामाजिक समानता का पाठ पढ़ाया करते थे। यही कारण है कि ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के इरादे से लहूजी साल्वे के प्रशिक्षण में प्रवेश करने वाले ज्योतिराव फुले ने अपना विचार पूरी तरह से बदल दिया और सामाजिक समानता के विचार की ओर मुड़ गए। इसका कारण लहूजी साल्वे की प्रगतिशील सोच थी। क्योंकि ज्योतिराव फुले के विचार शुरू में ब्रिटिश विरोधी थे। उनके कुछ क्रांतिकारी सोच वाले मित्र भी थे। लेकिन ज्योतिराव फुले ने गुरु लहुजीबुवा से भाला, भाला, तलवार आदि हथियार सीखना शुरू कर दिया। बाद में, ज्योतिराव के विचारों ने एक अलग मोड़ लिया था। मनुष्य को राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक सामाजिक स्वतंत्रता की आवश्यकता थी। उन्होंने महसूस किया कि अंग्रेजों का सबसे बड़ा दुश्मन हमारे देश में अज्ञानता, जातिवाद, गुलामी और सामाजिक असमानता थी।[३]

हालाँकि पेशवा काल के अस्त के साथ ही महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई थी, लेकिन पेशवा शासन की जड़ें समाज में गहराई से पहुंच चुकी थीं। जातिवाद की मानसिकता अभी भी लोगों के मन से नहीं गई थी। वहीं एक दोस्त की शादी की पार्टी से बाहर निकाले जाने के बाद ज्योतिराव को बहुत बुरा लगा था। क्योंकि इस काल में हिंदू धर्म पर कर्मठ सनातनी ब्राह्मणों के प्रभुत्व और लोगों के प्रति उनकी असहिष्णुता के कारण लोगों के साथ भेदभाव किया जाता था। इसलिए उन्होंने इस श्रेष्ठता के खिलाफ लड़ने का फैसला किया।

समाज में असमानता, अवांछनीय मानदंडों और परंपराओं को मिटाने के लिए सभी जातियों को शिक्षा की आवश्यकता थी। इसलिए महात्मा ज्योतिराव फुले ने अपना पूरा जीवन कर्मठ वर्ग के एकाधिकार को नष्ट करके शूद्रतिशूद्र तक शिक्षा की गंगा को पहुँचने की कोशिश में बिताया था।[४] यह जानते हुए कि शिक्षा का प्रचार और प्रसार करने की आवश्यकता थी। वह जानता था कि शरीर स्वस्थ थे और मन स्वस्थ था। इसलिए वे नियमित व्यायाम कर रहे थे। सुबह उठकर, जोर-जोर से बैठकें करना, फिर पढ़ने के लिए बैठना, शाम को दोस्तों के साथ सराव में जाना, पढ़ाई खत्म करके, मल्लविद्या के गुड़ रहस्य सीखना, साथ ही मर्दाना खेल खेलना, उनके शरीर को सुडौल बना दिया गया था।

ज्योतिराव फुले ने भविष्य में अपने जीवन की कठिण यात्रा के लिए खुद को मुक्त करने का महान लक्ष्य प्राप्ति के लिए शारीरिक दृष्टी से मजबूत बनाने की जरूरत को ध्यान में रखकर लहुजी साल्वे से तलवारबाजी, दाण्डपट्टा, निशानेबाजी, छडीपट्टा, बोथाटी, भाला फेंक, आदि कलाक्षेत्र में निपुनता प्राप्त कि थी। लहुजी साल्वे के तालीम में ज्योतिराव फुले ने लष्करी शिक्षा का विकास अच्छी तरह से प्रशिक्षण लिया था, जब वे दाण्डपट्टा घुमाते तब लोग बड़ी संख्या में जमा हो जाते थे। इसी तरह, ज्योतिराव फुले की पुना में एक उत्कृष्ट योगगुरू के रूप में ख्याति थी।[५]

१८४८ से १८८१ ई. के काल में लहूजी साल्वे और ज्योतिराव फुले एक दूसरे के करीब थे। यही कारण है कि ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू किए गए सामाजिक और शैक्षिक कार्यो में लहूजी साल्वे की सक्रिय भागीदारी दिखाई देती है। ज्योतिराव फुले ने प्रथम बालिका विद्यालय, कनिष्ठ और अछूत जाति के बच्चों के स्कूल, स्कूलों को जगह उपलब्ध कराने, चीजों को इकट्ठा करने, शिक्षा को अछूत समाज को बढ़ावा देने, मुंडन या समाज के केंद्र

के खिलाफ हड़ताल करने के लिए शुरू किया।, फूले दाम्पति रूढ़ीवादी कर्मठ सनातनी समाज से अछूतों की रक्षा के लिए, समाज सुधारकों की सुरक्षा के लिए, सत्यशोधक समाज में कनिष्ठ और अछूत वर्गो के लिए सच्चाई के लिए, मांग समाज प्रसार करने के लिए आदि कई गतिविधियों में लहूजी साल्वे सक्रिय रूप से शामिल थे। ऐसा लगता है कि उनकी भागीदारी के कारण ज्योतिराव फुले अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाए।

७.३ सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले को भारतीय नारी शिक्षा की अग्रदूत, समाज सुधारक, आदर्श शिक्षक के रूप में जाना जाता है। उनका जन्म ३ जनवरी, १८३१ में हुआ था। सावित्रीबाई ने ९ साल की उम्र में ज्योतिराव फुले से शादी कर ली क्योंकि उस समय बाल विवाह की प्रथा थी। उस समय ज्योतिराव की उम्र १३ साल थी। सावित्रीबाई फुले हर कार्य में ज्योतिराव फुले के साथ थीं। इसलिए ज्योतिराव ने १८४८ ई. में भारत का पहला बालिका विद्यालय पुना में स्थापित किया था। सावित्रीबाई, जिन्होंने बाद में कनिष्ठ और अछूत जाति के लड़कों और लड़कियों के लिए कई स्कूल स्थापित करके शिक्षा में क्रांति ला दी, उन्हें महिला शिक्षा के मूल में लहुजी साल्वे का समर्थन प्राप्त था। क्योंकि पुना जैसे कर्मठ रूढ़िवादी माहौल में निचली और अछूत जातियों के बच्चों के लिए शिक्षा के द्वार खोलते समय फुले दंपति को भारी विरोध का सामना करना पड़ा था। इसलिए लहुजी साल्वे ने अपने प्रशिक्षण में एक सेना बनाई थी। जो सावित्रीबाई के पीछे मजबूती से खड़ी थी। यही कारण है कि सावित्रीबाई पुना जैसे पारंपरिक शहर में महिलाओं की शिक्षा को आगे बढ़ाने में सक्षम थीं। लहुजी साल्वे ने सावित्रीबाई को अपनी पुत्री मानी थी। और अपने पिता की तरह उसकी रक्षा की थी।[६]

ज्योतिराव फुले ने पुना में भारत का पहला लड़कियों का स्कूल शुरू किया और सावित्रीबाई को उस स्कूल में लड़कियों को पढ़ाने की जिम्मेदारी दी गई थी। शिक्षकों का प्रशिक्षण पूरा करने के बाद सावित्रीबाई स्कूल में पढ़ाने चली गई थी। इस समय पुना में कर्मठ सनातनी वर्ग ने परेशान किया था। उन्होंने सावित्रीबाई के शरीर पर गोबर, कीचड़, पत्थर और पानी फेंकतें थे। स्कूल आने-जाने के दौरान उसे मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जा रहा था। फिर भी उन्होंने जीवन की परवाह न किए बिना शूद्रतिशूद्रों

को ज्ञान प्रदान करने के इस छल से अपना कार्य रुकने नहीं दिया। बिना किसी मोबदला बिना किसी वेतन अपने शिक्षा का कार्य जारी रखा।

पुना में कुछ कर्मठ सनातनियों ने अछूत बच्चों के माता-पिता को ज्योतिराव फुले द्वारा स्थापित स्कूलों को बंद करने की धमकी दी। सावित्रीबाई की हत्या करने के लिए हत्यारों को भेज था। रूढ़िवादी सोच वाले लोगों से सावित्रीबाई फुले की रक्षा लहुजी साल्वे ने की थी।[७] स्नेही और करुणामय सावित्रीबाई उनके बारे में रूढ़ीवादी सोच चलाने वाले लोगों उनको डराते थे। लेकिन कर्मठ विचारधारा के लोग यहीं नहीं रुके और अपनी पत्नियों को बढ़ावा दिया। महिलाओं ने कूड़ा फेंककर, गाली-गलौज आदि कर सावित्रीबाई को परेशान करना शुरू कर दिया। सावित्रीबाई के घर पर कूड़ा-करकट डालकर दूषित करते थे, रात को पत्थर फेंकते थे। इसपर लहुजी साल्वे ने सोचा कि रूढ़ीवादी सोच को बदलने के लिए अपनी तालीम में जो योधा थे उन्हें रूढ़ीवादी लोगो के घर के सामने कूडा-करकट और पत्थर फेंकने को कहा था। इससे कर्मठ लोगों की मानसिकता रखने वालों और सावित्रीबाई को परेशान करने वालों में डर का माहौल पैदा हो गया। समय की आवश्यकता को समझते हुए लहूजी साल्वे ने ज्योतिराव फुले के महिला शिक्षा कार्य में भाग लिया, जिन्होंने लड़कियों और अछूतों के लिए शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। स्कूल में पढ़ाने जा रही सावित्रीबाई को उसके पहलवानों की कड़ी सुरक्षा में स्कूल भेज दिया गया। वह खुद स्कूल जाता था और सावित्रीबाई और अन्य शिक्षकों को सुरक्षा प्रदान करता था। फलस्वरूप सावित्रीबाई को कर्मठ मानसिकता वाले लोग कम परेशान करते थे।

सावित्रीबाई फुले को लहूजी साल्वे ने स्कूल जाने और आने की परेशानी से बचाया था। लहूजी के तालीम में वीर योधाओं को देखकर कर्मठ विचारधारा के लोग भयभीत हो उठे थे। इसलिए किसी की भी सावित्रीबाई को परेशान करने की हिम्मत नहीं हुई। जैसे ही लहूजी साल्वे अपनी निगरानी में फुले दंपति की रक्षा करते रहे, शूद्रतिशूद्र के बच्चों को शिक्षा मिली और उनमें शैक्षिक जागरूकता हुई थी।[८]

यह कहना सुरक्षित है कि शिक्षा के क्षेत्र में सावित्रीबाई के प्रवेश के बाद से, हिंदू महिलाओं ने सचमुच सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश किया है। लेकिन पुना के मेहनती लोगों ने ज्योतिराव के पिता गोविंदराव फुले का दम घोंटना शुरू कर दिया था। इसलिए ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले को बड़े दुखी मन से घर छोड़ना पड़ा। इस समय, लहुजी साल्वे

ने ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले को पुना के गंजपेठ में रहने के लिए उनके घर से कुछ दूरी पर एक घर प्रदान किया। उसी तरह दुनिया ने उपयोगी सामग्री दी। इसलिए फुले दंपति पूरी तरह से शैक्षिक कार्यो पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम थे। जब सावित्रीबाई स्कूल जा रही थी तब लहूजी साल्वे ने भी उनके संरक्षक के रूप में कार्य किया।

लहूजी साल्वे और रानबा गायकवाड़ अछूत लड़के-लड़कियों जैसे महार, मांग, चमार, ढोर आदि को सावित्रीबाई के स्कूल भेजते थे। लहुजी साल्वे ने फुले दंपति की बहुत मदद की थी जब ज्योतिराव और सावित्रीबाई अछूतों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए व्याख्यान दे रहे थे। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से व्याख्यान में भाग लिया, अपने भाइयों को दंपति के नेक इरादों के बारे में बताया और उन्हें अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित किया। लहूजी साल्वे ज्योतिराव फुले के हर सामाजिक और शैक्षिक कार्यो में शामिल थे। उन्होंने सावित्रीबाई को अपनी बेटी माना और पिता की तरह उसकी रक्षा की। सावित्रीबाई लहूजी साल्वे के अंतिम संस्कार में ज्योतिराव फुले के साथ मौजूद थीं।[९]

७.४ सदाशिवराव गोवंडे

सदाशिवराव गोवंडे का जन्म ८ दिसंबर, १८२४ को पुना में हुआ था। उनकी शिक्षा एक मिशनरी स्कूल में हुई थी। इस स्कूल में पढ़ते समय, उनके करीबी दोस्त ज्योतिराव फुले, सखाराम परांजपे और मोरो विट्ठल वालवेकर थे। मिशनरियों के परोपकारी कार्यो और लहूजी साल्वे की समतावादी विचारधारा के कारण वे एक सुधारवादी बन गए। इसलिए इस बात के प्रमाण हैं कि सदाशिव गोवंडे ने ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू की गई अछूतों के स्कूल की अध्यक्षता को स्वीकार कर अपने शैक्षिक कार्यो में अमूल्य मदद की है। सदाशिव गोवंडे ने सोचा कि अगर ब्राह्मणों ने सुधार को स्वीकार नहीं किया, तो पूरा समाज एक हजार साल तक बदहाली की स्थिति में रहेगा। ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू किए गए स्कूलों में लड़कों और लड़कियों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी। चूंकि सदाशिवराव गोवंडे उस समय एक सरकारी अधिकारी थे, इसलिए उनका संपर्क प्रिंसिपल कैंडी, पुना कलेक्टर जोन्स साहेब और मिशनरियों से था। सदाशिव गोवंडे ने अछूतों के स्कूल के लिए इन मंडलियों की मदद करने के लिए एक समान अनुरोध किया। तो इनमें से कुछ गृहस्थों ने छोटे और बड़े दान किए, जबकि अन्य ने मासिक अंशदान किया था।

गंजपेठ (पुना) में अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में, लहुजी साल्वे ने कई क्रांतिकारियों को तलवारबाजी, दाण्डपाट्ट और कुश्ती में सैन्य प्रशिक्षण प्रदान किया। इनमें ज्योतिराव फुले के सहयोगी सदाशिव गोवंडे भी शामिल थे। ई. १८४७-४८ से वे लहूजी साल्वे के संरक्षण में तालीम और लष्करी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। इसका उल्लेख है महात्मा फुले लिखित गुलामगिरी या पुस्तक १८९५ में प्रकाशित हुई थी। जिसमें स्वामी वेंकय्या अय्यावारू ने गुलामगिरी पुस्तक में प्रस्ताविक किया था। जिसमें ज्योतिराव फुले और उनके सहयोगियों का उल्लेख किया है। १३ साल की उम्र में ज्योतिराव फुले ने सरकारी स्कूल में प्रवेश लिया। उस समय उनके करीबी दोस्त सखाराम परांजपे, सदाशिव गोवंडे और मोरो विट्ठल वालवेकर थे। जबकि सदाशिवराव गोवा के छत्रपति शिवाजी महाराज ने शिक्षा और वाचन के साथ-साथ जॉर्ज वॉशिंगटन के क्रांतिकारी तरीकों के इतिहास के महान व्यक्तित्वों के उस्ताद लहूजी साल्वे साल्वे लहूजी को अपने दोस्तों द्वारा प्रशिक्षित अच्छी तरह से निकाल दिया, दाण्डपट्टा सीखना शुरू कर दिया।

सदाशिव गोवंडे के जन्म से पहले पेशवा काल का अस्त कर दिया था। उस समय पढ़ाई करते हुए उन्होंने अंग्रेजो को इस देश से निकाल देना चाहिए, लेकिन कैसे? सदाशिवराव के लिए यह एक बड़ा सवाल था। क्योंकि सदाशिवराव के ब्राह्मण गुरुजी ने उनका मन स्वदेशी की शिक्षाओं से भर दिया था। तो उन्होंने विद्रोह सीखने के लिए लहूजी साल्वे से यह सबक सीखा, लेकिन उन्हें अंग्रेजों की शक्ति का वास्तविक अंदाजा हो गया और उन्होंने विद्रोह के पागल विचार को त्याग दिया।[१०]

कई क्रांतिकारियों और समाज सुधारकों ने लहुजी साल्वे के संरक्षण में सशस्त्र शिक्षा लेकर देश की सेवा में योगदान दिया। में इस १८४७ से १८५५ ई. तक के दौरान सदाशिव गोवंडे का सामाजिक कार्य उल्लेखनीय है। उन्होंने न केवल सैन्य शिक्षा प्राप्त की, बल्कि सामाजिक समानता में लहुजी साल्वे की भूमिका के कारण, सदाशिव गोवंडे ने ज्योतिराव फुले के सामाजिक कार्यो में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

७.५ सखाराम परजम्पे

सखाराम परजम्पे ज्योतिराव फुले के करीबी दोस्त और लहूजी साल्वे के शिष्य के रूप में जाने जाते हैं। उनकी शिक्षा एक ईसाई मिशनरी स्कूल में हुई थी। अध्ययन के दौरान, कुछ ब्राह्मण गुरुओं की शिक्षाओं के साथ-साथ छत्रपति शिवाजी महाराज, जॉर्ज वाशिंगटन,

नेपोलियन बोनापार्ट जैसे महान व्यक्तित्वों के चरित्रों को सखाराम परजम्पे ने अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के इरादे से पढ़ा था। ज्योतिराव फुले, सदाशिव गोवंडे और मोरो वाल्वेकर की तरह, लहुजी साल्वे ने सखाराम परजम्पे को सभी प्रकार की सैन्य शिक्षा प्रदान की। सखाराम परजम्पे दाण्डपट्टा, तलवारबाजी, तैराकी और मल्लविद्या में कुशल थे।[११] लेकिन लष्करी शिक्षा लेने के बाद इस विद्या का उपयोग ब्रिटिश सत्ता का विरोध करने के लिए लष्करी शिक्षा केंद्र निर्माण करके संघर्ष किया। तथा क्रांतिकारी कार्य के बारे में कोई साक्ष सखाराम पराजंपे के बारे में मिलती नहीं है।

मिशनरियों के सेवा-दिमाग के काम और लहूजी साल्वे की समतावादी विचारधारा के कारण सखाराम परजम्पे सुधारवादी बन गए। इसलिए वे ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू किए गए अछूतों के स्कूल के कोषाध्यक्ष थे। कुछ समय के लिए उन्होंने अछूतों के स्कूल की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी स्वीकार की। लेकिन सबूतों के अभाव में उसके बाद के कार्यो की जानकारी उपलब्ध नहीं करायी गयी है.

७.६ मोरो विट्ठल वालवेकर

मोरो विट्ठल वाल्वेकर ज्योतिराव फुले के करीबी दोस्त और लहूजी साल्वे के शिष्य के रूप में जाने जाते हैं। एक ईसाई मिशनरी स्कूल में पढ़ते समय, उनके दोस्त ज्योतिराव फुले, सदाशिव गोवंडे और सखाराम परजम्पे थे। इस समय अध्ययन करते हुए कुछ ब्राह्मण गुरुओं की शिक्षाओं के साथ-साथ महापुरुषों की जीवनी पढ़ने से मोरो विट्ठल वालवेकर के साथ-साथ उनके मित्र में भी देशभक्ति की भावना जागृत हुई। इस क्रांतिकारी सोच से प्रभावित होकर उन्होंने लहूजी साल्वे के संरक्षण में सैन्य प्रशिक्षण में प्रवेश किया था। लहुजी साल्वे ने उन्हें हर तरह की सैन्य शिक्षा दी। इनमें दाण्डपट्टा, तलवारबाजी, तैराकी और मल्लविद्या का प्रशिक्षण शामिल था।

ज्योतिराव फुले, सदाशिव गोवंडे और सखाराम परजम्पे जैसे लहूजी साल्वे के संरक्षण में लष्करी प्रशिक्षण के दौरान मोरो विट्ठल वाल्वेकर की सोच भी बदल गई। अपने मित्रों की भाँति वालवेकर का विचार था कि हिन्दू धर्म के मेहनतकश लोगों की तानाशाही को नष्ट कर धर्म में सरलता लानी चाहिए, स्त्रियों के उत्थान के लिए नारी शिक्षा शुरू की जानी चाहिए, अछूत बहुत खराब परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिए उन्हें भी शिक्षा प्राप्त करें। इसीलिए उन्होंने ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू की गई अछूतों के स्कूल के

सचिव का पद स्वीकार किया था।[१२] अछूतों के स्कूल को दान पाने के लिए, ब्रिटिश सरकार से अनुदान प्राप्त करने के लिए वाल्वेकर ने महत्वपूर्ण कार्य किए थे।

७.७ रानबा गायकवाड़ (महार)

रानबा गायकवाड़ लहूजी साल्वे के बहुत वफादार और करीबी दोस्त हैं और वह पुना के गंजपेठ इलाके में रहते थे। ई. १८३५ के आसपास, उन्होंने लहूजी साल्वे के साथ अपनी मल्लविद्या और लष्करी प्रशिक्षण पूरा किया। बाद में वह लहूजी साल्वे के संरक्षण में युवाओं को मल्लविद्या और लष्करी प्रशिक्षण प्रदान करते थे।[१३] पुना के दक्षिण में गुलटेकड़ी के एक तरफ लहुजीबुवा और रानबा का शस्त्रास्त्र प्रशिक्षण सिखाने का अड्डा था जिसमें युवाओं को हथियार का प्रशिक्षण दिया जाता था।

अछूतों के पतन का असली कारण अज्ञानता को स्वीकार करते हुए, ज्योतिराव फुले ने पुना में अछूतों के लिए स्कूल शुरू किए। लेकिन पुना में कर्मठ लोगों के डर से अछूत अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए तैयार नहीं थे। इस मौके पर लहूजी साल्वे के साथ रानबा गायकवाड़ ने भी अछूत समुदाय को जागरूक किया। उन्हें शिक्षा के फायदे बताए थे। इतना ही नहीं, पुना जैसे पारंपरिक शहर में, अछूत शिक्षा के विरोध के बावजूद भाइयों के पीछे मजबूती से खड़े थे। उन्होंने उन्हें अपने बच्चों को ज्योतिराव फुले के स्कूल में भेजने के लिए प्रोत्साहित किया। इसलिए अछूतों ने अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू कर दिया।

लहूजी साल्वे के साथ रानबा गायकवाड़ भी ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले के पीछे मजबूती से खड़े रहे। रानबा ने अछूत भाइयों को ले जाने वाले स्कूली बच्चों को लाते हैं, इन कार्यो के बहुत प्रयासों से उन्हें शैक्षिक गतिविधियों में योगदान देने के लिए जोतिरवा की संरचनाओं के साथ कठिनाई। उन्होंने स्कूल के खर्च के लिए चंदा जुटाने के लिए लहूजी साल्वे के साथ भी काम किया। इसी प्रकार अछूत जातियों के भेद-भाव को दूर करके सभी को मिल-जुलकर रहना चाहिए। उन्होंने समाज में अवांछित प्रथाओं को मिटाने के लिए लहूजी साल्वे के साथ काम किया। इसलिए इस काल में अछूतों के बीच कोई विवाद नहीं था। सभी अछूतों को एक क्रांतिकारी आंदोलन की ओर बढ़ते हुए देखा जाने का कारण लहूजी साल्वे और रानबा गायकवाड़ द्वारा समाज में निहित विचारों के कारण था।

७.८ उस्मान शेख

उस्मान शेख यह लहूजी साल्वे के सहयोगी थे। और वह पुना के गंजपेठ में रहते थे। ज्योतिराव फुले ने१८४८ ई. में लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया और अपनी पत्नी सावित्रीबाई को शिक्षित करके और उन्हें लड़कियों के स्कूल में एक शिक्षका के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करके रूढ़ीवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया।[१४] इसलिए पुना के कर्मठ लोगों ने फुले दम्पति को सताया। स्कूल बंद करने की धमकी दी। इतना ही नहीं, गोविंदराव फुले पर दबाव ड़ाल दिया था। अपनी बहू के साथ स्कूल न भेजें जाने के कारण ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले उदास होकर अपना गृहत्याग किया था। उसके बाद लहुजी साल्वे ने गंजपेठ (पुना) में अपने दोस्त उस्मान शेख के घर से घरेलू सामान फुले दम्पति को दिया था।

उस्मान शेख लहुजी साल्वे के पड़ोस में सुधारवादी, मानवीय और प्रगतिशील विचारों के समर्थक थे। चूंकि ज्योतिराव फुले लहूजी साल्वे के शिष्य और एक सुधारवादी विचारक थे, उस्मान शेख ने अपना घर, बर्तन और अन्य उपयोगी सामग्री जोतीराव फुले को दिया था। इतना ही नहीं महिला शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले के कार्य से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी बहन फातिमा को शिक्षा की अनुमति लेकर स्कूल भेजा था। बाद में वही फातिमा ने सावित्रीबाई के साथ जोतीराव फुले के स्कूल में शिक्षिका के रूप में कार्य किया था।

७.९ फातिमा शेख

फातिमा शेख यह उस्मान शेख की बहन थी। और उनकी शिक्षा ज्योतिराव फुले के स्कूल में हुई थी। जैसे-जैसे स्कूल में छात्रों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती गई, फातिमा शेख ने एक शिक्षिका के रूप में सावित्रीबाई फुले के साथ अच्छा कार्य किया। ज्योतिराव फुले ने फातिमा को सावित्रीबाई फुले और सगुनाबाई क्षीरसागर के साथ अपने स्कूलों में गैर-ब्राह्मण शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के इरादे से एक सामान्य प्रशिक्षण स्कूल में प्रशिक्षण के लिए भेजा था।[१५] फातिमा शेख पहली मुस्लिम छात्रा और ज्योतिराव फुले के स्कूल में पहली मुस्लिम शिक्षक थीं। उन्होंने अछूत समुदाय की लड़कियों को शिक्षित करने के साथ-साथ स्कूल के विकास के लिए भी कड़ी मेहनत की थी।

फातिमा ने अछूत समुदाय की लड़कियों के लिए एक स्कूल में सावित्रीबाई के साथ कार्य किया। वह एक साहसी शिक्षिका के रूप में कार्यरत थी। उनका शिक्षण कार्य सभी प्रकार से उत्थान और गुणवत्तापूर्ण था। इसलिए सावित्रीबाई १० अक्टूबर को, १८५६ ज्योतिराव फुले को एक पत्र में लिखा था, स्कूल के कार्य को फातिमा बहुतही मन लगाकर न रोतेधोते भरपूर मेहनत से करती है।

फातिमा शेख की शिक्षा को उनके भाई उस्मान शेख ने समर्थन दिया था। लेकिन उस समय की कर्मठ विचारसरणी रखनेवाले मानसिकता ने फुले दम्पति को परेशान कर दिया। इस बार फातिमा को भी इस विरोध का सामना करना पड़ा। इस समय लहुजी साल्वे ने तालीम के योधाओं को स्कूल के सभी शिक्षकों, फुले दम्पति, फातिमा और ज्योतिराव का साथ बड़ी कठिनाई से दिया। उसके साथ-साथ शिक्षक और छात्र को सुरक्षा दी। उन्होंने समय-समय पर उन्हें शैक्षिक कार्यो के लिए प्रोत्साहित भी किया और कर्मठ लोगों की खबर ली।

७.१० गानू शिवाजी साल्वे (मांग)

गानू शिवाजी साल्वे यह लहुजी साल्वे के भतीजे थे और एक बेहतरीन पहलवान के तौर पर मशहूर थे। लहुजी साल्वे के विचारों से प्रभावित होने के कारण उन्होंने सामाजिक कार्यो के लिए आगे बढ़े थे। १८४७ ई. में लहुजी साल्वे के संरक्षण में एक रात का स्कूल शुरू किया गया था। गणु शिवाजी मांग ने धूराजी आपाजी चमार के साथ उस स्कूल में प्रौढ़ शिक्षा ली थी।[१६] ज्योतिराव फुले उस स्कूल में पढ़ा रहे थे।

ज्योतिराव फुले ने छोटे और अछूत भाइयों के लिए कई स्कूलों की स्थापना की थी। लहूजी साल्वे और रानबा गायकवाड़ के प्रयासों से इन स्कूलों में अछूत छात्रों की संख्या बढ़ रही थी। लेकिन इस दौरान ज्योतिराव फुले को कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा। कर्मठ विचारसरणी रखनेवाले के डर से सवर्ण जाति का कोई भी अछूत बच्चों को स्कूल भेजने को तैयार नहीं था। तो कुछ ऊँची जातियाँ बिना बड़ी तनख्वाह अध्यापन कार्य करने के लिए तैयार नहीं थे। विद्यालय में शिक्षकों की कमी थी। लहुजी साल्वे ने समय की आवश्यकता को समझते हुए अपने भतीजे गानू को एक अछूत स्कूल में शिक्षक के रूप में भेजा था। स्कूल नं. ३, गंजपेठ (पुना) में अछूतों के स्कूल में कक्षा तीसरी के शिक्षक

गणू शिवाजी साल्वे थे। उन्होंने छात्रों को आगे पढ़ना सिखाया।[१७] लेकिन उनके बाकी कार्य साक्ष एवं उल्लेख की कमी के कारण ज्ञात नहीं होता है।

७.११ धुराजी आपाजी (चमार)

धुराजी आपाजी यह ज्योतिराव फुले के स्कूल में एक उत्कृष्ट पहलवान और शिक्षक के रूप में जाने जाते हैं। वह मल्लविद्या के साथ-साथ लहूजी साल्वे से लष्करी शिक्षा लेते थे। इस बीच, लहुजी ने प्रशिक्षण के लिए एक नवीन प्रौढ शिक्षा की शुरूआत की थी। जिसमें ज्योतिराव फुले पर प्रौढ शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपने का फैसला किया, ताकि उनके प्रशिक्षण में युवाओं को कम से कम साक्षरता और अंकगणित का ज्ञान हो। इस प्रकार १८४७ ई. में लहुजी साल्वे के संरक्षण में प्रथम रात्रि पाठशाला प्रारंभ की गई। धूराजी अपाजी चमार ने गनु शिवाजी मांग के साथ उस स्कूल में प्रौढ़ शिक्षा ली थी।[१८] ज्योतिराव फुले इन सभी युवाओं को पढ़ाते थे।

ज्योतिराव फुले ने स्थापित कनिष्ठ और अछूत भाइयों के स्कूल में छात्रों की संख्या बड़ी संख्या में बढ़ रही थी। लेकिन उच्च जाति का कोई भी अछूत बच्चों को सनातन के डर और बड़ी तनख्वाह के बिना स्कूल में पढ़ाने को तैयार नहीं था। स्कूल में शिक्षकों की कमी थी। इसलिए लहुजी साल्वे ने समय की आवश्यकता को समझते हुए छात्रों को पढ़ाने के लिए धूराजी अपाजी चमार और उनके भतीजे गनु शिवाजी मांग को शिक्षक के रूप में नियुक्त किया था। भोकरवाड़ी (पुना) मे स्कूल नं. १ का उद्घाटन धूराजी आपाजी चमार ने किया था। अछूतों के एक स्कूल में चतुर्थ श्रेणी के शिक्षक के रूप में काम किया।[१९] लेकिन उनके बाकी कार्य साक्ष एवं उल्लेखं के अभाव में ज्ञात नहीं हैं।

७.१२ मुक्ता साल्वे

मुक्ता साल्वे लहुजी साल्वे के छोटे भाई शिवाजी की बेटी थी और उन्हें अछूत जाति के पहले शिक्षित छात्र और पहले निबंधकार के रूप में जानी जाती थी। उनका जन्म ५ जनवरी १८४१ में गंजपेठ (पुना) में हुआ था। मुक्ता बचपन से ही लहूजी साल्वे के विचारों से प्रभावित रही थी। मुक्ता अत्यंत तेज बुद्धि की थी। इसलिए, वह कम उम्र में ही अछूतों के खिलाफ अन्याय और अत्याचारों से अवगत थी।

मुक्ता के बड़ी हुई तब उनके पिता शिवाजी की मृत्यु हो गई। लेकिन उनकी तेज बुद्धि को देखकर लहूजी साल्वे ने मुक्ता के विवाह के विचार को किनारे कर दिया और

१० वर्ष की आयु में ज्योतिराव फुले द्वारा स्थापित अछूतों के स्कूल में उनका प्रवेश कर दिया। इसलिए मुक्ता साल्वे शिक्षा के पवित्र कार्य में लहूजी साल्वे के परिवार की पहली छात्रा थी।[२०] ज्योतिराव फुले के स्कूल की दूसरी वार्षिक परीक्षा १२ फरवरी १८५३ को हुई थी। इस अवसर पर श्रीमती ई. सी. जोन्स के हाथों पुरस्कार वितरित किए गए। यह पुरस्कार स्वीकार करते समय एक छोटी बहन ने स्पष्ट रूप से हमें बिना साड़ी-चोली का पुरस्कार दिए स्कूल के लिए एक पुस्तकालय देने का सुझाव दिया था।[२१] यह छोटी सी छात्रा मुक्ता साल्वे है। मुक्ता साल्वे ने १४ साल की उम्र में मांग-महारों के दुख पर एक ऐतिहासिक निबंध लिखा था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के सामने हमारा धर्म क्या है ? ऐसा प्रश्न प्रस्तुत किया गया। इन निबंधों को उस समय कई लोगों ने पढ़ा था। मुक्ता के विचारों की सभी ने सराहना की थी। इतना ही नहीं, निबंध का पहला भाग १५ फरवरी, १८५५ के ज्ञानोदय समाचार पत्र में उस समय प्रकाशित हुआ था। और उसके बाद ज्ञानोदय समाचार पत्र के अंक में १ मार्च, १८५५ में प्रकाशित समय प्रकाशित हुआ था। इस निबंध से मुक्ता ने अछूतों से शिक्षा प्राप्त करने की अपील की। उन्होंने मांग-महार समुदाय के दुखों के बारे में भी लिखा और अपने निबंधों में इस समुदाय की महिलाओं के दुख की भयानक वास्तविकता का वर्णन किया।

मुक्ता साल्वे ने एक निबंध में कहा था की, हमारे पशु स्वभाव से भी मतलबी माना जाता है। इस व्यवस्था में लाडूखाऊ ब्राह्मणों ने वेदों को अपनी संपत्ति बना लिया। इसलिए हमें यह जानने की जरूरत है कि भगवान का सच्चा धर्म क्या है। भगवान का बनाया हुआ पानी सबको मिलता है, तो क्यों न भगवान से वेद बनवाया जाए? हालांकि, तेल और शेंदूर से हमें तबाह करने की योजना है। हमारी इस व्यवस्था में गधे की कदर भी नहीं करते। लिखना प्रतिबंधित है, लेकिन हमारी छाया नहीं छुई जाती। हमारे अछूत भाइयों के घर पर छत नहीं है, और हमारी दयनीय स्थिति है कि उनकी बीमारी की कोई दवा नहीं है। पंडितों को अपने सेब के बर्तन को थोड़ा लपेट कर रखना चाहिए। घर में चूहों को मारने वाले साहसी सवर्णों ने मांग-महारों पर आक्रमण कर दिया। पेशवा काल में अत्याचार चरम पर था। मांग-महार पर चोरी का आरोप लगा। एक मामूली अपराध के लिए उसका सिर कलम कर दिया गया था। लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान यह अन्याय रूक गया। इस समय के दौरान हमारे प्यारे भाई हमें हमारे महान दुख से बाहर निकालने के लिए कड़ी मेहनत कर

रहे हैं। अंग्रेजी सरकार इन स्कूलों की मदद करती है। लेकिन, हमारे भाइयों, बुद्धिमान बनो और अपने मन में बुरे विचारों को दूर करो और बुरे काम मत करा।[२२]

मुक्ता साल्वे की शैक्षिक बुद्धिमत्ता को देखकर, लहुजी साल्वे ने बिना उनकी शादी में जल्दबाजी किए उन्हें शिक्षित किया और बाद में उनकी शादी १८५९ ई. में शिकरापुर (ता। शिरूर, जिला पुना) के कृष्णजी जाधव नाम के एक युवक से कर दी। मुक्ता शादी के बाद अपने पति के साथ गंजपेठ में लहूजी साल्वे के घर रह रही थी ताकि बुढ़ापे में लहूजी साल्वे को सहारा मिल सके। इसी बीच मुक्ता साल्वे की मुलाकात सावित्रीबाई से हुई। १८७६ ई. के अकाल के दौरान अनाथों और नेत्रहीनों की सेवा की। उन्होंने सावित्रीबाई की बीमारी में भी अहम भूमिका निभाई थी। उसी तरह उन्होंने अछूत समाज में सत्य की खोज करने वाले समाज का प्रसार और प्रचार किया था।[२३] लेकिन मुक्ता साल्वे के बाकी कार्यो की जानकारी सबूतों के अभाव में उपलब्ध नहीं हो सकती है।

आधुनिक भारत के इतिहास में १८२२ से १८८० ई. इस बीच मुक्ता साल्वे ने सावित्रीबाई फूले के साथ समाज सुधार के कार्य में सामाजिक और शैक्षिक विकास में सक्रिय हिस्सा लिया और संघर्ष करने के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान दिया था। सावित्रीबाई फूल, सदाशिवराव गोवंडे, सखाराम पराजंपे, मोरो विट्ठल वालवेकर, रानबा गायकवाड़, उस्मान शेख, फातिमा शेख, गणू साल्वे, धुराजी आपाजी, मुक्ता साल्वे आदि ने अपने शिष्यों और उनके सहयोगियों के साथ साथ, वह सामाजिक और शैक्षिक सुधार आंदोलनों को प्रोत्साहन देने के लिए काम किया।

सन्दर्भ :

१) गोवंडे वि. भा., त्रिमूर्तिदर्शन या सदाशिव गोवंडे का चरित्र, प्रकाशिका श्रीमती लक्ष्मीबाई गोवंडे, पुना, प्रथमावृत्ति,१९५३ पृ. ३३.

२) रानडे गो. मो, महात्मा ज्योतिबा फूल, मंगल प्रकाशन, नागपुर, प्रथमावृत्ति, १९८९, पृ. ९.

३) कित्ता, पृ. ८.

४) पाटिल पंढरीनाथ, ज्योतिबा फुले यांचे चरित्र, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथम संस्करण, २००७, पृष्ठ. १४.

५) किर धनंजय, महात्मा ज्योतिराव फुले, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २००५, पृ. १६.
६) मारवाडे नरेंद्र, क्रांतिसूर्य लहूजी साल्वे, लोकसाहित्य प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण २०१०, पृ. १६.
७) उगले जी. ए., सावित्रीबाई फुले, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, द्वितीय संस्करण २००९, पृ. १०६.
८) खडसे खुशाल, आद्य क्रांतिगुरु वस्ताद लहुजी साल्वे, नेहा प्रकाशन, नागपुर, २००९ संस्करण, पृ. ७२.
९) सिंदगीकर अंकुश, लहूजी साल्वे और मातंग समाज, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, पहला संस्करण, २००९, पृ. ६२.
१०) गोवंडे वि. भा., पूर्वोक्त, पृ. ३१.
११) कित्ता, पृ. ३३.
१२) कित्ता, पृ. ५९.
१३) जोशी वि. श्री., आद्य क्रांतिवीर वासुदेव बलवंत फड़के, राजा प्रकाशन, मुंबई, तीसरा संस्करण, १९८८, पृ. ८८.
१४) जाधव किशन निवृति, (लहुजी साल्वे के परपोते), गंजपेठ, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. ७ नवंबर २०१४.
१५) गरूड सचिन, मुक्ता साल्वे, फातिमा शेख और लहुजी साल्वे के प्रतीक और समकालीन सांस्कृतिक राजनीति, नालंदा की नागरिक-रिलीज, इस्लामपुरा, प्रथमावृत्ति, २०१३, पृ. १८.
१६) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।
१७) किर धनंजय, स. गं. मालशे और फड़के य. दी., (संपा.), महात्मा फुले समग्र वाङ्मय, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति मंडल, मुंबई, छठा संस्करण, २००६, पृ. ७०१.
१८) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।
१९) किर धनंजय, स. गं. मालशे और फड़के य. दी., (संपा.), पूर्वोक्त, पृ. ७०२.
२०) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।

२१) उगले जी. ए., पूर्वोक्त, पी. १६.
२२) ज्ञानोदय, दि. १५ फरवरी, १८५५ और दि. १ मार्च, १८५५।
२३) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।

अध्याय आठ

लहूजी साल्वे और समकालीन क्रांतिकारी और शिष्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ सत्तू नाईक

८.३ प्रारंभिक क्रांतिकारी उमाजी नाईक

८.४ राघोजी नाईक

८.५ भगोजी नाईक

८.६ नानासाहेब पेशवा

८.७ तात्या टोपी

८.८ रंगो बापू

८.९ वासुदेव बलवंत फड़के

८.१० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

संदर्भ

अध्याय आठ

लहूजी साल्वे और समकालीन क्रांतिकारी और शिष्य

८.१ प्रस्तावना

लहुजी साल्वे ने भारतीय लोगों के मन में स्वतंत्रता की बेड़ियो को तोड़ने के लिए अजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए दिन-रात अथक परिश्रम किया, साथ ही एक कर्मठ समाज के खिलाफ सामाजिक परिवर्तन के लिए कार्य किया। उन्होंने ब्रिटिश शासन का विरोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। १८२२ ई. में सशस्त्र भारतीय युवाओ के लिए तालीम के माध्यम से जानाई के मले मे तालीम शिक्षा, तीरंदाजी, दाण्डपट्टा, छडीपट्टा आदि शिक्षाए प्रत्येक युवाओं को देकर सराव करवायां था। गुलटेकड़ी, कोंढाण्याच्य परिसरात निशाणेबाजी, भालाफेक, गोफणफेक और घुड़दौड या विद्य की लष्करी शिक्षा युवाओं को प्रदान की थी। युवकों को सैन्य प्रशिक्षण देते समय लहुजी और उनके शिष्यों ने गुप्त रूप से इस बात का ध्यान रखा कि अंग्रेजों के पास कोई खबर न पहुंच पाए। लहुजी साल्वे ने भारतीय युवाओं को सैन्य शिक्षा प्रदान करने के लिए भारत में पहले सशस्त्र प्रशिक्षण की स्थापना की। नतीजतन, वह कई क्रांतिकारियों के साथ निकटता से जुड़ा हुआ था। पेशवा और ब्रिटिश सरकार के सत्ता में आने पर नाईक, ब्रिटिश सत्तेविरूद्ध ने पहले उमाजी नाईक ने प्रतिसरकार की स्थापना की, आदिवासी लोगों ने राघोजी नाईक, एक आदिवासी नेता भगोजी नाईक, क्रांतिकारी तात्या टोपे, रंग बापू, बाबीया, योरीया, दौलतराव नाईक, कन्हैया, धर्मा, वासुदेव बलवंत फड़के और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के बीच संबंधों की चर्चा नीचे की गई है।

८.२ सत्तू नाईक

सत्तू नाईक यह रामोशी समुदाय के प्रमुख थे, उनके पूर्वज छत्रपति शिवाजी महाराज की सेना में मुखिया थे। नाईक यह शक्तिशाली और पराक्रमी होने के कारण उन्हें कई महत्वपूर्ण पद प्राप्त थे। छत्रपति शिवाजी महाराज ने उनके पराक्रम के कारण उन्हें कई महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां दी थीं। गढ़दुर्ग किले की संरक्षण की जिम्मेदारी रामोशी जाति को दी गई थी। लेकिन बाद में पेशवाओं और नए स्थापित ब्रिटिश शासन के उद्देश्यों और नीतियों के कारण सेना की भर्ती बंद हो गई। इसलिए रामोशी जाति को बेरोजगारी और

भुखमरी के दौर से गुजरना पड़ा था। निर्वाह का कोई साधन नहीं होने के कारण रामोशी समुदाय को डकैतियों का सहारा लेना पड़ा। नतीजतन, रामोशा को एक अपराधी के रूप में घोषीत किया गया था। इस व्यवस्था के विरोध में १८०३ से १८२५ ई. के बीच सत्तू नाईक ने रामोसी समुदाय का नेतृत्व किया था। ब्रिटिश अधिकारी के खजाने लुटे थे। ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या की, सावकारों, जमींदारों के बाड़े लूटने का शिलशिला शुरू किया था। सत्तू नाईक के गिरोह में लहूजी साल्वे का चचेरा भाई यशवंत सक्रिय था। क्योंकि सत्तू नाईक का संघर्ष पेशवा काल और ब्रिटिश शासन के अन्याय, दमन और असमानता के खिलाफ था ।

लहूजी साल्वे और रामोशी के रिश्ते काफी करीबी थे। ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए १८२२ ई. में लहुजी साल्वे ने पुना में एक सशस्त्र प्रशिक्षण शिविर स्थापित किया था। उस समय रामोशी जाति के अनेक युवक लहूजी से सैनिक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उन युवकों से लहूजी साल्वे सत्तू नाईक की ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करते थे। लेकिन तोड़फोड़, लूट करना सत्ता को मंजूर नहीं था। सत्तू नाईक की यह नीति लहुजी साल्वे पसंद नहीं थी। हालाँकि, कई रामोशी युवक जो लहूजी के प्रशिक्षण में सशस्त्र प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके थे, सत्तू नाईकों के समूह में शामिल हो गए थे।[१] इससे ब्रिटिश अधिकारियों और साहूकारों में भय का माहौल पैदा हो गया था।

जैसे-जैसे सत्तू नाईक की ब्रिटिश विरोधी गतिविधियाँ बढ़ती गईं, उन्हें सैन्य शिक्षा में प्रशिक्षित युवकों की और अधिक आवश्यकता होती गई। उस समय सत्तू नाईक ने लहूजी साल्वे को संदेश भेजा था की 'अपने विद्रोहियों को हमारे साथ भेजों।' उस समय लहूजी साल्वे ने सत्तू नाईक से गुपचुप मुलाकात की थी। यात्रा के दौरान, लहूजी साल्वे ने सत्तू नाईक से कहा था, 'सत्तूजी, मेरी लड़ाई इस देश में ब्रिटिश शासन को नष्ट करने और स्वशासन को बहाल करने की है।' यहां पेशवाओं की नीति के कारण अंग्रेजों ने स्वराज्य में सत्ता स्थापित की। इसलिए मुझे खुशी है कि आप इस स्वराज्य की गद्दी पर बैठे हैं ताकि पेशवा काल की फिर से स्थापना न हो सके। शिवाजी ब्रिटिश राज्य को इसके लिए, वहाँ कर करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि आप स्वराज्य की बहाली के लिए काम करते हैं, तो मेरे प्रशिक्षण में सभी योद्धा आपके साथ हैं। तदनुसार, लहूजी साल्वे ने सत्तू नाईक के गिरोह के युवाओं को सैन्य शिक्षा प्रदान की। इसी तरह उसके प्रशिक्षण में सैन्य प्रशिक्षण

प्राप्त करने वाले कई युवक रामोश के गिरोह में शामिल हो गए। इसमें बड़ी संख्या में मांग और रामोशी जातियां शामिल थीं।

लहूजी साल्वे के क्रांतिकारी विचारों ने लहूजी के बचपन के दोस्त सत्तू नाईक के गिरोह के उमाजी नाईक को अभिभूत कर दिया था। और उन्होंने राजा बनने का सपना देखा था।[२] इस बीच अगस्ट १८२५ ई. में सत्तू नाईक को कॉलरा होने के कारण मृत्यू हुआ उसके बाद रामोशी गिरोह का नेतृत्व उमाजी नाईक के पास चला गया।

८.३ प्रारंभिक क्रांतिकारी उमाजी नाईक

उमाजी नाईक को महाराष्ट्र के इतिहास में एक बहादुर, पराक्रमी और साहसी योद्धा के रूप में जाना जाता है । उन्होंने रामोशी जनजाति के माध्यम से ब्रिटिश शासन का विरोध किया। छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित स्वराज्य में, महाराष्ट्र में कई जातियों और जनजातियों को जो कनिष्ठ और अछूत के रूप में जाना जाता था, महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुए थे। इसलिए, इस जाति और जनजाति के कई युवाओं ने वंशपरंपरा से स्वराज्य की सेवा की। इसमें लहूजी साल्वे और उमाजी नाईक के पूर्वजों की भी विशेष भागीदारी थी। लहूजी साल्वे के पिता राघोजी और उमाजी नाईक के पिता पुरंदर किले के अंगरक्षक दादाजी नाईक के बीच घनिष्ठ संबंध थे। इसलिए पुरंदर के पैर में लहुजी साल्वे और उमाजी नाईक का बचपन एक साथ खेला गया।[३] लेकिन पेशवा काल का आखरी पेशवा बाजीराव दुसरा ने १८०२ ई. में, अंग्रेजों ने सैनिकों की तैनाती को स्वीकार कर लिया और पुरंदर के रामोशी के विध्वंस और किले के विध्वंस का आदेश दिया था। तब रामोशी ने इसका विरोध किया। इसलिए १८०४ ई. में पेशवाओं ने जम्भुलवाड़ी पर हमला किया और रामोशोंओ को गिरफ्तार कर लिया था। इस जनजाति ने तब निजाम के क्षेत्र में शरण ली।

महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद, कनिष्ठ और अछूत जातियों और जनजातियों के युवाओं में बेरोजगारी बढ़ गई थी। इसलिए, इस जाति और जनजाति के युवाओं ने अंग्रेजों, अत्याचारी साहूकारों और इस व्यवस्था के लिए जिम्मेदार ब्रिटिश लोगों की खबर पाने के लिए लूटपाट और डकैती का एक सिलशिला शुरू किया था। उमाजी नाईक की दुश्मनी अंग्रेजों से थी, एक ऐसे रवैये से जिसने उन्हें अपराधी बना दिया। अंग्रेजों में से, उमाजिका स्वयं स्थापित हो जाएगी। इसलिए उन्होंने इस संकल्प की पूर्ति के लिए संघर्ष किया। इसी दौरान उनके बचपन के दोस्त लहूजी साल्वे ने सशस्त्र प्रशिक्षण की

स्थापना करके सभी जातियों के युवाओं को ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ने के लिए सैन्य शिक्षा देना शुरू किया। उनके सशस्त्र प्रशिक्षण में कई युवा सैन्य प्रशिक्षण पूरा करने के बाद रामोशा के गिरोह में शामिल हो गए। उन्होंने सत्तू नाईक के नेतृत्व में ब्रिटिश और अत्याचारी साहूकारों के खिलाफ कई विद्रोहों का नेतृत्व किया था। इस गुट में उमाजी नाईक भी थे। फरवरी १८२४ ई. में, उन्होंने पुना के पास भाम्बुर्डे में एक ब्रिटिश तिजोरी को लूट लिया। यह अफवाह थी कि इस खजाने को उमाजी ने लूट लिया था। इसलिए ब्रिटिश अधिकारी उमाजी और उनके सहयोगियों की तलाश कर रहे थे। उस समय लहुजी साल्वे ने उमाजी और उनके साथियों को शरण दी थी।[४]

ई. १८२५ में, अंग्रेजों का विरोध करते हुए, सत्तू नाईक को कॉलरा हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। इसलिए रामोशी समाज का नेतृत्व उमाजी नाईक के पास आया। तब लहुजी साल्वे अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में सैकड़ों क्रांतिकारियों के साथ उमाजी की सहायता के लिए आए थे। उसने उमाजी से कहा था की 'तुम राजा बनो और ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंको। इसी तरह इस स्वराज्य के लोगों का ख्याल रखना था। मैं आपकी मदद करने की पूरी कोशिश करूंगा।' क्योंकि उस समय लहुजी ने उमाजी जैसे अन्य योग्य व्यक्ति को राजा के रूप में नहीं देखा था। इस अवधि के दौरान कई उपनिवेशवादी अंग्रेजों के साथ समझौता करने में लगे हुए थे। लहुजी का मत था कि पेशवाओं को वापस गद्दी पर बैठाना उनके पैरों पर पत्थर फेंकने जैसा था। क्योंकि लहुजी ने पेशवा का अनुभव किया था।

उमाजी नाईक ने ब्रिटिश विरोध में पहली प्रतिसरकार की स्थापना १८२६ ई. में की थी। उमाजी नाईक को राजा बनाने में लहुजी ने काफी योगदान दिया था।[५] उमाजी नाईक, कृष्णाजी नाईक और भुजाजी नाईक इन्होंने तीन सौ मांग और रामोशी युवाओं को जमा करके उनके साथ बड़ा समुह बनाकर पहाड़ों में शरण ली थी। बाद में इस गिरोह में युवकों की संख्या बढ़ती गई थी। उमाजी नाईक के पास पांच हजार लोग थे।[६] उमाजी नाईक ने खुद ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ प्रतिसरकार की स्थापना की, खुद उसने दरबार का आयोजन किया था, अध्यादेश चला रहे थे, वे आदेश दे रहे थे। लेकिन उस समय महाराष्ट्र की जनता उन्हें राजा बनना पसंद नहीं करती थी। क्योंकि उमाजी नाईक निचली जाति के थे और मनुस्मृति के अनुसार शूद्रों को राजा बनने का अधिकार नहीं था। इसलिए प्रगतिशील

विचारक लहुजी साल्वे इससे सहमत नहीं थे। उनके सभी साथी उमाजी नाईक के पीछे खड़े थे। उस समय कई लोगों ने उमाजी की मदद की थी। पाठलोजी धोगे और उनकी पत्नी कासाबाई ने क्रांतिकारियों के लिए और लहूजी के लिए सशस्त्र प्रशिक्षण के समय में उनकी जान की परवाह किए बिना भोजन और गोला-बारूद ले जाते थे।

उमाजी नाईक ने ब्रिटिश शासन का विरोध किया था। १८२६ से १८३२ ई. तक प्रतिसरकार बनाई और अंग्रेजों से भिड़ गए थे। लहूजी साल्वे की सलाह पर उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि साम्राज्य के रैयतों को कोई नुकसान न हो। साहूकारों ने कई किसानों की जमीनें जब्त कर लीं। शादी में गरीब दूल्हा-दुल्हन को उनके पास जेवर दिए गए। बहुतों लोगों की रक्षा की। उन्होंने लूट का कुछ हिस्सा दान के लिए खर्च किया था।[७] अंग्रेजों ने उमाजी नाईक को भगोड़ा घोषित कर दिया और उन्हें पकड़ने वालों को इमान देने की घोषण की थी। लेकिन गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से उमाजी नाईक ने अंग्रेजों से बच निकले। उन्होंने अंग्रेजों को मारने की भी अपील की थी। पर २१ दिसंबर, १८३० को, उमाजी का पीछा कर रहे ब्राईड और उनकी पलटन मांढरदेवी पहाड़ी से गोलियों और गुलेल से घायल हो गए। इसलिए अंग्रेज उमाजी से बहुत डर गए। पर २४ दिसम्बर १८३० को लिखें एक पत्र के अनुसार उमाजी नाईक लहूजी साल्वे से मिलने पुना आ रहे थे।[८] लेकिन एक ब्रिटिश अधिकारी कैप्टन एलेक्जेंडर मैकिन्टॉश ने उमाजी को पकड़ने के लिए जाल बिछाया था। अंततः ३ फरवरी, १८३२ को पुना के शुक्रावर पेठे में उमाजी नाईक को पिंपल के पेड़ से लटका दिया गया। इस घटना से लहुजी साल्वे को गहरा दुख हुआ। इस प्रकार उमाजी नाईक, जिन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया और पहली प्रति-सरकार का गठन किया, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पहले शहीद और क्रांतिकारी बने। उनके क्रांतिकारी कार्यो में लहुजी साल्वे का महत्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है।

८.४ राघोजी नाईक

राघोजी नाईक यह अकोले-सिन्नार क्षेत्र में महादेव कोली जनजाति के एक क्रांतिकारी थे। जिन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ १८३० से १८४८ ई. के काल में लढ़ाई लड़ी थी। लहुजी साल्वे की कई क्रांतिकारी गतिविधियों में वह शामिल थे। राघोजी नाईक ने १८३० ई. के आसपास, महादेव कोली और भील जनजातियों का नेतृत्व किया। ब्रिटिश शासन के कारण अन्य आदिवासी जातियों की तरह महादेव कोली के साथ भी अन्याय हुआ।

अंग्रेजों ने उनकी विरासत को रद्द कर दिया। तो सैनिक बेकार हो गए। इसी तरह, भू-राजस्व में वृद्धि, साहूकारों और जमींदारों के उत्पीड़न ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ महादेव कोली जनजाति में असंतोष पैदा किया था। ब्रिटिश शासन के कारण हम पर बेरोजगारी और भुखमरी आ गई। इसलिए राघोजी नाईक ने पुना, ठाणे, नासिक और अहमदनगर क्षेत्रों में महादेव कोली और भीलों को संगठित किया।[९] यह महसूस करते हुए कि इस शासन को नष्ट करने के लिए सभी को मिलकर लड़ना चाहिए।

राघोजी नाईक ने युवाओं के द्वारा ब्रिटिश राजकोष लूटने का आयोजन किया था। ब्रिटिश अधिकारियों को नष्ट किया था। इस सिलसिले में दमनकारी सवकारों और जमिनदारों के घरों को लुटना शुरू किया था। राघोजी और महादेव कोली जनजातियों को आतंकित करने के लिए, अंग्रेजों ने कुछ आदिवासियों को पकड़ लिया और आदिवासियों को नासिक और अहमदनगर जिलों में कैद कर दिया। उन्हें जेल में प्रताड़ित किया गया। पीने के पानी और भोजन की कमी के कारण कई आदिवासियों की जेलों में मौत हो गई। बाकी की गोली मारकर हत्या कर दी गई। खबर जंगल में आग की तरह फैल गई। फिर चोरी-छिपे आदिवासी युवक पुना के लहूजी साल्वे आ रहे थे। उनके प्रशिक्षण में पाक कला विद्रोह। बापू भांगरे, भाऊ खरे, रघु भांगरे, नाना दरबारे, चिमानाजी जाधव जैसे सेनानी थे।[१०]

महादेव कोली और भील जनजाति के कई युवाओं ने लहूजी साल्वे से सैन्य शिक्षा ली और यह युवक क्रांतिकारी भावना से प्रेरित होकर राघोजी नाईक के पास आया था। बापू भांगरे यह राघोजी से अपने महादेव कोली और भील युवाओं के साथ ब्रिटिश शासन का सामना करने के लिए मिले थे। लेकिन अंग्रेजों का विरोध करते हुए बापू भांगरे को फितूरी ने मार डाला गया था। इस समय राघोजी की देखभाल के लिए उसे पकड़ने वाले को पांच हजार रुपये के इनाम की घोषणा की गई। राघोजी नाईक को फितूरी के कारण गिरफ्तार किया गया था। उन्हें २ मई, १८४८ को मौत की सजा सुनाई गई थी।

८.५ भागोजी नाईक

भागोजी नाईको ने १८५७ ई. के आसपास, भील और महादेव कोली को ब्रिटिश शासन के खिलाफ नासिक और अहमदनगर जिलों में कोली जनजाति का नेतृत्व किया। क्योंकि छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने स्वराज्य में सहयाद्री की घाटी में रहने वाले भीलों और महादेव कोली जनजातियों को उनके साहसी और ईमानदार स्वभाव के कारण सम्मान

का स्थान दिया था। लेकिन ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद, भीलों और महादेव कोली जनजातियों के पास किले की रक्षा करने की जिम्मेदारी नहीं थी। उनकी पारंपरिक चल रही नियुक्तियों को रद्द कर दिया गया था। इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने आदिवासियों के जंगल में प्रवेश करने के अधिकार को रद्द कर दिया, जिस पर उनकी आजीविका निर्भर थी, मवेशियों को चराने के लिए इन कबीलों ने अंग्रेजों के खिलाफ कई छोटे-बड़े विद्रोह शुरू कर दिए थे।[११]

१८५७ ई. के विद्रोह के आसपास, भागोजी नाईक ने आदिवासियों के अधिकारों को वापस पाने के लिए भील और महादेव कोली जनजातियों के युवाओं को एकजुट करने का काम किया। इस समय, भील और महादेव कोली जनजाति के युवाओं ने, जिन्होंने लहूजी साल्वे से कुश्ती और सैन्य शिक्षा सीखी थी, भागोजी नाईक के ब्रिटिश-विरोधी संघर्ष में सक्रिय भाग लिया। लहुजी साल्वे ने भी इस लड़ाई का समर्थन किया। क्योंकि लहूजी साल्वे का कई आदिवासी युवाओं से संपर्क था। इसलिए वह मिलते थे।[१२]

लहुजी साल्वे अपने क्रांतिकारी कार्यो के लिए नासिक, अहमदनगर जाया करते थे। इसलिए उनके प्रशिक्षण में भील और महादेव कोली जनजाति के युवाओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। भागोजी नाईक ने लहूजी साल्वे के संरक्षण में हथियार प्रशिक्षण में कुशल एक युवक को पाकर अंग्रेजों के खिलाफ उग्र आंदोलन शुरू किया। भगोजी नाईक द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह सिन्नार, अकोले, संगमेश्वर, परनेर में तहसीलदार ने आदेश देते हुए, सरकार के खिलाफ खजाने के शिकार के ऐसे सराव शुरू हो गए थे। इसलिए अहमदनगर के पुलिस अधीक्षक हेनरी भागोजी को गिरफ्तार करने के लिए ४० सैनिकों के साथ आए थे। लेकिन भागोजी ने गोली मारकर उसकी हत्या कर दी। इतना ही नहीं लेफ्टिनेंट ग्लासपूल ने भगोजी को पाने के लिए एक शर्त लगाई। लेकिन भागोजी की सेना ने ग्लासपूल को नीचे कर दिया। अंग्रेजों ने भागोजी की देखभाल के लिए कर्नल ऊंट, ग्राहम, मेजर चैपमैन और अन्य अंग्रेजी अधिकारियों को भेजा। दोनों सेनाओं में लड़ाई हुई और तीनों पुलिस अधिकारी भागोजी द्वारा मारे गए। यह भागोजी नाईक की बहुत बड़ी जीत थी।

भगोजी नाईक के आक्रामक कार्यो से क्रोधित होकर, अंग्रेजों ने निर्दोष भील और महादेव कोली पुरुषों और महिलाओं पर अत्याचार किया और उन्हें पकड़ लिया। इस समय

भागोजी नाईक ने ५०० क्रांतिकारियों के साथ अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी। लेकिन उसके बाद की लड़ाई में भागोजी सहित उसके ४५ साथी मारे गए थे। १८५७ ई. के विद्रोह के समय पुना शहर की सुरक्षा अच्छी थी। लेकिन लहुजी ने भागोजी नाईक की मदद के लिए अपने कुछ योद्धाओं को दिया था। उस प्रशिक्षित सेना की सहायता से भागोजी ने अंग्रेजों से बड़े साहस के साथ युद्ध किया।

८.६ नानासाहेब पेशवा

नानासाहेब पेशवा यह १८५७ ई. के विद्रोह में एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में जाना जाता थे। धोंडुपंत यह नानासाहेब के नाम से जाने जाते थे। १८५७ ई. के विद्रोह के समय वे ३५ वर्ष के थे और बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे। १८५१ ई. में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के कारण, उनकी ८ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन अंग्रेजों द्वारा रद्द कर दी गई थी। नानासाहेब पेशवा ने इस पेंशन को शुरू करने के लिए काफी प्रयास किए। लेकिन कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स अपने फैसले पर अड़े रहे। नानासाहेब बहुत नाराज थे कि अंग्रेजों ने उनकी पेंशन रद्द कर दी। सर्जरी उनके दिमाग को लगातार सता रही थी। स्वतंत्रता की हानि की तीव्र अनुभूति उनके मन को आहत कर रही थी। पुना में पूर्ण प्रतिष्ठा वापस ला सके ऐसी अपेक्षा नानासाहेब पेशवा के अंर्तमन को व्याप्त थी।[१३] इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ विद्रोह किया।

अंग्रेजों ने वित्तीय कारणों का हवाला देते हुए बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नानासाहेब पेशवा की विरासत से इनकार किया। पेशवा ने खिताब को खारिज कर दिया। इसलिए नानासाहेब पेशवा के मन में ब्रिटिश विरोधी असंतोष घूम रहा था। तब नानासाहेब पेशवा भारत में ब्रिटिश शासन को नष्ट करने के लिए निकल पड़े। १८५७ ई. के विद्रोह की कल्पना की गई थी। तीर्थयात्रा के अवसर पर, वह भारत में कई उपनिवेशवादियों और क्रांतिकारियों के संपर्क में आए । इस अवधि के दौरान, कारतूस के मुद्दे के कारण, भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के खिलाफ कई विद्रोह शुरू कर दिए। कानपुर में ब्रिटिश सेना में भारतीय सैनिकों द्वारा विद्रोह की खबर सुनाई गई। इससे कानपुर में सैनिकों के बीच विस्फोटक स्थिति पैदा हो गई और उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। उस समय रास्ते में सैनिकों की मुलाकात नानासाहेब पेशवा से हुई। क्योंकि यह विद्रोही एक ऐसा नेता चाहते थे जो नानासाहेब पेशवा के रूप में उनसे मिले। नानासाहेब पेशवा ने भी विद्रोही सैनिकों

के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया और अपनी सेना को दिल्ली की ओर बढ़े बिना वापस कानपुर ले आए। पर १ जुलाई, १८५७ को नानासाहेब ने खुद को पेशवा घोषित कर दिया। इसलिए, यह सुनकर कि कानपुर स्वतंत्र हो गया था, उन सभी प्रांतों में क्रांति की लहर दौड़ गई थी।[१४]

कानपुर में नानासाहेब पेशवा के सत्ता में आते ही अंग्रेजों ने अपनी सेना कानपुर भेज दी थी। उस समय एनजी इस विचार के उत्तराधिकारी थे कि, अगर हम अंग्रेजों को हरा देंगे तो आपका राज्य सुरक्षित हो जाएगा। इसके लिए नानासाहेब पेशवा को कई उपनिवेशवादियों के समर्थन की जरूरत थी। लेकिन ब्रिटिश सेना की तैनाती की नीति ने कई उपनिवेशवादियों को निशस्त्र कर दिया था। उनकी सेना वापस ले ली गई। इसलिए, नानासाहेब पेशवा ने सेना जुटाने के लिए महाराष्ट्र में लहुजी साल्वे के संरक्षण में सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले युवकों की मदद मांगी थी। इसी सिलसिले में खबर आ रही थी कि वह लहूजी साल्वे से मिलने पुना आएंगे। लेकिन जिस तरह लहूजी साल्वे ब्रिटिश शासन के विरोधी थे, उसी तरह वे पेशवा को महाराष्ट्र में वापस नहीं चाहते थे। क्योंकि नानासाहेब पेशवा और भारत के वतनदारों और जमींदारों का ब्रिटिश विरोधी विद्रोह स्वार्थ से पैदा हुआ था। इसीलिए लहुजी साल्वे का मत था कि उन्होंने पहले के रामोशी, आदिवासी और किसान विद्रोहों में बिना किसी भागीदारी के एक आरामदायक जीवन जिया था।[१५]

नानासाहेब का यह भी विचार था कि लहूजी साल्वे ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारत में कई जातियों और धर्मो के युवाओं को सैन्य शिक्षा देकर पुना और आसपास के क्षेत्रों में हजारों क्रांतिकारियों का निर्माण किया था। इसलिए उन्होंने रंगो बापू को प्रशिक्षित सेना इकट्ठा करने की जिम्मेदारी दी थी। इसी तरह रंगो बापू कानपुर से महाराष्ट्र आए थे। लहुजी साल्वे से सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कई युवक जंगल में गिरोहों में रहते थे। रंगो बापू ने पुना से सातारा, पंढरपुर, कोल्हापुर, अहमदनगर तक वस्ताद लहुजी द्वारा प्रशिक्षित कई क्रांतिकारियों से संपर्क किया। रंगो बापू ने अपने भतीजे वासुदेव गुप्ते के नेतृत्व में पुना, सातारा क्षेत्र से उत्तर में नानासाहेब पेशवा के लिए ५०० सैनिकों की एक सेना भेजी। इसमें लहुजी के सशस्त्र प्रशिक्षण में सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले अधिकांश क्रांतिकारी शामिल थे। इनमें से कई युवक अंग्रेजों के साथ युद्ध में मारे गए। कई घायल हुए, लेकिन

पढ़े-लिखे थे। १८५७ ई. के विद्रोह में भाग लेने वाले लहुजी के कई क्रांतिकारियों के नाम इतिहास में नहीं हैं। वास्तव में, ऐसा लगता है कि इतिहास ने उन पर ध्यान नहीं दिया।

८.७ तात्या टोपे

तात्या टोपे का जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले के येओला गाँव में हुआ था। १८१४ ई. में पैदा हुआ। उनका मूल नाम रामचंद्र पांडुरंग टोपे था। उनके पिता बाजीराव पेशवा के धर्मार्थ विभाग के प्रमुख थे। जब बाजीराव विठुर आए, तो उनके साथ तात्या टोपे के पिता भी थे। तात्या टोपे उन्हें १८५७ ई. के विद्रोह में महत्वपूर्ण सेनानियों में से एक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने भारत से अंग्रेजों को बाहर निकालने के लिए मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर द्वितीय, नानासाहेब पेशवा और रानी लक्ष्मीबाई को बहुमूल्य सहायता प्रदान की थी। विद्रोह को फैलाने के लिए, कई उपनिवेशवादियों, ब्रिटिश सेना के सैनिकों के साथ-साथ आम जनता ने विद्रोह के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने का काम किया था। उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह के लिए सेना को लामबंद करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

महाराष्ट्र में, लहूजी साल्वे के सैकड़ों युवक सैन्य शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अपने सैन्य प्रशिक्षण को पूरा करने के बाद, युवकों ने अपने प्रशिक्षण में मल्लविद्या और सैन्य शिक्षा प्रदान करने के लिए अपने-अपने गांवों में प्रशिक्षण शिविर स्थापित किए थे। इसलिए, महाराष्ट्र के सातारा, पंढरपुर, कोल्हापुर, अहमदनगर क्षेत्रों में लहुजी के शिष्यों के कई पूर्वाभ्यास हुए थे।[१६] तात्या टोपे १८५७ ई. के विद्रोह में महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों में शामिल होने में लगे हुए थे। उस समय रंगो बापू ने तात्या टोपे की मदद के लिए ७०० क्रांतिकारियों की एक टुकड़ी भेजी थी। वे सभी क्रांतिकारी लहुजी साल्वे द्वारा प्रशिक्षित थे। तात्या टोपे इन क्रांतिकारियों को उत्तर की ओर ले गए। इसी समय ब्रिटिश सैनिकों ने झांसी पर आक्रमण किया।

ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए, तात्या टोपे ने महाराष्ट्र में वस्ताद लहुजी साल्वे द्वारा प्रशिक्षित युवकों के साथ अपनी पूरी कोशिश की। लेकिन अंग्रेजों के आधुनिक हथियारों, योजना के कारण इस विद्रोह में क्रांति सफल नहीं हुई। लहुजी साल्वे द्वारा प्रशिक्षित कई युवकों ने उत्तर भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया। तात्या टोपे ने इन क्रांतिकारियों का हाथ पकड़ कर अंग्रेजों का विरोध किया। ब्रिटिश सेना को उनके द्वारा

छेड़े गए छापामार युद्ध से परेशान किया गया था। लेकिन डी. ९ अप्रैल, १८५९ की रात को तात्या टोपे अवल के जंगल में सोते हुए पकड़े गए। १८ अप्रैल, १८५९ को निष्पादित। लेकिन कई इतिहासकार असहमत हैं।

महाराष्ट्र से उत्तर भारत में तात्या टोपे के विद्रोह के बाद एक भी क्रांतिकारी जीवित महाराष्ट्र नहीं लौटा था। विद्रोह में कई क्रांतिकारी शहीद हुए और कई को अंग्रेजों ने आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी।[१७] इस प्रकार तात्या टोपे और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बहादुरी से लड़ने वाले लहुजी साल्वे के प्रशिक्षण में क्रांतिकारियों का योगदान महत्वपूर्ण हो गया। लेकिन तात्या टोपे ने १८५७ ई. के विद्रोह में जिन सामान्य क्रांतिकारियों ने मदद की, उनकी उपेक्षा की गई है।

८.८ रंगो बापू

भारत के इतिहास में सातारा में १८५७ ई. के विद्रोह में रंगो बापू को एक बहुत ही चर्तुर और सरल क्रांतिकारी के रूप में जाना जाता है। क्योंकि अंग्रेज १८३९ ई. में, सातारा संस्थान के राजा छत्रपति प्रताप सिंह को अपदस्थ कर दिया गया था। इस अन्याय के निवारण के लिए रंगो बापू लंदन गए थे। लेकिन वह सातारा के सिंहासन पर छत्रपति प्रताप सिंह को फिर से गद्दी पर बैठाने में सफल नहीं हुए। भारत लौटने के बाद रंगो बापू ने सोचा कि अंग्रेजों को हराकर ही सब कुछ हासिल किया जा सकता है। आवेदन अनुरोधों से कुछ भी हासिल नहीं होगा। इसके लिए वह कई लोगों से गुप्त मुलाकात करने लगा।

रंगो बापू लहूजी साल्वे के सशस्त्र प्रशिक्षण के बारे में जानते थे। उन्हें यह भी पता चला कि सातारा में विभिन्न जातियों के युवा इन प्रशिक्षणों के माध्यम से सैन्य शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इसलिए उन्होंने लहूजी साल्वे से गुपचुप तरीके से संपर्क किया था। दोनों के बीच चर्चा के दौरान, वस्ताद लहूजी साल्वे ने एक युवा योद्धा रंगो बापू को मदद देने का वादा किया था। जिन्होंने सातारा के छत्रपति का सिंहासन पाने के लिए अपने प्रशिक्षण में सैन्य प्रशिक्षण में महारत हासिल की थी। तद्नुसार रंगो बापू ने क्रांतिकारियों से संपर्क करने का बीड़ा उठाया था। रंगो बापू ने शिवराम महादेव कुलकर्णी को अंग्रेजों से लड़ने की इस साजिश में सातारा क्षेत्र की मांगों को शामिल करने का काम सौंपा था। तदनुसार, शिवराम कुलकर्णी ने येकुमली इस गांव में मांग के नेताओं बाबिया मांग, योरिया मांग और माल्या मांग से मुलाकात की और उनके साथ समझौता किया।[१८] तुमही वस्ताद लहुजीं की सशस्त्र

तालीम में लष्करी शिक्षा जिन्होंने ली है उन लोगों को जमा करने के लिए कहा था। उनसे कहा गया था कि अगर उन्होंने आत्मसमर्पण किया, तो उन्हें जेल में डाल दिया जाएगा, यदि नहीं, तो उन्हें प्रताड़ित किया जाएगा, सरकारी खजाने को लूटा जाएगा और उनके बंदियों को रिहा कर दिया जाएगा। साथ ही, रंगो बापू और लहूजी से मिलने और उस सभा से लहूजी का संदेश सुनाने के बाद, सातारा क्षेत्र के सभी युवा, जिन्होंने वस्ताद लहूजी से सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त किया था, रंगो बापू की मदद के लिए तैयार हो गए और लोगों को इकट्ठा करने के लिए अपने-अपने गांवों के लिए रवाना हो गए थे।

रंगो बापू ने ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए कई जातियों और धर्मो के सेनानियों को इकट्ठा किया। इसमें बड़ी संख्या में आम और रामोशी शामिल थे। इनमें से कई क्रांतिकारियों को तिजोरी तोड़ने का प्रलोभन दिया गया। उन्होंने यह भी कहा कि जो क्रांतिकारी अपने राजा की भलाई के लिए तरस रहे थे, उन्हें छत्रपति को सातारा का सिंहासन दिया जाना चाहिए। जो लोग कच्चे दिल के पापी थे, उन्होंने राज्यपाल के आदेश की अवज्ञा करके शीर्ष श्रेणी के क्रांतिकारियों को इकट्ठा किया। वही क्रांतिकारियों ने इसका इस्तेमाल किया। यह १८५७ ई. के विद्रोह के दौरान किया गया था। रंगो बापू ने उत्तर भारत में कानपुर, झाशी और मेरठ में विद्रोह के लिए नानासाहेब पेशवा और तात्या टोपे को अमूल्य सहायता प्रदान की थी। इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन में वस्ताद लहूजी का कार्य महत्वपूर्ण है। शक्तिशाली ब्रिटिश सत्ता को हिलाने के लिए लहुजी साल्वे द्वारा प्रशिक्षित योद्धाओं द्वारा प्रदान की गई अमूल्य मदद यही कारण थी। कि क्रांतिकारियों को शुरूआती दिनों में विद्रोह में इतनी सफलता मिली थी। राष्ट्रीय आंदोलन में लहूजी साल्वे और रंगो बापू का कार्य महत्वपूर्ण है।

८.९ वासुदेव बलवंत फड़के

वासुदेव बलवंत फड़के उन महत्वपूर्ण क्रांतिकारियों में से एक थे जिन्हें लहुजी साल्वे ने शस्त्र और मल्लविद्या में प्रशिक्षित किया था। वह शुरू में ब्रिटिश सैन्य वित्त विभाग में एक क्लर्क के रूप में कार्यरत थे। लेकिन जब मां की हालत बिगड़ी तो ब्रिटिश सरकार ने उन्हें छुट्टी देने से मना कर दिया। इससे उनके मन में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष का भाव पैदा हो गया। उन्होंने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया और ब्रिटिश शासन को

उखाड़ फेंकने के लिए पुना में लहूजी साल्वे के सशस्त्र प्रशिक्षण में शामिल हो गए थे और १८७१ ई. में प्रवेश किया था।

वासुदेव बलवंत फड़के, एक चितपावन ब्राह्मण गृहस्थ, लहुजी साल्वे, एक अछूत से हथियार सीखते थे, इसका कारण यह है कि वस्ताद लहूजी साल्वे एक महान व्यक्तित्व थे। उन्होंने पुना के आसपास के क्षेत्र में तालीम स्थापन किया था। इस तालीम में सर्व जाती धर्म में के युवाओं को बंदुक चलाना, दाण्डपट्टा, तलवार, बोथाटी, भाला, दातों में शस्त्र पकडकर दीवार चढ़ाई करना, दौंडते घोंडे से निशाण लगाना, ढाल, तलवार के हाथ करना सैन्य विद्या शिक्षा भाला फेंक आदि थे। इस काल में केवल लहूजी साल्वे का ही प्रशिक्षण था जो मल्लविद्या के साथ-साथ सैन्य शिक्षा भी प्रदान करता था। इसलिए वासुदेव फड़के लहूजी वस्तादा के अखाड़े में शस्त्र में पारंगत होने के लिए गए और बंदूक चलाना, दाण्डपपट्टा और तलवार चलाने की कला के साथ घुड़सवारी और निशानेबाजी में निपुण ¼ÁÁ¼[२०] वासुदेव बलवंत फड़के को लहूजी साल्वे का दाण्डपट्ट बहुत पसंद था। दाण्डपट्टा एक लचीला और तेज स्टील ब्लेड वाला हथियार है। यह आमतौर पर एक कंधे से दूसरे हाथ की उंगली की नोक तक की लंबाई होती थी। इसके पतले बंडलों को आसानी से कमर के पास छुपाया या लपेटा जा सकता है। हाथ में ऐसी बेल्ट लिए वासुदेव फड़के कई लोगों पर भारी पड़ जाते थे।

ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए वासुदेव फड़के ने जो जिम्मा उठाया था, उसमें कई युवा सेनानियों की आवश्यकता थी। तब वासुदेव फड़के ने लहूजी साल्वे के प्रशिक्षण में रामोशी, मांग, महार, कोली, धनगर जातियों और जनजातियों के युवाओं को संगठित किया। इनमें दौलतराव नाईक, पिलाजी नाईक, रामा कोली, कोंडू मांग, खुशबा साबल, गनोबा पालकर, कोंडाजी न्हावी, सखाराम महार, बाबाजी चंबर, अथरपगड़ जाति शामिल थे।[२१] इन योद्धाओं ने कई विद्रोहों में वासुदेव फड़के की मदद की। इनमें से कई क्रांतिकारियों को अंग्रेजों ने मार डाला था।

वासुदेव फड़के ने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए कई गुप्त अभियान चलाए थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने विद्रोह को गंभीरता से लिया और मेजर हेनरी डेनियल को वासुदेव फड़के के विद्रोह को कुचलने का काम सौंपा था। अधिकारी ने वासुदेव फड़के को पकड़कर पहाड़, घाटियों, संकटों को दूर किया, कई जाल गढ़े थे। लेकिन उन्हें वासुदेव

और उनके साथी नहीं मिले। अंग्रेजों से लड़ते हुए वासुदेव फड़के को इस दौरान तेज बुखार हुआ। इसलिए उन्होंने बेलगाम और कोल्हापुर जिलों के मध्य में कलंगदी जिले के देवरनाडगी इस गांव में एक बौद्ध मठ में विश्राम करते हुए जाल बिछाया। उन्हें २० जुलाई, १८७९ को अंग्रेजों ने पकड़ लिया गया था। पर ३ जनवरी, १८८० को वासुदेव को एडन जेल भेज दिया गया था। वहीं उनका दि. १७ फरवरी, १८८३ को मृत्यु हो गई। इस प्रकार लहुजी साल्वे ने वासुदेव बलवंत फड़के जैसे योद्धाओं को सैन्य ज्ञान सिखाकर भारतीय सशस्त्र आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

८.१० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

पुना और उसके आसपास लहुजी साल्वे द्वारा स्थापित कई सशस्त्र तालीम प्रशिक्षण शिविरों में, हजारों युवाओं को मल्लविद्या के साथ-साथ लष्करी शिक्षा प्रदान की गई थी। इसलिए, कई जातियों के युवा लहूजी के सशस्त्र प्रशिक्षण में सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। कई विद्वानों का मानना है कि इसमें बाल गंगाधर तिलक भी शामिल थे। जब बाल गंगाधर तिलक ने जब उन्होंने १८७३ ई. में डेक्कन कॉलेज में प्रवेश लिया, तो उन्हें एहसास होने लगा कि उनकी शारीरिक स्थिति मामूली है। इसलिए उन्होंने अपनी शारिरीक सुधार के लिए अध्ययन को न केवल दूसरा बल्कि तीसरा स्थान दिया। वह ज्यादातर सुबह जिम में कड़ी मेहनत करने या नदी में तैरने में बिताते थे। शाम खेलने-कूदने में बीती। कॉलेज के किसी भी सामान्य घंटे को अध्ययन के लिए आवंटित किया जाता है। इसलिए, यह एफ.ए. वह भी परीक्षा के प्रथम वर्ष में अनुत्तीर्ण हो गया लेकिन तालीमबाजी की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।[२२]

बाल गंगाधर तिलक ने अपने शरीर को मजबूत करने के लिए प्रशिक्षण में प्रवेश किया। इस समय अबाजी खरे बाल गंगाधर तिलक के साथी थे। बाल गंगाधर तिलक अपने साथियों के साथ पुना के नरसोबा मंदिर के प्रांगण में चल रहे तलवारों और दाण्डपट्टा के अखाड़े में जाते थे। उस समय उन्हें लहूजी साल्वे से मार्गदर्शन मिल रहा था। इसलिए लहुजी साल्वे के सशस्त्र प्रशिक्षित शाम से सुबह तक मेहनत करते थे। जोर की बैठक निकालते थे, को हराते थे, कुश्ती खेलते थे। नदी में जाकर तैरना, इसप्रकार की दिनचर्या था।[२३] लहुजी के शिष्य वासुदेव फड़के यह पुना में जब १८७२ ई. के आसपास थे, १६ साल की उम्र में, बाल गंगाधर तिलक को लहूजी साल्वे द्वारा मल्लविद्या का प्रशिक्षित लिया था। बाल

गंगाधर तिलक ने कहा था। 'Strength stored between the stand 20th year proves an assed and treasure thousand me.' उन्होंने शरीर को स्वस्थ करने के लिए लगभग एक वर्ष बिताया था।[२४] लहुजी साल्वे द्वारा बनाई गई क्रांतिकारियों की सेना में से कई ने अपने प्रशिक्षण के माध्यम से मातृभूमि के लिए बलिदान दिया। उनमें बाल गंगाधर तिलक ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उग्रवादी विचारधारा का प्रसार किया और लोगों में एक नई चेतना का संचार किया। लहूजी साल्वे और बाल गंगाधर तिलक के बीच का रिश्ता कुश्ती और मैदानी रणनीति सीखने में ही देखा जा सकता है। (तिलक महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, पुना में भवन के अग्रभाग पर मूर्तिकला की एक तस्वीर में बाल गंगाधर तिलक को लहुजी साल्वे ने बाल गंगाधर तिलक को उनके मल्लविद्या के साथ लष्करी प्रशिक्षण दे रहे हैं।)

लहूजी साल्वे ने १८२२ से १८४८ ई. के दौरान, उन्होंने गुप्त रूप से युवाओं को प्रशिक्षित किया। इनमें से कई युवा बाद में क्रांतिकारी के रूप में जाने जाने लगे। उमाजी नाईक, जिन्होंने भारत में पहली बार प्रति-सरकार (१८२६ से १८३२ ई.) की स्थापना की, उसने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इसी तरह, १८३० ई. के बाद महादेव कोली जनजाति ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इन सभी विद्रोहों को लहूजी साल्वे का गुप्त समर्थन प्राप्त था। अपने प्रशिक्षण में सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कई युवक रामोशी और आदिवासी समूहों से थे। ई. १८५७ में सातारा में विद्रोह इस काल की सबसे बड़ी घटना मानी जाती है। लहुजी साल्वे द्वारा प्रशिक्षित कई क्रांतिकारी इस विद्रोह में शामिल थे। बाबिया, योरिया, कनौय्या, धर्मा मांग और उनके सहयोगी, जो लहूजी साल्वे के करीबी शिष्य थे, उन्होंने सातारा के विद्रोह में ब्रिटिश विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया। इसलिए अंग्रेजों ने इन सभी क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया और उनमें से कुछ को बंदूकों से मौत की सजा सुनाई। १८५७ ई. के विद्रोह के बाद लहुजी साल्वे के प्रशिक्षण के युवाओं ने वासुदेव बलवंत फड़के के क्रांतिकारी कार्यों में महत्वपूर्ण भागीदारी थी, जिन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया था। लहुजी साल्वे ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह में मदद की। लहुजी साल्वे के रूप में तब रामोस विद्रोह, आदिवासी विद्रोह, किसान विद्रोह, १८५७ ई. में सातारा का विद्रोह और अन्य विद्रोह प्रेरणादायक हैं।

सन्दर्भ

१) वाघमारे गणपत, आदिक्रांतिगुरु लहुजी साल्वे, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०१२, पृ. १३.

२) जाधव किशन निवृति (लहुजी साल्वे के परपोते) गंजपेठ, पुना, सीधा साक्षात्कार दिनांक ७ नवंबर २०१४.

३) खडसे खुशाल, आदिक्रांतिगुरु वस्ताद लहूजी साल्वे, नेहा प्रकाशन, नागपुर, २००९ संस्करण, पृ. १६.

४) तड़ाखे शंकर, क्रांतिपिता लहूजी वस्ताद, प्रतिमा प्रकाशन, पुना, तृतीयावृत्ति, २०१४, पृ. ४४.

५) हिवराळे दया, 'महाक्रांतिवीर लहूजी साल्वे सामग्री सम्मेलन निमित्त' यह लेख में, दैनिक, बहुजनरत्न लोकनायक, दि. १४ नवंबर २०१०.

६) आठवले सदाशिव, उमाजी राजे, मुक्काम डोंगर, कॉन्टीनेन्टल प्रकाशन, पुना, प्रथमावृत्ती, १ ९९ १, पृ. १५४.

७) पोतदार माधव, महाराष्ट्रातील लढे आणि लढवय्ये, अनुबंध प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००३, पृ. २९.

८) तड़खे शंकरभाऊ, पुना, दिनांक. २८ अक्टूबर २०१६.

९) ज़ांबारे स. ध., महान भारतीय क्रांतिकारक, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृती मंडल, मुंबई, प्रथमावृत्ती, २००७, पृ. २१९.

१०) ठाकुर रवींद्र, महात्मा, मेहता पब्लिकेशन हाऊस, पुना, प्रथमावृत्ती, १ ९९९, पृ. ४.

११) ज़ांबारे स. ध., पूर्वोक्त, पृ. २१६.

१२) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।

१३) सिबर्ट क्रिस्टोफर, महान विप्लव १८५७, संवाद प्रकाशन, मेरठ, प्रथम संस्करण, २००८, पृ. २२.

१४) सावरकर वि. दा., १८५७ की स्वतंत्र्य समर, रिया प्रकाशन, कोल्हापुर, २०१२ संस्करण, पृ. १९२.

१५) राक्षे रमेश, पुना, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, दि. १९ मई २०१८.

१६) जाधव किशन निवृति, पूर्वोक्त।
१७) देशपांडे कु. पं., सेनापति तात्या टोपे, श्री गंधर्व-वेद प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००९, पृ. २०३.
१८) खोबरेकर वि. गो., महाराष्ट्रातील स्वातंत्र्य लढे, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति मंडल, मुंबई, प्रथमावृत्ती,१९९४, पृ. ८०.
१९) शेवदे सच्चिदानंद, वासुदेव बलवंत फड़के, अभिजीत प्रकाशन, पुना, दूसरा संस्करण, २००९, पृ. ४०.
२०) खोबरेकर वि. गो., सरकार, पूर्वोक्त, पृ. १३९.
२१) दिघे प्रभाकर, स्वदेशी क्रांति के अग्रदूत वासुदेव बलवंत फड़के, आरती प्रकाशन, मुंबई, प्रथमावृत्ती, १९९२, पृ. ५७.
२२) केळकर नं. चि., लोकमान्य तिलक चरित्र, खंड -१, वरदा बुक्स, पुना, द्वितीय संस्करण, १९८८, पृ. २६.
२३) घोड़े अनंत, सशस्त्र क्रांति के जनक-लहुजी वस्ताद, मुक्ताई प्रकाशन, कोल्हापुर, प्रथम संस्करण, २०००, पृ. ५२.
२४) गोखले वि. श., लोकोत्तर लोकमान्य तिलक, अनघा प्रकाशन, ठाणे, द्वितीय संस्करण, २००७, पृ. ७.

अध्याय ९

लहूजी साल्वे के कार्यो में से महत्व और वर्तमान स्थिति

आज तक, कई लेखकों, विचारकों, इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को कई तरह से लिखा है। इस इतिहास को लिखते समय उन्होंने इतिहास में केवल राजाओं के चरित्रों और उनकी उपलब्धियों का ही उल्लेख किया है। यहां एक सवाल है की, इतिहास निर्माण करनेवालों में सामान्य जनता, उपेक्षित, वंचित लोगों का कोई योगदान नहीं है क्या? इस दृष्टिकोण से, सामूहिक इतिहास की अवधारणा २० वीं शताब्दी के अंत में सामने आई थी। प्रसिद्ध ब्रिटिश दार्शनिक कार्लाइल ने इतिहास की व्याख्या करते समय कहा है कि, 'History is nothing but the biography of great men and that is a record of human accomplishment particularly of great souls' ऐसी ही कुछ व्याख्याओं के आधार पर भारत का इतिहास लिखा गया है। इसलिए, इतिहास में जनता के प्रदर्शन की उपेक्षा की गई है। लेकिन २० वीं सदी के उत्तरार्ध में जैसे-जैसे जनता का इतिहास एक नई अवधारणा के साथ सामने आया, जिसमें शोषित, वंचित, उपेक्षित, लोंगों का इतिहास लिखा जा रहा है और उनकी चेतना का अध्ययन किया जा रहा है। यही कारण है कि समाज के शोषित, उपेक्षित, वंचित जनता के नाईक इतिहास लेखन में दिखाई देते हैं। क्योंकि किसी भी व्यापक आंदोलन में जनता, समूहों की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है। इसके बिना आंदोलन व्यापक और प्रभावी नहीं हो सकता। लेकिन इतिहासकारों ने आज तक इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। आम जनता अपनी मौलिक भागीदारी के श्रेय से वंचित है।

छत्रपति शिवाजी महाराज ने मुगल, आदिलशाही और कुतुबशाही शक्तियों का विरोध किया और अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वराज्य की स्थापना की। इसमें कई जातियों के सक्षम युवाओं ने भाग लिया। उन युवाओं को स्वराज्य में सम्मान का स्थान प्राप्त था। लेकिन छत्रपति संभाजी महाराज की मृत्यु के बाद स्वराज्य की बागडोर छत्रपति साहू के शासनकाल में पेशवाओं के हाथ में आ गई। इसने पेशवाओं को लगभग १०० वर्षो तक शासन करने का मौका दिया। लेकिन पेशवाओं ने छत्रपति शिवाजी महाराज के समय की न्यायसंगत और मेधावी राज्य व्यवस्था को तोड़ दिया और अन्यायपूर्ण और जातिवादी राज्य व्यवस्था को बढ़ावा दिया। १७५७ ई. में प्लासी की लड़ाई ने भारत में ब्रिटिश शासन की

नींव रखी। इस समय महाराष्ट्र पर पेशवाओं का शासन था। लेकिन पेशवा के अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजों को सेना तैनात करने की अनुमति नहीं दी। १८०२ ई. में इसकी स्वीकृति और इसकी अक्षमता के कारण। १८१८ ई. में पेशवा को उखाड़ फेंका गया। दूसरा बाजीराव पेशवा नवंबर १८१७ ई. में खड़की की लड़ाई में अंग्रेजों से हार गया था और १ जनवरी १८१८ ई. को कोरेगांव भीमा में ऐतिहासिक जीत ने पूरे महाराष्ट्र पर ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। इस समय, अंग्रेजों ने भारत में अस्थिर राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाया और भारत के एक क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। ऐसे में लहुजी साल्वे ने सभी जातियों के युवाओं को एकजुट किया और उन्हें भारत में ब्रिटिश शासन को नष्ट करके स्वराज्य को बहाल करने के लिए सैन्य शिक्षा दी। इनमें से कई क्रांतिकारी भूमिगत रह गए और ब्रिटिश शासन का विरोध करके देश के लिए अपनी जान दे दी। देश में समानता पर आधारित व्यवस्था बनाने के लिए बहुतों ने महत्वपूर्ण कार्य किए।

पुरंदर किले के पास पेठ यह लहुजी साल्वे का मूल गांव था और दाण्डपट्टा चलाना साल्वे परिवार का एक विशेष कौशल था। महान लहुजी साल्वे को शिव काल के दौरान कई युद्धों में उनके कौशल के लिए 'राउत' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। लहूजी साल्वे के पिता राघोजी साल्वे एक ही परिवार के शूरवीर और पराक्रमी योद्धा थे। इसीलिए बाजीराव द्वितीय के समय में वह शाही शिकारगाह के लिए जिम्मेदार था। अपने पिता की तरह, लहुजी साल्वे कर्तव्यपरायण, मजबूत और मजबूत थे। लहुजी साल्वे अत्याधिक कौशल और शक्ति का काम करते थे जैसे कि जल्दी में किले पर चढ़ना, पूरे बैल को अपने कंधों पर लेकर नाचना, जेजुरी में खंडोबा मंदिर को मोड़ना, पेट के बल दीवार पर चढ़ना। ई. १८११ में लहुजी साल्वे पेशवा के रामोशी गेट पर नाकेदार के रूप में नियुक्त हूए। इस कार्य को करते हुए उन्हें सबसे पहले पेशवा में अमानवीय अन्याय, दमन और असमानता का अहसास हुआ। ई. १८१७ में खड़की की लड़ाई में, लहुजी के पिता राघोजी साल्वे ने सेना का नेतृत्व किया। उन्होंने इस लड़ाई में ब्रिटिश सत्ता से लड़ते हुए बलिदान दिया। इसलिए अपने पिता की मृत्यु के लिए ब्रिटिश शासन ही जिम्मेवार है। यह गुस्सा लहुजी साल्वे के मन में था। 'जीऊंगा तो देश के लिए, मऊंगा तो देश के लिए' यह प्रतिज्ञा

ली थी। लहूजी साल्वे मल्लविद्या के माहिर थे। इसलिए, उन्होंने युवाओं को सैन्य शिक्षा प्रदान करने के लिए एक 'तालीम' स्थापित करने का फैसला किया और अक्टूबर १८२२ में उन्होंने गंजपेठ (पुना) में सशस्त्र शिक्षा प्रदान करने के लिए देश का पहला प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किया।

लहुजी साल्वे एक प्रगतिशील विचारक थे। उसके परिवार की छोटी बहन राधाबाई पति की मौत के बाद मयके में रह रही थी। उस समय लहुजी साल्वे ने राधाबाई का सम्मान किया था और उन्हें परिवार के मुखिया की जिम्मेदारी दी थी। लहूजी साल्वे मानवतावादी धर्म के हिमायती थे। इसलिए युवाओं को मल्लविद्या और लष्करी शिक्षा पढ़ाते समय उन्हें कभी कोई नुकसान नहीं हुआ। उनकी कड़ी मेहनत और देशभक्ति के कारण, ब्राह्मण, मराठा, कुनाबी, धनगर आदि जैसी कई जातियां के लोगों मल्लविद्या और लष्करी शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। ई. १७९४ से १८८१ तक की अवधि भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण के लिए प्रसिद्ध है। अन्य क्रांतिकारियों ने न केवल देश के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया बल्कि लहुजी साल्वे को राष्ट्रीय और सामाजिक दोनों स्तरों पर लड़ना पड़ा। क्योंकि न केवल देश स्वतंत्र होगा और सभी समस्याओं का समाधान होगा, बल्कि युगल को सामाजिक और आर्थिक समानता की भी आवश्यकता है। तो लहुजी साल्वे का क्रांतिकारीवाद दोधारी तलवार की तरह था। जिन्होंने विदेशी और भारतीय दोनों मेहनती विचारधाराओं पर हमला किया। लहुजी साल्वे ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में एक सेना का गठन किया था। जो कई विद्रोहों में देखा जा सकता है। इसकी नींव लहूजी साल्वे की मल्लविद्या में देखी जा सकती है। देशभक्ति से प्रभावित होकर, भारतीय जाति व्यवस्था में अछूत जाति के इस व्यक्ति ने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए पुना जैसी जगहों पर सशस्त्र प्रशिक्षण स्थापित करके भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए कई सैनिकों को प्रशिक्षित किया। ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ने के लिए, रामोशी, महार, मांग, आदिवासी और उच्च जातियों के कई सैनिक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हुए। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कई समकालीन क्रांतिकारियों की सहायता की। उसे अपने देश के लिए अपने जमींदार की परवाह नहीं थी। लहुजी साल्वे ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

फिर भी, इतिहास में एक का मालिक होना अभी भी उपेक्षित व्यक्ति की पहुंच से बाहर है। महात्मा ज्योतिराव फुले, सदाशिव गोवंडे, सखाराम परजम्पे, मोरो विट्ठल वाल्वेकर, अन्नासाहेब पटवर्धन, वासुदेव बलवंत फड़के, लोकमान्य तिलक आदि जैसे कई समाज सुधारकों और क्रांतिकारियों ने लहुजी साल्वे को अपना गुरू बना लिया और उनसे हथियार चलाने को सिखा था। उनमें से कई ने सामाजिक कार्यो में योगदान दिया और कई ने भारत में स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दिया।

लहूजी साल्वे शुरू से ही छत्रपति शिवाजी महाराज के भक्त थे। स्वराज्य के प्रति उनके मन में बहुत सम्मान था। वह स्वराज्य में कई किलों को जानता था। इसलिए लहुजी साल्वे अपने प्रशिक्षण में सभी युवाओं को स्वराज्य में सभी किलों का भ्रमण करने के लिए लाते थे। उसी तरह से १८४८ में लहुजी साल्वे ने अपने सभी शिष्यों के साथ रायगढ़ किले का दौरा किया। इस समय लहुजी साल्वे ने अपने शिष्यों को रायगढ़ के सभी स्थान दिखाए। उनके शिष्य ज्योतिराव फुले की पहल पर छत्रपति शिवाजी महाराज की समाधि बहाल की गई। लहूजी साल्वे के जैसा आदमी वस्ताद नहीं बना होता तो स्वातंत्र आंदोलन में देशभक्त और समाज सुधारक कैसे बन सकते थे? लेकिन भारतीय इतिहास की यह त्रासदी रही है, उपेक्षित समाज में कितनाही महान व्यक्ति ने जन्म लिया उसे जान बूझकर इतिहास से दूर रखा गया और उसकी उपेक्षा की गई है। इससे पता चलता है कि क्रांतिगुरु लहुजी साल्वे को भी उनकी जाति के कारण दूर रखा गया था।

उच्च जाति ब्राह्मण जाति के ज्योतिराव फुले और उनके मित्र सदाशिव गोवंडे, सखाराम परजम्पे और मोरो विट्ठल वाल्वेकर भी लहुजी के हथियारों के प्रशिक्षण में शामिल थे। उन्होंने लहूजी साल्वे को अपना गुरु माना और अपने मल्लविद्या और लष्करी शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक समानता का पाठ भी लिया। इसका अध्ययन करते हुए ज्योतिराव फुले लहूजी के प्रभाव से सामाजिक समानता के बारे में सोचने लगे। इस समय लहुजी साल्वे ऐसा समझ में आया था की अपनी तालीम में युवा और वयस्क शिक्षा क्षेत्रों की जरूरत है। इसलिए उन्होंने ज्योतिराव फुले को इन युवाओं को प्रौढ़ शिक्षा देने का सुझाव दिया था। परिणामस्वरूप, लहूजी साल्वे के तालीम में देश का पहला वयस्क स्कूल १८४७ ई. में शुरू हुआ था। धूराजी आपाजी चमार और गनु शिव मांग यह दोने यही स्कूल में पढ़े थे, बाद में इन दोनों ने अछूतों के स्कूल में शिक्षक के रूप में काम किया था।

भारत के इतिहास में सामान्य लोगों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा फुले और सावित्रीबाई फुले ने शिक्षा क्रांति की थी। इस शिक्षा क्रांति के पीछे लहुजी साल्वे समर्थन प्राप्त था। क्योंकि महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले ने पुना क्षेत्र में शिक्षा के प्रसार के लिए काफी प्रयास किए थे। इस समय कर्मठ लोग उनके शैक्षिक और सामाजिक सुधार कार्य में बाधा डाल रहे थे। उन्होंने स्कूलों को बंद करने की कोशिश की थी। पढ़ाने के दौरान सावित्रीबाई फुले को स्कूल से आने-जाने के दौरान परेशान किया था। शरीर पर गोबर और कीचड़ फेंका गया। इसी तरह, अछूतों ने अपने बच्चों को स्कूल न भेजने की धमकी दी। इससे अछूत माता-पिता के मन में भी भय पैदा होने लगा। उस समय फुले दम्पति को लहूजी साल्वे का प्रबल समर्थन प्राप्त था। ऐसा इसलिए है क्योंकि लहुजी साल्वे ने अपने सशस्त्र प्रशिक्षण में अछूतों के लिए स्कूल में प्रवेश के लिए जागरूकता पैदा करने के साथ-साथ फुले दम्पति सहित स्कूल के शिक्षकों, छात्रों और माता-पिता को कर्मठ विचारकों से बचाने के लिए एक सेना का गठन किया। इसीलिए महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले पुना जैसे शहर में एक मेहनती विचारधारा के साथ महिलाओं की शिक्षा को मजबूती से चलाने में सक्षम थे।

लहूजी साल्वे (मांग), राणबा गायकवाड़ (महार) और धुराजी अपाजी (चमार) ने अछूत बच्चों के लिए ज्योतिराव फुले द्वारा शुरू किए गए स्कूल की जागरूकता बढ़ाने और उसकी रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन तीनों ने मांग, महार, चर्मकार, ढोर जैसी सभी अछूत जातियों में फैले अंधःकार को नष्ट करके एकता बनाने की कोशिश की। इसलिए इस जाति के सभी बच्चे एक साथ पढ़ रहे थे। लहुजी साल्वे की लड़ाई भारतीय कर्मठ विचारधारा के खिलाफ थी। लहुजी साल्वे जानते थे कि अछूतों का कल्याण शिक्षा से ही सुनिश्चित होगा। लहूजी साल्वे के एक शिष्य ज्योतिराव फुले ने अछूतों और महिलाओं की शिक्षा के लिए एक शैक्षिक क्रांति लाने के लिए कई स्कूलों की स्थापना की। लहुजी साल्वे ने उनका भरपूता से समर्थन किया। इतना ही नहीं, लहुजी साल्वे ने अपने छोटे भाई शिवाजी की बेटी मुक्ता को ज्योतिराव फुले के स्कूल में भेजकर महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया। बाद में मुक्ता साल्वे ने चौथी कक्षा में पढ़ते हुए मांग महार के दुःख पर निबंध लिखा था। उस निबंध को ब्रिटिश सरकार की ओर से पहला पुरस्कार मिला था। उस निबंध में, मुक्ता साल्वे ने मांग-महारों की दुर्दशा और भारतीय समाज के खिलाफ विद्रोहों की चर्चा

की और पेशवा काल के समाज की बिकट स्थिति को उजागर किया। मुक्ता साल्वे जैसी मातंग समाज की लड़की ने अपने निबंध में कहा था, 'जो समाज हमारे इतिहास को भूल जाता है, वह समाज हमारा भविष्य बना नहीं सकता है।' इस युक्ती के अनुसार पशु से ही बुरा जीवन जीने वाले मांग-महार की व्यथा को सामने रखकर अपने क्षेत्रों के इतिहास को प्रकाशीत किया। अछूतों को उसी धर्म के माध्यम से कैसे सताया जाता है जिसमें वे रहते हैं और उनका पालन करते हैं। क्या सताने वालें और उत्पीड़कों का एक ही धर्म हो सकता है? ऐसा ही एक प्रश्न प्रस्तुत कर मांग-महारों को अपनी बुद्धि में ज्ञान रूपी औषधि का सेवन करना चाहिए। तभी आपके मन के बुरे विचार दूर होंगे और आप नीतिमान होंगे। यह निबंध ऐतिहासिक और प्रेरक है और लहुजी साल्वे परिवार की सामाजिक दृष्टि को दर्शाता है।

लहुजी साल्वे ने माना था कि समाज में जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता की जड़ें कर्मवादी विचारधारा वाले लोगों की स्वार्थी कट्टरता के कारण हैं। इस बात की चर्चा उनके घर में हमेशा होती थी। लहूजी साल्वे के भतीजे मुक्ता साल्वे ने १४ साल की उम्र में एक ऐतिहासिक निबंध लिखकर पूछा, हमारे अछूतों का धर्म क्या है? इस प्रकार का प्रश्न पहली बार १८५५ ई. में प्रस्तुत किया गया था। सौ साल बाद, १९५६ ई. में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने मुक्ता के प्रश्न का उत्तर दिया और अछूतों के स्वाभिमान के लिए बौद्ध धर्म ग्रहण किया। लेकिन मातंग जाति में लड़कियों की शिक्षा, जिसमें मुक्ता साल्वे का जन्म हुआ था, अभी भी बहुत कम है। इस समाज में बाल विवाह का प्रचलन था। जिस रस्म के खिलाफ लहूजी साल्वे और मुक्ता साल्वे ने जीवन भर संघर्ष किया। पढ़ी-लिखी लड़कियां उन्हीं धार्मिक कर्मकांडों की ओर रुख कर रही थी। उपवास, तपास, नवस, जांच व्रत, गंडेडोर, व्रतवैकल्य आदि समुदाय की समकालिकता की जा रही है। जिस समाज में लड़कियों की शिक्षा कम होती है, उस समाज में जहां लड़कियां धार्मिक संस्कारों की ओर रुख करती हैं, क्या समाज आगे बढ़ेगा? इसके लिए हमें मुक्ता साल्वे के आदर्श को ध्यान में रखते हुए उच्च शिक्षा के लिए आगे आना चाहिए। समाज को सही दिशा देने के लिए अगर हर घर में मुक्ता साल्वे का निर्माण हो जाए तो समाज को बदलने में देर नहीं लगेगी।

लहुजी साल्वे मौखिक सुधारक नहीं बल्कि कर्ते सुधारक थे। उन दिनों हर जगह बाल विवाह की प्रथा थी। लेकिन लहुजी साल्वे ने अपनी बहन से शादी करने से इनकार कर

दिया। उसने अपनी भतीजी मुक्ता की शादी भी रोक दी और उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए राजी किया था। लहुजी साल्वे ने अस्पृश्यता के उन्मूलन के साथ-साथ महिला सुधार के कार्यो को महत्व दिया था। इसलिए, ऐसे समय में जब पुना में नाभिक समुदाय में केशवपन की प्रथा के खिलाफ हड़ताल करने के लिए आगे नहीं आ रहा था, लहुजी साल्वे ने अपने पहलवानों के साथ नाभिक समुदाय की रक्षा की। इसलिए धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त हो गई। इन सभी घटनाओं में से लहुजी साल्वे एक साहसी समाज सुधारक थे जो सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक बहाली चाहते थे। लहूजी के परिवार के युवा गानू शिवाजी मांग ने एक अछूत स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य किया। बेशक, शिक्षा को प्रेरित करने वाले पहले अछूत व्यक्तित्व लहुजी साल्वे, शूद्रतिशूद्र शिक्षा के अग्रदूत, महात्मा ज्योतिराव फुले, पहली महिला शिक्षक और प्रधानाध्यापिका सावित्रीबाई फुले, पहली अछूत छात्र शिक्षक गानू शिवजी मांग और धूराजी आप्पाजी चमार, पहली छात्रा मुक्ता साल्वे हैं।

पेशवा के निधन के बावजूद, ब्रिटिश शासन काल में महाराष्ट्र में बहुत अधिक छुआछूत थी। उच्चवर्णियों से अछूत वर्ग पर अन्याय, अत्याचार कि विषमातामूलक साज़िश चलाए थे। दमनकारी जाति व्यवस्था, रितीरिवाज, परंपराएं, विधवा विवाह बंदी, बाल विवाह और अछूतों को दी जानेवाली विशुद्धिवादी तुच्छ व्यवहार की इन सभी स्थिति में लहुजी साल्वे ने कनिष्ठ और अछूत जातियों का सामाजिक सुधार के उपचार के लिए तुच्छ। युवाओं को समाज सुधार के प्रशिक्षण के लिए प्रेरित किया। क्योंकि इस काल में अछूतों और नीची जातियों में भी अन्धविश्वास और धार्मिक कट्टरता बहुत अधिक थी। धर्म के नाम पर अनेक कुप्रथाएं की जाती थीं। हर जगह महिलाओं का शोषण जारी है। लहुजी साल्वे ने सबसे पहले अपने शिष्यों को समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने के लिए जागरूक किया। क्योंकि लहुजी साल्वे ने अपने जीवन में समानता, मानवता और न्याय के सिद्धांतों की वकालत की थी। उनका यह विचार था कि समाज में केवल दो जातियाँ थीं, पुरुष और महिला। इसलिए, लहुजी साल्वे ने मानवधर्म को समय-समय पर अपनाने का संदेश दिया था। समाज के लोग पुरोहितशाही और भोंदुगिरी के शिकार न हों इसलिए लहुजी साल्वे ने अपने घर में उस समय सुधारवादी विचारों की कार्यशाला का आयोजन किया था। वास्तव में, उन दिनों बहुत ही सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठान किए जाते थे। लेकिन आज भी

अछूत जातियों में देव धर्म के नाम पर पोतराज की प्रथा का पालन किया जाता है। समाज में कई अवांछनीय प्रथाओं और परंपराओं की खेती की जाती है। बलिदान की रस्म को शिक्षित वर्ग द्वारा एक प्यारा सा नाम ठ गेट टुगेदर ठ दिया जाता है। इन अवांछनीय रीति-रिवाजों और परंपराओं के कारण अछूत जाति का विकास नहीं हो सका और समाज का विकास नहीं हो सका। इसके लिए अछूत जाति को समाज में कुरीतियों की परंपरा को तोड़कर विज्ञान को अपनाना चाहिए।

लहूजी साल्वे के रूप में अछूत समुदाय को मजबूत नेतृत्व मिला था। वह नेतृत्व जिसने जाति और जाति व्यवस्था पर आधारित पारंपरिक व्यवस्था को छेद किया था। लहुजी का यह कहाना था की, ज्योतिराव फुले के शैक्षिक कार्य के कारण अछूतों को शिक्षा का अवसर मिला है। इसलिए अछूतों को शिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा आत्म-सम्मान का निर्माण करती है और किसी को गुलाम नहीं बनाती। इसलिए अछूतों को, जो हजारों वर्षो से कीड़ों की तरह रह रहे हैं, उन्हें ज्ञान की दवाई प्राप्त करनी चाहिए। तभी उनमें आत्म-सम्मान पैदा हो सकता है और समाज को दिशा मिल सकती है। इसके लिए लहुजी साल्वे ने दिन-रात मेहनत की और महात्मा ज्योतिराव फुले को पुरजोर समर्थन दिया था।

लहुजी साल्वे ने अपने अछूत भाइयों को शिक्षित करने की पहल की और ज्योतिराव फुले को अछूतों के लिए एक अलग स्कूल स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस समय पुना में कर्मठ लोगों की सोच ने काफी विरोध किया था। क्योंकि अगर अछूत शिक्षित होंगे तो उन्हें अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के बारे में पता होगा। उनमें आत्म-सम्मान का विकास होगा और स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के विचारों का पालन करते हुए स्थापित व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करेंगे। उन्हें शिक्षा ग्रहण करने से रोकने का प्रयास किया गया। लेकिन लहुजी साल्वे ने कर्मठ विचारधारा के लोगों के बावजूद समय के कदम उठाकर अछूतों को शिक्षा की धारा में लेकर आए थे। आज भारतीय संविधान के कवच और शिक्षा के द्वार सबके लिए खुले हैं, लेकिन पूर्वाश्रम की कुछ अछूत जातियों में शिक्षा का स्तर बहुत कम है। जब तक इन जातियों में उच्च शिक्षा का स्तर नहीं बढ़ेगा, तब तक समाज प्रगति नहीं कर पाएगा। उसके लिए शिक्षा प्राप्त करना ही हमारी गरीबी का समाधान है। बेकार की बातों में समय बर्बाद किए बिना बच्चों को व्यावहारिक शिक्षा देनी चाहिए। उसी

तरह समाज को यह मानकर महिला शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए कि घर की हर महिला शिक्षा प्राप्त करेगी तभी उसके बच्चे शिक्षित होंगे।

समाज में आदभाव, सम्मान और प्रतिष्ठा का स्थान बनाने के लिए मजदूर वर्ग, उच्च शिक्षित युवाओं और ईमानदार सामाजिक कार्यकर्ताओं को समाज की कमान अपने कंधों पर लेकर समाज में आंदोलन करना चाहिए। समाज में अच्छे नेता होने चाहिए ताकि समाज को सही दिशा मिल सके। समाज को दिशा देने के लिए वरिष्ठों पर निर्भर न होकर अपने सामुदायिक संगठन को संगठित करना आवश्यक है। इसके लिए समाज से ही नेतृत्व बनना चाहिए। नेता कैसे बनें, इस पर मार्गदर्शन देते हुए डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर कहते हैं कि नेता को समाज का सच्चा मार्गदर्शक होना चाहिए। यह स्वार्थी नहीं होना चाहिए और दुसरों के हाथों से पानी पीने वाल न हो, नहीं यह झगड़ालू गतिविधियों वाल न हो, वह समाज को गुमराह करने वाल नहीं चाहिए। उसी तरह समाज में नकली नेताओं की संख्या में वृद्धि न हो, जो लोगों की निः स्वार्थ बुद्धि के साथ कार्य करें, जो समाज में आम आदमी के लिए सच्चा प्रयास करें, जो अच्छे भविष्य के लिए सही रूप में क्षमता रखता है, जिसका चरित्र बेदाग होना चाहिए। समाज के नेता को समय-समय पर मजदूर वर्ग और उच्च शिक्षित वर्ग के सहयोग की आवश्यकता होती है।

आज जातियों में कई मजदूर वर्ग संगठन हैं जो पूर्वाश्रम के अछूत माने जाते हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से महापुरुषों के विचारों को बोना आवश्यक है। इसी तरह इन संगठनों को समाज के सामने समाज के लिए एक आदर्श का निर्माण करना चाहिए, न कि केवल अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए या संगठन के कार्यकर्ताओं और अपने बच्चों के सम्मान के लिए। समाज के मजदूर वर्ग के लिए समाज के प्रतिबिंब को पहचानना और समाज को बिना किसी पूर्वाग्रह के सही दिशा देना आवश्यक है। साथ ही समाज के नेताओं को उचित मार्गदर्शन देते हुए इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि समाज बिगड़े नहीं। पुरानी परंपरा को तोड़ते हुए, छत्रपति शिवाजी महाराज, क्रांतिगुरु लहुजी साल्वे, महात्मा ज्योतिराव फुले, क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले, धर्मशास्त्री मुक्ता साल्वे, महर्षि विठ्ठल रामजी शिंदे, राजर्षि शाहू महाराज, विश्वरत्न डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, साहित्य सम्राट अण्णा भाऊ साठे, कर्मयोगी गाडगे बाबा जैसे महान व्यक्तित्वों के विचारों का पालन करते हैं, तो समाज को बदलने में देर नहीं लगेगी।

परिशिष्ट संख्या १

साल्वे परिवार की वंशावली

परिशिष्ट संख्या २

लहूजी राघोजी साल्वे की जीवनी

(१४ नवंबर, १७९४ से १७ फरवरी, १८८१ तक)

१४ नवंबर, १७९४ : लहुजी साल्वे का जन्म पुरंदर किले की तलहटी में पेठ गांव में राघोजी और विथाबाई (गयाबाई) के घर हुआ था।

१८०४ : राघोजी साल्वे ने कुश्ती के साथ-साथ लहूजी को सैन्य शिक्षा प्रदान की।

१८११ : पेशवा पुना के रामोशी गेट पर एक नाकदार के रूप में लहुजी की नौकरी।

१८१४ : पेशवा में अन्याय, उत्पीड़न और अस्पृश्यता के बारे में पहली बार जागरूकता।

१८१६ : पंजाब के प्रसिद्ध पहलवान किजन पठान को फलटन के कुश्ती के मैदान में हराने के बाद, लहूजी साल्वे को फल्टन के महाराजा ने स्वर्ण और ग्यारह टुकड़ों के साथ प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया।

१८१७ : मंगलवेधा से सवता जाधव की पुत्री मुक्ता से लहुजी के विवाह के बारे में बातचीत। लेकिन जैसे ही पेशवा-ब्रिटिश युद्ध छिड़ गया, साल्वे ने शादी के विचार को त्याग दिया और अपने पिता और पुत्र के साथ खड़की की लड़ाई में शामिल हो गए।

१८१७ : लहुजी साल्वे की मां विथाबाई (गयाबाई) का बीमारी के कारण निधन हो गया।

१८१७ : अछूत युवाओं को एकजुट करके खड़की (जिला पुना) में अंग्रेजों और पेशवाओं के बीच लड़ाई में राघोजी साल्वे ने सेना का नेतृत्व किया।

नवंबर १७ १८१७ : खड़की में अंग्रेजों से लड़ते हुए लहुजी के पिता राघोजी साल्वे की मृत्यु हो गई।

१८१८ : राघोजी साल्वे की समाधि खड़ी कर ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वराज्य को बहाल करने का वादा किया। ख्ड्डण्द्वत्र साल्वे नारे के साथ ब्रह्मचर्य की शपथ ली ठ अगर मैं देश के लिए रहते हैं, अगर मैं देश के लिए मर जाते हैं ठ ।

१८२१ : लहुजी साल्वे अपनी बहन राधाबाई और छोटे भाई शिवाजी के साथ पुना के गंजपेठ में रहते हैं।

अक्टूबर १८२२ : पुना (गंजपेठ) में सशस्त्र प्रशिक्षण की स्थापना करके रास्ता सरकार का उद्घाटन।

१८२३ : पुना में अछूतों के लिए एक सार्वजनिक कुएं का निर्माण कर पेयजल की समस्या का समाधान किया गया।

१८२५ : रामोशी ने सत्तू नाईक के गिरोह के युवाओं को ब्रिटिश शासन से लड़ने के लिए सैन्य प्रशिक्षण दिया।

१८२२ से १८८० : दाख की बारी प्रसूति युवा जातिधर्म भारत में सभी अछूत, भाइयों, नरसोबासी के पेड़, गुलेटकड़ी, पुरंदर और कोंधन्या क्षेत्र की बाड़, तीरंदाजी, दानपट्टा, चडीपट्टा, आग्नेयास्त्रों, गनीमिकवा आदि का संचालन करने के लिए । सभी प्रकार की सेना प्रशिक्षण लहुजी साल्वे ने दिया।

१८२६ से १८३२ : उमाजी नाईक ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वघोषित राजा बने और एक प्रति-सरकार की स्थापना की। इसमें लहुजी साल्वे का अहम योगदान है.

१८३६ से १८४८ : लहुजी के प्रशिक्षण में आदिवासी नेता राघोजी नाईक, रघु भांगरे और भागोजी नाईक गुप्त रूप से शामिल हुए।

१८४७ : महात्मा ज्योतिराव फुले और उनके ब्राह्मण मित्र सदाशिवराव गोवंडे, सखाराम परजम्पे, मोरो विट्ठल वाल्वेकर ने लहूजी साल्वे के प्रशिक्षण में प्रवेश किया और उन्होंने कुश्ती के साथ-साथ सभी प्रकार की सैन्य शिक्षा लेना शुरू कर दिया।

१८४७ : अछूत युवाओं को कम से कम साक्षरता और अंकगणित प्रदान करने के लिए लहुजी साल्वे के संरक्षण में देश में पहले वयस्क शिक्षा स्कूल की स्थापना।

१८४८ : लहुजी साल्वे ने महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले को उनके शैक्षिक और सामाजिक कार्यो का समर्थन करके सामाजिक बुराइयों से बचाया।

१८५२ : लहूजी के छोटे भाई शिवाजी साल्वे की बेटी मुक्ता को महात्मा ज्योतिराव फुले के स्कूल में प्रवेश दिया गया और महिलाओं की शिक्षा के लिए सम्मानित किया गया।

१८५२ : महात्मा ज्योतिराव फुले द्वारा अछूतों के लिए शुरू किया गया पहला स्कूल लहूजी द्वारा कुछ दिनों के लिए शुरू किया गया था और फिर पुना के भोकरवाड़ी में अहिल्या आश्रम में लहुजी की मदद से शुरू किया गया था।

१८४८ से १८८० : महात्मा ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले ने अछूत समुदाय के सामाजिक और शैक्षिक कार्यो में सक्रिय रूप से भाग लिया।

१८५७ : कई क्रांतिकारियों ने लहूजी साल्वे के संरक्षण में सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त किया। १८५७ के विद्रोह में नानासाहेब पेशवा, तात्या टोपे और रंगो बापू की सेना में शामिल हुए और बलिदान दिया।

७ दिसंबर १८५७ : क्रांतिकारियों बबिया मांग, योरिया मांग, नथ्या मांग, येल्या मांग, मलय मांग आदि, सातारा में विद्रोह में भाग लेने वाले लहूजी साल्वे के शिष्यों को सातारा के गैंडे की गर्दन पर लटका दिया गया और कुछ को गोलियों से भून दिया गया।

१८७१ से १९७२ : वासुदेव बलवंत फड़के ने ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए लहूजी साल्वे से कुश्ती के साथ-साथ सभी प्रकार का सैन्य प्रशिक्षण लिया।

१८७२ : लोकमान्य तिलक ने १६ साल की उम्र में नदी में तैरने की कला सीखी और शरीर को मजबूत करने के लिए लहुजी साल्वे के संरक्षण में कुश्ती के साथ-साथ कुश्ती भी सीखी।

१८७३ से १८८० : लहुजी साल्वे ने महात्मा ज्योतिराव फुले के साथ सत्यशोधक समाज के संरक्षक संत के रूप में काम किया।

१८७५ : आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती की पुना में महात्मा ज्योतिराव फुले ने परेड की। जुलूस के दौरान, पुना के मेहनती लोगों द्वारा किसी भी तरह की अनौचित्य के खिलाफ एहतियात के तौर पर लहुजी साल्वे ने योद्धाओं को प्रशिक्षण से बचाया।

फरवरी १७ १८८१ : लहुजी साल्वे की मृत्यु। महात्मा ज्योतिराव फुले के साथ-साथ कई क्रांतिकारियों और समाज सुधारकों की उपस्थिति में उनका अंतिम संस्कार सच्चाई की तलाश में किया गया था।

परिशिष्ट संख्या ३

लहूजी साल्वे के सामाजिक और शैक्षिक कार्यो को निर्देशित करने वाली प्रबुद्धता में मूल कहानी

परिशिष्ट संख्या ४ (ए)
मांग-महर्सी के दुःख पर निबंध
(निबंध का पहला भाग - प्रबुद्धता १५ फरवरी को, १८५५)
- मुक्ता शिवाजी साल्वे, गंजपेठ (पुना)

परिशिष्ट संख्या ४ (बी)
मांग-महर्सी के दुःख पर निबंध
(निबंध के स्वर्गीय - प्रबुद्धता मार्च १, १८५५)
- मुक्ता शिवाजी साल्वे, गंजपेठ (पुना)

परिशिष्ट संख्या ५

चयनित तस्वीरें

लहूजी राघोजी साल्वे की छवि (श्री शंकरभाऊ तड़ाखे के संग्रह से)

लहूजी साल्वे १८२२ में स्थापित गंजपेठ (पुना) में प्रशिक्षण

मुक्ता शिवाजी साल्वे, लहूजी साल्वे की भतीजी, दाहिनी ओर बैठी सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख के साथ, अछूतों के पहले स्कूल के शिक्षक (श्री रमेश रक्षे के संग्रह से)

लहूजी साल्वे की समाधि के बगल में खड़े लेखक (संगमवाड़ी, पुना)

ग्रन्थसूची

ऐतिहासिक समाचार पत्रः

१) ज्ञानोदय, डीटी। १५ नवंबर, १८४८

२) ज्ञानोदय, डीटी। १५ दिसंबर, १८४८

३) ज्ञानोदय, दि. १ मई, १८४९

४) ज्ञानोदय, डीटी। १ सितंबर, १८५१

५) ज्ञानोदय, डीटी। १ अप्रैल, १८५२

६) ज्ञानोदय, डीटी। १५ सितंबर, १८५३

७) ज्ञानोदय, डीटी। १५ दिसंबर, १८५३

८) ज्ञानोदय, डीटी। १ जुलाई, १८५४

९) ज्ञानोदय, दि. २ अक्टूबर, १८५४

१०) ज्ञानोदय, डीटी। १५ फरवरी, १८५५

११) ज्ञानोदय, डीटी। १ मार्च, १८५५

१२) ज्ञानोदय, डीटी। १५ मार्च, १८५५

१३) ज्ञानोदय, डीटी। १५ जून, १८५५

१४) ज्ञानोदय, डीटी। १५ सितंबर, १८५६

१५) ज्ञानोदय, डीटी। १ जनवरी, १८५७

मराठी ग्रंथः

१) फुले जोतिबा गोविंदराव, दासता, प्रथम संस्करण, १८७३, ए.बी.सी. ग्रुप पब्लिकेशन हाउस, कोल्हापुर, पुनर्मुद्रण, २०१६।

२) गोवंडे वि. भा., त्रिमूर्तिदर्शन या सदाशिव गोवंडे का चरित्र, प्रकाशिका श्रीमती। लक्ष्मीबाई गोवंडे पुना, प्रथमावृति, १, ९, ५३.

३) सरदेसाई ख. सी।, मराठी रियासत, खंड -६, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २०११।
४) सरदेसाई ख. सी।, मराठी रियासत, खंड-७, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २०११।
५) सरदेसाई ख. सी।, मराठी रियासत, खंड-८, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २०११।
६) किर धनंजय, महात्मा ज्योतिराव फुले, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, दूसरा पुनर्मुद्रण, २००५।
७) कावड़े पा। बी ० ए।, महात्मा फुले जोतिरवा का इतिहास, रंगराव त्र्यंबक रत्नापारखी, नंदगांव (जिला नासिक), प्रथमावर्ति, १, ९, ६८.
८) जोशी नं। बनाम, पुना शहर का विवरण, सम्मान और विमोचन, पुना, प्रथमावृत्ति, २००२।
९) ओक प्रमोद, पेशवा परिवारों का इतिहास, महाद्वीपीय प्रकाशन, पुना, तीसरा संस्करण, २००१।
१०) कार्णिक शशिकांत, पेशवा महाराष्ट्र सामाजिक और आर्थिक जीवन, इतिहास अनुसंधान बोर्ड, मुंबई, पहला प्रकाशन, १९८८।
११) शेवदे सच्चिदानंद, वासुदेव बलवंत फड़के, अभिजीत प्रकाशन, पुना, दूसरा संस्करण, २००९।
१२) रायकर सीताराम, हमने फूल देखे, महात्मा फुले समता फाउंडेशन, प्रकाशन, पुना, प्रथमावृत्ति, १, ९, ८१।
१३) खोबरेकर बनाम। सरकार, महाराष्ट्र में स्वतंत्रता संग्राम, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति बोर्ड, मुंबई, प्रथमावर्त्ती, १ ९९ ४.
१४) प्रिंसिपल सी। प्र, स्वतंत्रता संग्राम की महाभारत, साधना प्रकाशन, पुना, ४ संस्करण, २००४।
१५) प्रबोधंकर ठाकरे के. सी।, प्रताप और शिवाजी रामंगो बापू, आर्थिक प्रकाशन, मुंबई, प्रथमावर्ति, पूर्णमुद्रन, १ ९९ ८.

१६) गवली पी. ए।, छ्वद्मण्ष्ठ्ठ- युग महाराष्ट्र, कैलाश प्रकाशन, औरंगाबाद, छ्वद्दड़ण्ष्ठ्ठध्द्धत्द्यद्यत, २०००।
१७) सगत अंबदास, साहस की गौरवशाली ऐतिहासिक परंपरा और शेष लोग, विकारसाधना, प्रकाशन, पुना, प्रथमावृत्ति, २००८।
१८) अत्रे ट्रिन। नहीं।, गवड़ा, समन्वय प्रकाशन, कोल्हापुर, संस्करण २०१२।
१९) मंगुडकर में। डफ्रल्यू, चेंजिंग पुना, उत्कर्ष प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००१।
२०) क्लियर, मास्टर, महात्मा फुले जोतिरवा, श्रीविद्या रिलीज, पुना, प्रथमावर्त्ति, १ ९९ ०।
२१) कुलकर्णी ए। रा., पुना पेशवा, राजहंस प्रकाशन, पुना, तीसरा संस्करण, २००१।
२२) खोबरेकर बनाम। सरकार, महाराष्ट्र इतिहास (मराठा काल), महाराष्ट्र राज्य संस्कृति और साहित्य बोर्ड, मुंबई, प्रथमावृति, १, ९, ८८.
२३) पाटिल पंढरीनाथ के चरित्र, ज्योतिबा फुले, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथम संस्करण, २००७।
२४) घोड़े अनंत, सशस्त्र क्रांति के जनक - लहूजी वस्ताद, मुक्ताई प्रकाशन, कोल्हापुर, प्रथम संस्करण, २०००।
२५) दीघे प्रभाकर, स्वदेशी क्रांति के अग्रदूत वासुदेव बलवंत फड़के, आरती विमोचन, मुंबई, प्रथमावर्ति, १, ९९ २.
२६) शिंदे बनाम। रा., अस्पृश्यता का प्रश्न, आर्थिक पुस्तकालय, नागपुर, प्रथमावर्त्ति, १ ९, ३३.
२७) मोर सदानंद, लोकमान्य टू महात्मा, खंड क्ष, राजहंस प्रकाशन, पुना, दूसरा संस्करण, मार्च २००७।
२८) मोर दिनकर, हिस्ट्री ऑफ ट्रांसफॉर्मेशन इन मॉडर्न महाराष्ट्र, के . एस प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००६।
२ ९) ठाकुर रवींद्र, महात्मा, मेहता पफ्रिलशिंग हाउस, पुना, प्रथमावृत्ति, १ ९९९।
३०) सदाशिव, उमाजी राजाओं, गंतव्य पर्वत, महाद्वीपीय प्रकाशन, पुना, प्रथमावर्ति, १ ९९ १ को याद किया।
३१) माली सी। द., महात्मा ज्योतिबा फुले, ख। हाँ। राणे प्रकाशन, पुना, प्रथमावृति, १, ९, ६७.

३२) नारके हरि (सं.), महात्मा फुले गौरव ग्रंथ, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, एम. फुले, राजर्षि साहू चरित्र प्रकाशन समिति, मुंबई, संशोधित तृतीयक, २००६।
३३) शिरसागर नाना, वीर लहूजी उस्ताद, सर्विस सी इंस्टिट्यूट, पुना, प्रथमावृत्ति, १ ९९९।
३४) अम्बेडकर बीआर, अछूत, जो से स्वागत किया ? नालंदा के नाग रिलीज, त्म्रथ्ठ्ठ्ठ्ठद्रद्रद्धठ्ठ, द्रब्द्धठ्ठ्यण्ठ्ठ्ठध्द्धद्यद्यत, द्रद्रद्धदठ्ठ्थ्द्धड्डद्धठ्ठदठ्ठ, २०१२।
३५) चव्हाण विलास, डॉ. अम्बेडकर और भारतीय शिक्षा जातिसंघर्ष, क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फूल प्रकाशन गृह, येवला, प्रथमावृत्ति, २००३।
३६) फड़के। पर, महात्मा फुले व्यापक साहित्य, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति बोर्ड, मुंबई, चौथा संस्करण, १९९१
३७) धनंजय को अनुमति देना चाहते हैं, ड़. आर मालशे और फड़के। पर (एड।), महात्मा फुले व्यापक साहित्य, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति बोर्ड, मुंबई, ६ वां संस्करण, २००६।
३८) ग्ठ्थ्ठ्ठ प्रहलाद, भारत की पहली क्रांतिकारी छ्ठ्ठ्र राजे, ग्द्वथ्दत्ध्ठ्ठ्यत प्रकाशन ट्रस्ट, पुना, पहले संस्करण, २००९।
३९) मेश्राम वीए। नहीं।, वीर बिरसा मुंडा, सुगम प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८।
४०) ज़ांबारे एस. द., द ग्रेट इंडियन रिवोल्यूशनरी, महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड ऑफ लिटरेचर एंड कल्चर, मुंबई, पहला संस्करण, २००७।
४१) जोगलेकर बी. द., १८५७ के विस्फोट के अंग्रेजी बिंदु, रिलीज को पुनर्जीवित करना, बोरीवली, प्रथमावर्ति, २००७।
४२) मारवाड़ी नरेंद्र, क्रांतिसूर्य लहूजी साल्वे, लोकगीत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावर्ति, २०१०।
४३) शाहीर योगेश, लहूजी वस्ताद, हिंदुस्तान जागरण, पुना, दूसरा संस्करण, २००९।
४४) पिंगले बनाम। दा., क्रांतिगुरु लहूजी साल्वे, शप्रद्ध प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८।
४५) कथारे अनिल, कदम वसंत, पेशवाकालिन महाराष्ट्र, पूनम प्रकाशन, कंधार, पहला संस्करण, २०१०।
४६) तड़ाखे शंकर, क्रांतिपिता लहूजी वस्ताद, प्रतिमा प्रकाशन, पुना, तीसरा संस्करण, २०१४।
४७) सोमवंशी बी। सी।, भारतीय जातिसंस्था मातंगेस स्थान और महार-मांग, संबंध, रिलीज़ का आनंद लें, औरंगाबाद, द्वितीयावृत्ति, २०११।

४८) चौधरी के. क।, झुंजर, पुना, महाद्वीपीय प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८।
४९) खडसे खुशाल, आदिक्रांतिगुरु वस्ताद लहूजी साल्वे, नेहा प्रकाशन, नागपुर, २००९ संस्करण।
५०) वाघमारे गणपत, आदिक्रांतिगुरु लहूजी साल्वे, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, २०१२।
५१) सौंददकर सारनाथ (सं.) सावित्रीबाई फुले समग्र वांगमय, सारनाथ प्रकाशन, परभणी, प्रथम संस्करण, २०१३।
५२) सिंदगीकर अंकुश, लहूजी साल्वे और मातंग समाज, साद प्रकाशन, औरंगाबाद, पहला संस्करण, २००९।
५३) विटेकर बनाम। बी, आदिक्रांतिवीर गुरुवर्या लहूजी साल्वे, प्रबोधन प्रकाशन, नांदेड़, द्वितीय संस्करण, २००९।
५४) उगले जी. ए., महात्मा फुले - एक खुला विचार, कौशल्या प्रकाशन, औरंगाबाद प्रथम संस्करण, २०००।
५५) उगले जी. ए., सावित्रीबाई फुले, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, द्वितीय संस्करण, २००९।
५६) ज़्ठ्ठ्ठ्ठ्दढ़ठ्ठथ्त्ठ्ठ्ठ, भंडारे (सं।), ग्ठ्ठ्यठ्ठ्दढ़ समाज प्रेरणा और आंदोलन, स्वानंद प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००८।
५७) भंडारी शांतिराम, क्रांतिपर्व, सद्भाव प्रकाशन, डोंबिवली, प्रथमावृति, २००२।
५८) अंधेरे भा. रा., ज्ठ्ठ्ठ्दढ़ठ्ठ्दठ्ठ और १८५७ के आजादी के युद्ध के चयनित क्रांतिकारियों, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर, २००८।
५९) कुलकर्णी ए. रा., मराठों का इतिहास भाग -१, स्नेहवर्धन पब्लिशिंग हाउस, पुना, तृतीयक, १९९९।
६०) देशपांडे कु. पं., सेनापति तात्या टोपे, श्री गंधर्व-वेद प्रकाशन, पुना, प्रथम संस्करण, २००९।
६१) किवलकर ग. द. और स्टॉक बनाम। द., १८५७ के शहीद, वीनस प्रकाशन, पुना, प्रथमावर्त्ति, १ ९ ९ ४.

६२) कदम सोमनाथ, मतंग समाज का इतिहास, अरुणा प्रकाशन, लातूर, प्रथम संस्करण, २०१५।
६३) भारतीय इतिहास संकल्प समिति पुना (सं.), पुना इतिहास दर्शन, खंड क्ष्क्ष (१८६१ से १८७२), संस्करण २०००।
६४) पोद्दार माधव, फाइट्स एंड फाइटर्स इन महाराष्ट्र, अनुभव प्रकाशन, पुना, फर्स्ट एडिशन, २००३।
६५) गोडबोले अनिल, महिला शूद्र के चैंपियन, सत्यधर्म के प्रचारक, महात्मा फुले, उन्मेश प्रकाशन, पुना, २००१।
६६) खान अफ्रद्दुल हमीद, महात्मा फुले राष्ट्रीय चरित्र श्रृंखलाः सेट क्ष, अफ्रद्दुल हमीद खान प्रकाशन, पुना, तीसरा संस्करण, १९८३।
६७) टिक्केकर अरुण (संपादित करें।), ट्रेस द सिटी ऑफ़ पुना, द कल्चरल कंसर्न, वॉल्यूम क्ष्क्ष, निलुभाउ लिमये फौडेंसाना, पुना, प्रथमावर्ती, २०००।
६८) निमाखेड़कर मालती, क्रांतिसूर्य जोतिबा, नर्वसली रिलीज, नागपुर, प्रथमावर्ति, १,९९२.
६९) केलकर नं। चौ., लोकमान्य तिलक चरित्र, खंड -१, वरदा बुक्स, पुना, द्वितीय संस्करण, १९८८।
७०) गोखले बनाम। श., लोकोत्तर लोकमान्य तिलक, अनघा प्रकाशन, ठाणे, द्वितीय संस्करण, २००७।
७१) सावरकर बनाम। दा., १८५७ की स्वतंत्रता की गर्मी, रिया प्रकाशन, कोल्हापुर, संस्करण, २०१२।

हिंदी ग्रंथः

१) शर्मा राम शरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ७वां संस्करण, २००९।
१) साइबर्ट क्रिस्टोफर, द ग्रेट रेवोल्ट १८५७, डायलॉग प्रकाशन, मेरठ, पहला संस्करण, २००८।

२) चौबे देवेंद्र, बद्रीनारायण, १८५७ का भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, प्रेस प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पहला संस्करण, २००८।

३) सिंह, चौहान (सं.) १८५७ इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पटना, पहला संस्करण, २००७।

४) नारके हरि (सं.), महात्मा फुलेः साहित्य और विचार, महात्मा फुले चरित्र प्रकाशन समिति, मुंबई, पहला संस्करण, १९९३।

५) मिश्रा भारत, १८५७ की क्रांति और इसके प्रमुख क्रांतिकारी, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, संशोधित संस्करण, २००८।

६) खडसे खुशाल, महात्मा फुले के गुरु उस्ताद लहूजी साल्वे, प्रेरणा प्रकाशन, नागपुर।

अंग्रेजी ग्रंथः

१) रदपिनहरपजनरी आदि। एल, चहररीहरींर (१८५८-१८९२), झरीश्री एयज्ञ उशीएं।, ली लीं ज़ज़ीलश्रीहशव, १९९३.

२) रारापारसीरु आदि।, रिंसिलासरारा रलसाहिनसी एसा इंहसा रलीइम रिसावे रसीनसापिम, गरपराजनाला झिराजनारिहरपा, झरिम्पारा, रलीम रझिलास्त्रालिहसव, १, ९ और ८०।

३) थेलसीम उससरलसासा, दहासा नारपिएनलाहरलासरसी एसा खापावलारा, जुसेवा खापिन्सिपरिनलेपरसरा रझिलास्त्रालिहसी, चासु उससराहला, रलीइम रझिलास्त्रालिहसव, १ ९९९।

४) दलपसाह कैरहासपवीरा, उरसरालिम लपा खापवलारा, तससिपालसा झिसि, चासु उससराहला, रलीइम रझिलास्त्रालिहसव, २००३।

५) इहिरिन दि. ए।, करहरिहिंरा नरपवा रपावा झसेरिसा, इहारीसरिम रेरिसरा, घरसरारिउ रझिलास्त्रालालरिनलेपा, चासु उससराहला, २००५

६) डहरलाजनाहा आदि।, कीयेंः खैमिनी कीटई रपव चशींव, चरलाश्रश्रप खपवर सींव।, चारविरी, एवलिनलेप १९७८।

शफ्रद्रकोशः

१. जोशी सु. एच (एड।), डायमंड हिस्ट्री डेटाबेस, डायमंड पफ्रिलकेशन, पुना, फर्स्ट एडिशन, २००९।

२. महाजन श. सी।, पुना शहर का विश्वकोश, विश्वकोश फाउंडेशन पुना, प्रथम संस्करण, २००४।

३. पाठक अरुण चंद्र (एड।), महाराष्ट्र गजेटियर सातारा जिला, दर्शनशास्त्र विभाग, महाराष्ट्र सरकार, १९९०।

विशेषः

१) घंटावाड़ दिगंबर (सं.), क्रांतिकारी परिवर्तन, लहूजी साल्वे जयंती विशेष, २००५, २००७।

२) वानखेड़े चंद्रकांत (एड।), समाजचेतना, लहूजी साल्वे जयंती स्पेशल, २००५।

३) भंडारे आनंद (एड।), आदिक्रांतिवीर लहुजी साल्वे संस्मरण, २०००।

४) वैरत आनंद (एड।), सत्यशोधक लहूजी साल्वे जयंती स्पेशल, २०१७।

५) कांबले शिवराम (एड।), क्रांतिवीर लहूजी साल्वे जयंती स्पेशल, २००९।

पत्रिकाएंः

१) खंडाले सु. वी. (एड.), मंगल्या परिवार (त्रैमासिक), अप्रैल २०१०.

२) कांबले जी. एस (एड।), लाहुशक्ति (मासिक), अक्टूबर। २००९.

३) शाहसने मंजिरी (सं.), करनाला (त्रैमासिक), जनवरी २००८

समाचार पत्रः

१) दाई। तरुण भारत, डी.टी. १४ नवंबर १९९०।

२) दाई। गोडातिर न्यूज, डीटी। नवंबर ३० १९९०.

३) दाई। क्ष्ड्ढद्मण्दृददड्ढद्यत, डीटी। फरवरी १७ २००७.

४) दाई। बहुजनरत्न लोक नाईक, डीटी। १४ नवंबर २००६.

५) दाई। बहुजनरत्न लोक नाईक, डीटी। १४ नवंबर २०१०.

६) दाई। नेता, दि. फरवरी १७ २०१४.

वेबसाइटें (खापिनशिपिशिन):

१) उ.पर्शी / उळज्ञळशिवळर.ले.

२) उ.ळपवरपपेईपश.ले.

३) उ.ळपवरपलेज्ञी.ले.

४) उ.लेजेज्ञसरपसर.ले.

५) उ.ईहेवहसरपसर.ले.

लेखक का परिचय

नाम : डॉ. राज भुजंगराव ताडेराव

शिक्षाः च.ए., च.झाश्र., ई.ए.वी., छठा, झ.छ.

पद : इतिहास विभाग के प्रमुख - कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स, फोंडाघाट,

टा. कंकावली, जिला। सिंधुदुर्ग - ४१६६०१।

लिख रहे हैं:

१) छत्रपति शिवाजी महाराज, क्रांतिगुरु लहूजी साल्वे, महात्मा ज्योतिराव फुले, क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले, विश्वरत्न डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, महर्षि अन्नासाहेब कर्वे, साहित्य सम्राट अन्ना भाऊ साठे आदि।

२) राज्य स्तर, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया और २५ शोध पत्र और प्रकाशित शोध पत्र पढ़े।

३) हैदराबाद लिबरेशन वॉर में हडगांव, निर्मल प्रकाशन, नांदेड़, २००८

४) क्रांतिगुरु वस्ताद लहूजी साल्वे जीवन और कार्य, संवाद प्रकाशन, कोल्हापुर, २०२०

५) १. बापू, २ . सर्वव्यापक अन्नाभाऊ, ३ . प्रबोधशिल्पी अन्ना भाऊ, ४. नगलिनशिरु आशी की पुस्तक अपर इहरी दरिन्हाश के संपादक। दिशा अनुसंधान, २. अन्वेषण खंड क्ष, ३. इतिहासकार डॉ. बी आर अम्बेडकर इस पुस्तक के सह-संपादक हैं।

संशोधनः

१) एम.फिल.पेरियार विश्वविद्यालय, सेलम (तमिलनाडु) विश्वविद्यालय से। उपाधि से सम्मानित।

२) ठ ऐतिहासिक अध्ययन में लहुजी साल्वे का काम ठ इस मामले पर शोधनिबंध स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ विश्वविद्यालय पाईकादि. उपाधि से सम्मानित।

सामाजिक कार्यः

१) अध्यक्ष - क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले प्रतिष्ठान।

२) कोंकण डिवीजन के प्रमुख - साहित्यरत्न अन्ना भाऊ साठे साहित्य परिषद, महाराष्ट्र।

पत्राचार पताः गंधपुष्पा अपार्टमेंट, ठ ए ठ विंग, पहली मंजिल, आदर्श नगर, सपले बाग, जनवाली, ताल। कंकावली, जिला। सिंधुदुर्ग।
पैतृक गांव : पर . खरातवाड़ी, ताल. हडगांव, जिला. नांदेड़
मोबाइल नंबरः ९४२०१८५७७२।
ई-मेलः संरक्षित

ग्द्धत्ढ़त्दठ्ठ द्यड्डन्द्य

यावेळी त्यांना या कार्यात लहुजी साळवे यांची खंबीरपणे साथ मिळालेली होती.

क्दृदद्यद्धत्डद्वद्यड्ड ठ्ठ डड्डद्यद्यड्डद्ध द्यद्धठ्ठदद्मथ्ठ्ठद्यत्दृद